RNI Number : MPHIN/2016/70609
वर्ष : 5, अंक : 18
जुलाई-सितम्बर 2020
मूल्य 50 रुपये

Dhingra Family Foundation
USA

ISSN NUMBER : 2455-9814

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

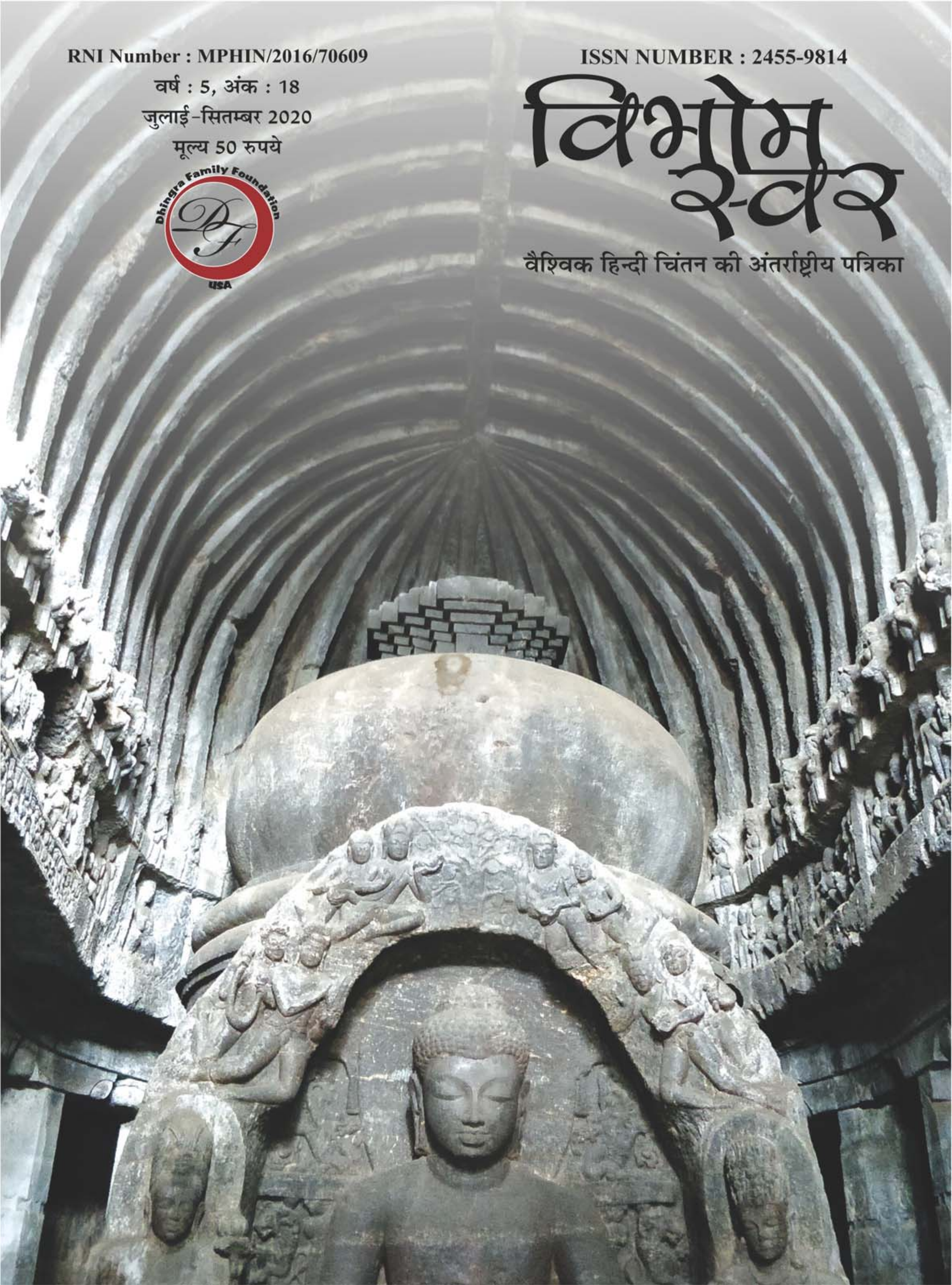

शिवना प्रकाशन जुलाई 2020 सेट की पुस्तकें

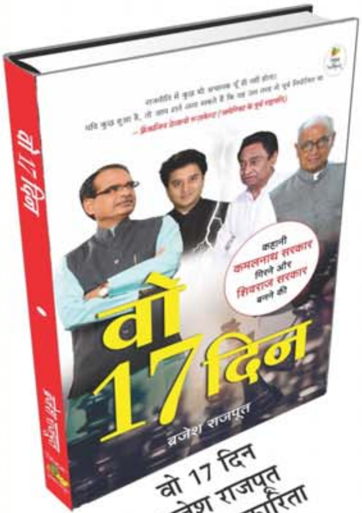

वो 17 दिन
ब्रजेश राजपूत
चुनाव पत्रकारिता

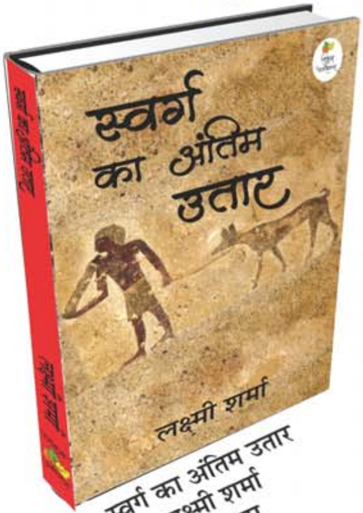

स्वर्ग का अंतिम उतार
लक्ष्मी शर्मा
उपन्यास

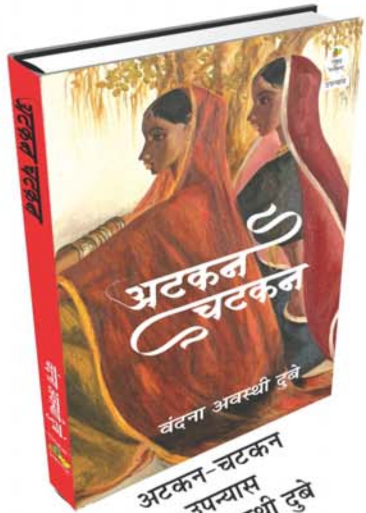

अटकन-चटकन
उपन्यास
वंदना अवस्थी दुबे

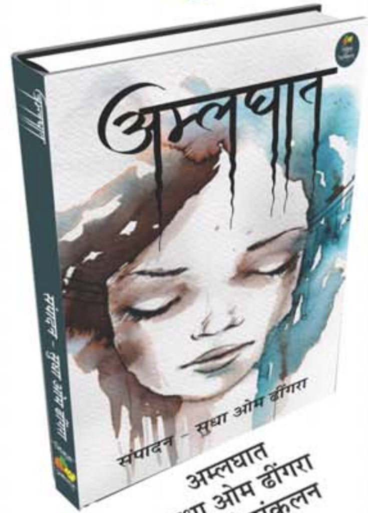

अम्लघात
सुधा ओम ढींगरा
कहानी संकलन

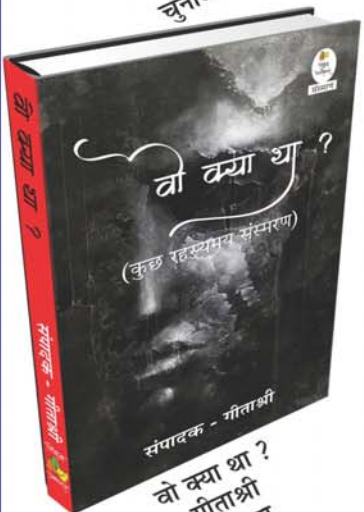

वो क्या था ?
गीताश्री
संस्मरण

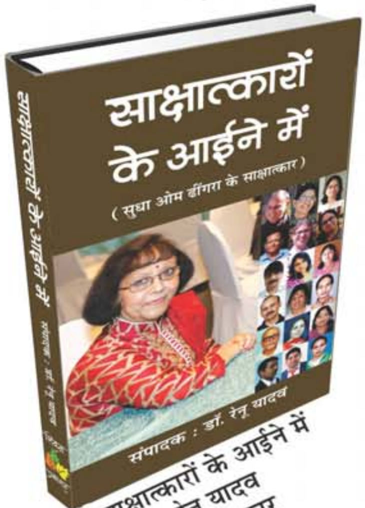

साक्षात्कारों के आईने में
रेनू यादव
साक्षात्कार

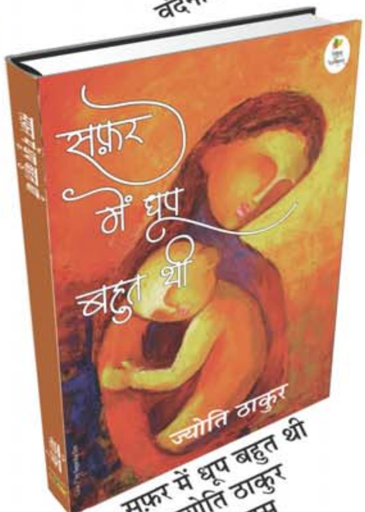

सफ़र में धूप बहुत थी
ज्योति ठाकुर
उपन्यास

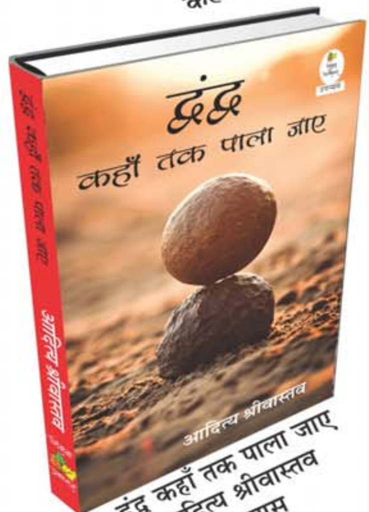

द्वंद्व कहाँ तक पाला जाए
आदित्य श्रीवास्तव
उपन्यास

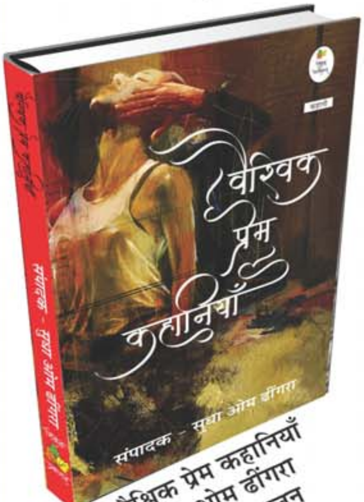

वैश्विक प्रेम कहानियाँ
सुधा ओम ढींगरा
कहानी संकलन

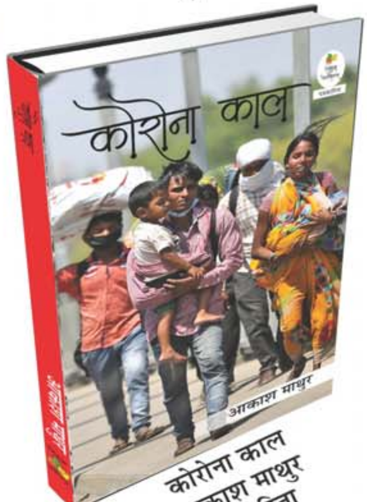

कोरोना काल
आकाश माथुर
पत्रकारिता

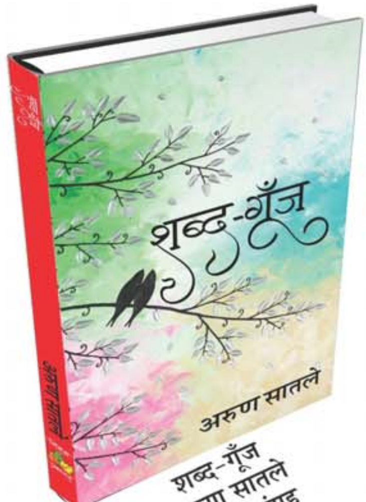

शब्द-गूँज
अरुण सातले
कविता संग्रह

नज़रबट्टू
ज्योति जैन
कहानी संग्रह

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com
Paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545
मोबाइल : 09806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर' :
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
http://vibhomswar.blogspot.in
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar
एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
1500 रुपये (पाँच वर्ष)
3000 रुपये (आजीवन)
विदेश प्रतिनिधि
अनिता शर्मा (शंघाई, चीन)
रेखा राजवंशी (सिडनी, आस्ट्रेलिया)
शिखा वार्ष्णेय (लंदन, यू के)
नीरा त्यागी (लीड्स, यू के)
अनिल शर्मा (बैंकॉक)
क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)
तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह, सनी गोस्वामी
डिज़ायनिंग
सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी
संपादन, प्रकाशन, संचालन एवं सभी सदस्य पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक।

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।

पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी।

समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर मध्यप्रदेश रहेगा।

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 5, अंक : 18, त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2020
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

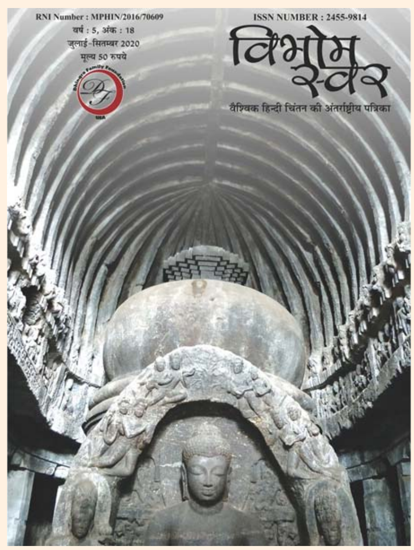

आवरण चित्र
नीरज गोस्वामी

रेखाचित्र
अनुभूति गुप्ता

रेखाचित्र
रोहित प्रसाद

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम स्वर

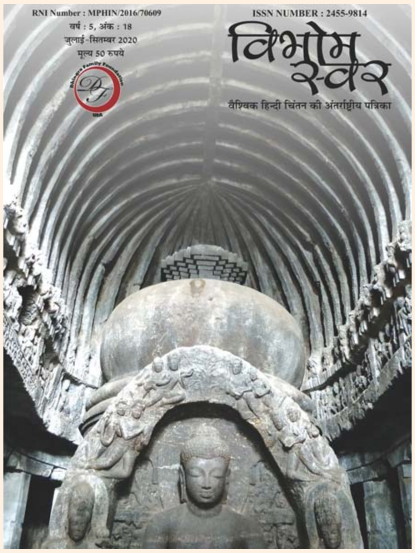

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 5, अंक : 18,
त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2020

संपादकीय 5

अंतर्राष्ट्रीय सम्मान की घोषणा 7

कथा कहानी

उनकी महफिल से हम उठ तो आए
गीताश्री 8
धरती पर इंद्रधनुष
मनीष वैद्य 15
कैसे बताऊँ बिटिया को...
उषा राजे सक्सेना 19
अतीत के अँधेरे में..
मंजुश्री 24
गाइड
संदीप शर्मा 30
पंचनामा
हरिप्रकाश राठी 36
इंगलिश रोज़
अरुण सब्बरवाल 40
मुझे नहीं मालूम
गोविंद उपाध्याय 45
शहर
मनोज शर्मा 50

लघुकथाएँ

अपने-अपने रास्ते
सुरेश सौरभ 44
बोन्साई
सुभाष चंद्र लखेड़ा 55

भाषांतर

घर जलाकर
मूल लेखक: इब्ने कमल
अनुवाद: देवी नागरानी 54
ध्रुवीय भालुओं का राजा
नेटिव अमेरिकन लोक कथा
अनुवाद: नीलाक्षी फुकन 56

व्यंग्य

बारीक और मोटे व्यंग्य पर विमर्श
धर्मपाल महेंद्र जैन 60

संस्मरण

काँकेर का एक कार्य-शिविर
प्रताप सहगल 62
हरिशंकर आदेश रेगिस्तान में तृप्ति का एक घूँट
प्रेम जनमेजय 65

हमारी धरोहर

क़स्बों-शहरों की रौनक- फेरीवाले
शशि पाधा 70

पहली कहानी

इलाज
डॉ. प्रियंका 72

दोहे

जय चक्रवर्ती 53

गीत

रामरतन अवस्थी 59
बुधराम यादव 64

कविताएँ

प्रतिभा चौहान 74
ज्योतिकृष्ण वर्मा 75
शैलजा सक्सेना 76
खेमकरण 'सोमन' 77
शोभना श्याम 78
संजय छीपा 79
ऋषिकेश मिश्र 80
रोहित प्रसाद पथिक 81

आख़िरी पन्ना 82

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है :

1500 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण इस प्रकार है : Name of Account : **Vibhom Swar**, Account Number : **30010200000312**, Type : **Current Account**, Bank : **Bank Of Baroda**, Branch : **Sehore (M.P.)**, IFSC Code : **BARB0SEHORE** (Fifth Character is "Zero") (विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

नाम :— — — — — — — — — — — — — — — — — **डाक का पता :**— **सदस्यता शुल्क :**— — — — — — — **चैक / ड्राफ़्ट नंबर :**— — — — — — — — —

ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांसफ़र किया है) :— — — — — — **दिनांक :** — — — — — — — — — — — — — —

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

संपादकीय

नई सभ्यता पुरानी सभ्यता के विनाश से कभी सीखती नहीं

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

यह समय बेहद नाज़ुक है। असुरक्षा फ़िज़ाओं में फैली महसूस होती है। आशंका हरेक प्राणी के भीतर छाई हुई है। अनहोनी का भय चारों तरफ़ पसरा हुआ है। मानव द्वंद्व की स्थिति में चल रहा है। यह द्वंद्व भीतर और बाहर व्याप्त हुई परिस्थितियों से जूझने और चुनौतियों से लड़ने का है।

'सृष्टि का आरंभ प्रलयकारी वर्षा, बाढ़, तूफ़ान झंझा के झटके, काले भुजंग सा फन फैलाए हुए अपार तम, उद्वेलित सागर की तरंगाघात, बिजली का-सा तेवर बदल कर गरजता हुआ अंबर, दशों -दिशाओं के दिग्गजों के बीच मानव और मानव सभ्यता का विकास हुआ।' सदियों से यह पढ़ा और सुना जा रहा है।

आज विकसित सभ्यता पर वैसे ही संकट जब मंडरा रहे हैं तो मानव जाति का बेचैन होना स्वाभाविक है। क्या प्रारम्भ और अंत एक से....नहीं ऐसा नहीं हो सकता....लोगों की यही दुविधा और परेशानी है। हर देश में लोगों की मृत्यु के बढ़ रहे आँकड़े और भी कष्ट दे रहे हैं। जैसा कि मैंने अपने पिछले संपादकीय में लिखा था कि बायलॉजिकल युद्धों के लिए देशों और लोगों को तैयार रहना पड़ेगा।

मानती हूँ कि जिन परिस्थितियों का सामना हर देश और वहाँ की जनता को करना पड़ रहा है, ये परिस्थितियाँ अप्रत्याशित हैं। देश तैयार नहीं थे और लोग भी करोना के परिणामों से अनभिज्ञ थे। पूरे विश्व पर अकस्मात् अघात हुआ है। किसी भी असामान्य परिस्थितियों से लड़ते हुए कठिनाइयाँ आती हैं। ये कठिनाइयाँ और भी बढ़ जाती हैं, जब लोग अपने कर्त्तव्य भूल कर दूसरों पर दोषारोपण करने लगते हैं।

पूरे विश्व के लोग अब इस महामारी के घातक परिणामों से परिचित हो गए हैं, इससे जीवन जा सकता है। अगर ज़िंदगी ही नहीं तो काहे का संसार, पर अफ़सोस इसी बात का है, मानव जाति यह समझते हुए भी सचेत नहीं हो रही। अपने नैतिक और सामाजिक कर्त्तव्यों के प्रति बेपरवाह जीवन जी रही है और अपना तथा दूसरों के जीवन को जोखिम में डाल रही है। महामारी का अर्थ ही संक्रमण, फैलने वाली बीमारी है।

मनुष्य जीवन मिला है तो इसकी ज़िम्मेदारी स्वयं मनुष्य की होती है और उसे लेनी भी चाहिए। इस महामारी से लड़ने, इससे जीतने और इससे बचने के लिए सावधानियाँ लेना ज़रूरी है, जो पूरे विश्व में ली नहीं जा रहीं। दिन प्रति दिन मृत्यु दर और मरीज़ों के आँकड़े बढ़ रहे हैं, तब भी मनुष्य जाग्रत नहीं हो रहा।

संपादकीय

जिन देशों में लोकतांत्रिक ढाँचा है, वहाँ यह महामारी रुकने का नाम नहीं ले रही। जिन देशों में सख़्ती की गई, वे देश ही इसे फैलने से रोक पाए हैं। जापान और न्यूज़ीलैंड जैसे कुछेक ही ऐसे लोकतांत्रिक देश हैं, जहाँ करोना बड़ी जल्दी नियंत्रण में आ गया। इसका श्रेय वहाँ की जनता को जाता है, जिन्होंने देश और अपने प्रति नैतिक दायित्वों को निभाया और सरकार के साथ मिल कर इस पर नियंत्रण पाया।

विश्व का युवा वर्ग करोना का 'कैरियर' बनता जा रहा है; क्योंकि किसी तरह के लक्षण नहीं होने से, वे सावधानियाँ को अनदेखा कर रहे हैं। यह ज़रूरी नहीं कि वे करोना से ग्रसित नहीं होते। यह त्रासदी कई देशों की है।

Covid-19 यानी करोना अब किसी का भी लिहाज़ नहीं कर रहा। अमेरिका के कई शहरों में युवा वर्ग और बड़ों ने लॉक डाउन खुल जाने की पार्टियाँ दीं और बीस से तीस साल के युवा करोना के शिकार हुए और कई मृत्यु का ग्रास बने। नैतिक और सामाजिक कर्त्तव्य तो हर देश की जनता को स्वयं ही उठाने होंगे। अपने-अपने जीवन का उत्तरदायित्व भी।

कई देशों के नेता और सरकारें तो इस महामारी पर राजनीति की बिसात बिछाए हुए हैं.... अर्थ व्यवस्था की आड़ में अपनी गद्दी सँभालने के चक्कर में लोगों के जीवन से खिलवाड़ कर रही हैं। भारत के पास 'महाभारत' एक ऐसा महाकाव्य, प्राचीन ग्रंथ है, जिसके अंत से बहुत बड़ी शिक्षा मिलती है। नेताओं को समझना चाहिए कि जनता है, तो देश है। लोगों के जीवन से खेल कर किन पर राज करेंगे! हर देश के पास महाभारत जैसे पुरातन ग्रंथ और पुरा कथन हैं। पर मानवीय प्रवृत्ति का मनोविज्ञान आज तक कोई समझ नहीं पाया। नई सभ्यता पुरानी सभ्यता के विनाश से कभी सीखती नहीं।

परिस्थितियों की इस ऊहापोह से सबको स्वयं ही निकल कर आत्मनिर्भर होना पड़ेगा। समय के परिवर्तन के साथ-साथ पूरे विश्व की राजनैतिक सोच और सामाजिक मानसिकता बहुत बदल रही है। इस बदलाव से पूरे विश्व की अर्थ व्यवस्था और राजनैतिक विचारधाराओं में उथल-पुथल होगी....

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

उम्मीद... हर कठिन समय में हमेशा सिर उठा कर खड़ी रहती है। वही है जो हमें जीने का हौसला प्रदान करती है। जब भी हम निराशा के अंधकार में घिरते हैं, तो यही उम्मीद कहीं से रोशनी की एक किरण के रूप में फूटती है और हमें दिशा दिखा देती है। इस कठिन समय में भी यही हमें राह दिखाएगी।

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन, अमेरिका तथा शिवना प्रकाशन द्वारा अंतर्राष्ट्रीय कथा-कविता सम्मान घोषित

(सभी सम्मान लेखिकाओं को)

ममता कालिया, उषाकिरण ख़ान, अनिलप्रभा कुमार, प्रज्ञा, रश्मि भारद्वाज तथा गरिमा संजय दुबे को सम्मान

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका ने अपने प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान तथा शिवना प्रकाशन ने अपने प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय कथा-कविता सम्मान घोषित कर दिए हैं। इस वर्ष के सभी सम्मान लेखिकाओं को दिए जाएँगे।

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन सम्मानों की चयन समिति के संयोजक पंकज सुबीर ने बताया कि 'ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन लाइफ़ टाइम एचीवमेंट सम्मान' हिन्दी की वरिष्ठ साहित्यकार ममता कालिया को प्रदान किए जाने का निर्णय लिया गया है, सम्मान के तहत इक्यावन हज़ार रुपये सम्मान राशि तथा सम्मान पत्र प्रदान किया जाएगा। वहीं 'ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान' उपन्यास विधा में वरिष्ठ साहित्यकार पद्मश्री उषाकिरण ख़ान को वाणी प्रकाशन से प्रकाशित उनके उपन्यास 'अगनहिंडोला' हेतु तथा कहानी विधा में वरिष्ठ प्रवासी कहानीकार अनिलप्रभा कुमार को भावना प्रकाशन से प्रकाशित उनके कहानी संग्रह 'कतार से कटा घर' हेतु प्रदान किए जाएँगे, दोनों सम्मानित रचनाकारों को इकतीस हज़ार रुपये की सम्मान राशि तथा सम्मान पत्र प्रदान किया जाएगा।

शिवना प्रकाशन के सम्मानों की चयन समिति के संयोजक श्री नीरज गोस्वामी ने बताया कि 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना कथा सम्मान' हिन्दी की चर्चित कथाकार प्रज्ञा को लोकभारती प्रकाशन से प्रकाशित उनके उपन्यास 'धर्मपुर लॉज' के लिए, 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना कविता सम्मान' महत्त्वपूर्ण कवयित्री रश्मि भारद्वाज को सेतु प्रकाशन से प्रकाशित उनके कविता संग्रह 'मैंने अपनी माँ को जन्म दिया है' के लिए प्रदान किया जाएगा। दोनों सम्मानित रचनाकारों को इकतीस हज़ार रुपये की सम्मान राशि तथा सम्मान पत्र प्रदान किया जाएगा। 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना कृति सम्मान' शिवना प्रकाशन से प्रकाशित कहानी संग्रह 'दो ध्रुवों के बीच की आस' के लिए युवा कथाकार गरिमा संजय दुबे को प्रदान किया जाएगा, सम्मान के तहत ग्यारह हज़ार रुपये सम्मान राशि तथा सम्मान पत्र प्रदान किया जाएगा।

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका तथा शिवना प्रकाशन द्वारा हर वर्ष साहित्य सम्मान प्रदान किए जाते हैं। पिछले वर्ष यह सम्मान भोपाल में आयोजित एक भव्य समारोह में प्रदान किए गए थे। चूँकि इस वर्ष यह आयोजन किया जाना किसी भी प्रकार से संभव नहीं है इसलिए सम्मानित रचनाकारों को इस वर्ष यह सम्मान एक ऑनालाइन कार्यक्रम में प्रदान किए जाएँगे। अगले वर्ष 2021 के सम्मान प्रदान करने के लिए आयोजन किया जाएगा तो उसमें इस वर्ष के सम्मानित रचनाकारों को भी मंच पर सम्मानित किया जाएगा।

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका का यह चतुर्थ सम्मान समारोह है। हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार, कवयित्री, संपादक डॉ. सुधा ओम ढींगरा तथा उनके पति डॉ. ओम ढींगरा द्वारा स्थापित इस फ़ाउण्डेशन के यह सम्मान इससे पूर्व उषा प्रियंवदा, चित्रा मुद्‌गल, महेश कटारे, डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, डॉ. कमल किशोर गोयनका, मुकेश वर्मा, मनीषा कुलश्रेष्ठ तथा प्रो. हरिशंकर आदेश को प्रदान किया जा चुका है। जबकि शिवना सम्मान का यह दूसरा वर्ष है, इससे पूर्व गीताश्री, वसंत सकरगाए तथा ज्योति जैन को प्रदान किया जा चुका है।

-शहरयार अमजद ख़ान

उनकी महफिल से हम उठ तो आए

गीताश्री

गीताश्री
सी-1339, गौर ग्रीन एवेन्यू, अभय खण्ड-2, इंदिरापुरम, ग़ाज़ियाबाद, 201014, उत्तरप्रदेश,
मोबाइल- 9818246059
ईमेल- geetashri31@gmail.com

तूफ़ान कई तरह के होते हैं। कुछ जो धरती और आकाश के बीच घटित होते हैं, धूल का खेल खेलते हैं और सबको धूल-धूसरित कर जाते हैं। एक वो जो समंदर को तबाह कर देते हैं। कुछ तूफ़ान बाहर नहीं, भीतर घटित होते हैं, जिनका जीवन से सीधा संबंध होता है। जीवन के तूफ़ान, तबाही लाते हैं, संबंधों की दुनिया को तबाह कर जाते हैं। जीवन में कोई कोई ख़बर तूफ़ान पैदा कर देती है।

छपरा के अजय प्रसाद उर्फ रे छपरा के जीवन में कुछ ऐसा ही तूफ़ान पिछले दिनों आया कि वे सँभल न सके।

उन्हें होस्टल के दोस्त पुकारते हैं अलग नाम से- ''रे छपरा।'' यानी वो छपरा के रहने वाले हैं और ये बात वे कभी नहीं भूलते।

अपने जीवन में वे कुछ आदर्श लेकर जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय में आए थे। होस्टल में रहते थे, जहाँ उनके दोस्त-यार कभी नाम से नहीं पुकारते थे। उन्हें प्यार से पुकारते थे- ''रे छपरा, सुनता है रे...नहीं सुनता...या कोई पुकारता- रे अजइया...कहाँ है रे भोंस...के...''

कोई पूछता कि तुम्हें रे छपरा सुन कर बुरा नहीं लगता। अजय जवाब देता- सर, अजय तो बहुत होगा, रे छपरा तो हम हीं न हैं अकेले...।

पूछने वाला लाजवाब हो जाता।

अजय प्रसाद को ऐसे सवालों और संबोधन की आदत थी, उनसे लगाव था। उसकी वजह थी, उसके दोस्त यार गाँव भूलने ही नहीं देते थे। हमेशा छपरा की याद दिलाते रहते और उसके भीतर के गवँईपन को पोसते रहते थे। धीरे-धीरे सब लोग रे छपरा से ही बुलाने लगे थे। इस प्रकार वे एक आदर्शवादी युवक में बदलने लगे थे, जिनका लक्ष्य कुछ अलग और समाजोपयोगी करना था।

हाँ तो हम उनके जीवन में आए तूफ़ान के बारे में बात कर रहे थे। इस तूफ़ान में धूल नहीं, अरमानों की धज्जियाँ उड़ रही थीं।

एक ख़बर क्या आई, समूचे घर में तूफ़ान पैदा हो गया। ऐसा तूफ़ान जिसे सँभालना प्रसाद खानदान के वश में नहीं था। छपरा के बलदेव प्रसाद जी का एकलौता बेटा अजय

प्रसाद जे. एन. यू , दिल्ली में शोध करने गया था, साल भर बाद ही सिंगल से डबल होकर लौटा। घरवाले हैरान-परेशान। अच्छा खासा कुँवारा लड़का स्थानीय विश्वविद्यालय से पढ़ कर दिल्ली पहुँचा था, शोध कार्य के लिए। एक साल में इतना बदल गया कि साथ में ले आया अपनी दुल्हन। वो भी ऐसी दुल्हन जिसकी मुँह दिखाई तक संभव नहीं।

घर-आँगन के लोग माथा पकड़ कर बैठ गए थे कि ये क्या हुआ कि सीधा-सादा लड़का अपने लक्ष्य से ही भटक गया। जैसे कोई जहाज़ अपने बंदरगाह से भटक कर किसी और अनजान द्वीप पर पहुँच जाए। अजइया बियाह कर लिया, अपनी कनिया दिल्ली से लेकर आया है। छपरा के पास ही बसे उसके मूल गाँव पानापुर में भी ख़बर फैल गई थी। घरवाले तैयारी में थे कि अब तो जो कर लिया सो कर लिया, दुल्हिन को लेकर गाँव जाएँगे, वहीं पर सारा विधि विधान करेंगे। अपनाने के सिवा कोई उपाय जो नहीं था। प्रसाद खानदान में एक ही बेटा, दो बेटी थीं। दोनों बेटियाँ छोटी थीं। बड़ा बेटा ही कांड कर आया।

माँ छाती कूट रही थीं - ''हाय, हाय, बेटा हाथ से निकल गया।''

पिता चीख रहे थे- ''पहले नौकरी कर लेता, फिर करता शादी। इतनी क्या जल्दी पड़ी थी। दोनों को ख़र्च कौन उठाएगा।''

चाचा कोस रहे थे- ''जाति-पाति भी न देखा, खानदान नाश दिया।''

दोनों छोटी बहनें हल्ला मचा रही थीं कि बिना हमारी पसंद के, भाभी कैसे ला सकते हैं आप।

पूरा परिवार दुल्हिन से मिलने के लिए बेताब हो उठा था। अजय डर के मारे अपनी दुल्हन को सीधा घर नहीं लाया। छपरा के एक छोटे से होटल में छोड़ कर अकेले घर आया ताकि घरवालों को ख़बर बता कर अपनी पत्नी से मिलने के लिए तैयार कर सके।

माँ का माथा ठनका।

''तू उसे भी साथ क्यों न लाया ?''

चचेरी भाभी पूछी- ''कनिया को क्यों छुपा रहे हैं बबुआ जी, दिल्ली की लड़की है, मानते हैं, बहुत मॉर्डन होगी। सलवार-कुर्ता, जींस कुछो पहना कर ले आइए, अब यहाँ कौन पूछता है, यहाँ सब लोग पहनते हैं अब...समय बदल गया है...परदा ख़त्म हैं अब। सब सिर उघाड़ कर घूमने लगी है।''

सबसे छोटी बहन निभा देह से लटक गई- ''भाभी के पास हमें ले चलो...हमें मिलना है।''

बड़ी वाली बहन आभा बोली- ''फ़ोटो है, मोबाइल में दिखाओ...'' बोलते बोलते मोबाइल झपट लिया। अजय ने चीखते हुए मोबाइल छीन लिया।

''ख़बरदार जो मोबाइल छुआ...''

दोनों बहनें सहम गई। माँ को अजय का यह रूप विचित्र लगा। शांत स्वभाव का अजय एक साल में कैसे इतना बदल गया। अपनी बहनों से कभी इस तरह बात नहीं करता था। एक लड़की के प्यार ने इसे इतना बदल दिया। जाने लड़की ने क्या जादू किया है। दिल्ली की लड़कियाँ जादूगरनी होती हैं। दिल्ली जाते समय सबने चेताया था, देखना, वहाँ से कोई पंजाबी लड़की उठा लाएगा। जी कड़ा करके बेटा को भेजना पड़ा। क्या पता था कि एक साल के अंदर, बिना नौकरी किए, उसके सिर पर कोई लड़की लाकर रख देगा। सदमे से बेहाल अपनी माँ को अजय एक कोने में ले गया। उनके कान में कुछ कहा, माँ के चेहरे का रंग तुरंत बदल गया। थोड़ी देर पहले जो चेहरा स्याह पड़ा हुआ था, उस पर चमक लौट आई थी।

माँ ने झटपट बेटियों को लिया, उसके पिता के संग होटल चलीं कनिया से मिलने। आँगन की भाभियाँ गुहार करती रहीं। उन्हें भरोसा दिलाया कि शीघ्र साथ लेकर यहाँ आएगा, मुँह दिखाई की रस्म करेंगे और बाकी के विधि के लिए गाँव चले चलेंगे।

चलते हुए माँ ने अपनी जेठानी के कान में फुसफुसा कर बता दिया- शादी नहीं किया है, हमसे मिलाने लाया है। लड़की हमसे मिलना चाहती है, उसके बाद शादी होगी। अभी मामला हाथ में है...। लड़की पसंद आई तो बात बढ़ाएँगे, फिर ले दे के, पारंपरिक तरीके से करेंगे शादी, नहीं तो मना कर देंगे। बेटे को दिल्ली नहीं लौटने देंगे। चाहे जो हो जाए।

छपरा के सबसे व्यस्त इलाके के एक साधारण से होटल में चरखी चुपचाप बैठी हुई थी। सिर झुकाए। सबको प्रणाम करने के बाद एक तरफ़ बैठ गई थी। सलवार-कुरते में थी। चुन्नी से चेहरा ढँक रखा था। बाईं ओर से हल्की झलक मिल रही थी। दोनों बहनें जाकर पास में बैठ गईं और उसका चेहरा देखने की कोशिश करने लगीं। चरखी अपने भीतर घुसती चली जा रही थी। उसे देख कर लग रहा था कि अभी वह उन सबका सामना करने को तैयार न थी।

अजय की आवाज़ ने सबके मौन को भंग किया-

''इससे पहले की आप लोग चरखी को देखें, हम आपको कुछ सच बताना चाहते। हम एक नये जीवन की शुरूआत करने जा रहे हैं, इसलिए झूठ बोलकर, आपको धोखे में रख कर नहीं करेंगे। सच आपके सामने रखना चाहते हैं।''

''बस इतनी कृपा करिएगा कि कोई आपत्ति हो तो शांति से बात करिएगा। चरखी की बेइज़्ज़ती मत करिएगा।''

अजय दोनों हाथ जोड़ कर बोल रहा था। पिता को कुछ गड़बड़ लगा। अजय ने मामले को रहस्यमय बना दिया था। लड़की दिल्ली की थी, फिर इतना लजा क्यों रही थी। किस बात की परदेदारी? अभी तो बहू भी नहीं बनी थी। लड़की कहीं लूली-लंगड़ी , गूँगी, बहरी तो नहीं। उनका सिर चकराया। कोई तो ऐब है...नहीं तो आजकल लड़कियाँ इतना कहाँ शर्म करती हैं। बेधड़क मिलती हैं, बातें करती हैं। वे 2015 में 1960-70 जैसा हाल देख रहे थे। उनके ज़माने में लड़कियाँ पोटली बनी रहती थीं। किसी सामान की तरह, कहीं भी उठा कर रख दो। एक हाथ लंबा घोघ (घूँघट) तानती थीं।

अब कहाँ ये सब। किस दुनिया, किस समय की है ये लड़की।

''बाबूजी...ये चरखी है। वक़्त की मारी हुई, एक ऐसी लड़की, जिसका इस वक़्त मेरे सिवा कोई नहीं। मैं इससे प्यार करता हूँ और ये मुझसे। आप लोगों के आशीर्वाद से हम शादी करना चाहते हैं...मगर...''

''क्या कहना चाहता है तू...?''

माँ ने तीखे अंदाज़ में प्रतिवाद किया।

''यही कि आपके अरमानों पर मैंने पानी फेर दिया। एक और बोझ बढ़ा दिया। मैं चाहता हूँ- कुछ समय आपके साथ यहाँ रहे। जब तक मैं अपने पैरों पर खड़ा न हो

जाऊँ तब साथ ले जाऊँगा। अभी मैं घर नहीं चला सकता।''

छोटी बहन बार-बार चरखी का चेहरा देखने की कोशिश करती। उसका मन हो कि मुख पर पड़ा घोघ हटा दे। शहरी लड़कियाँ कहीं परदा करती हैं। मगर भाई का तेवर देख कर सहम गई।

पिता अपने शांत स्वभाव के बेटे का साहस देख कर दंग थे। प्यार कितना निडर बना देता है। चुप्पा इंसान भी बोल उठता है।

उन्हें तो लगता था कि ये लड़का कल को शादी करेगा तो पत्नी से बात भी करेगा या नहीं, क्या पता। उनका अनुमान कितना ग़लत निकला। ऐसे ही चुप्पे लड़के गुल खिलाते हैं। माँ-बाप को भरोसे में रख कर तगड़ा झटका देते हैं। एक झटका दे तब तो। यहाँ तो झटका पर झटका दिए जा रहा है। सीधी बात नहीं, पहेलियाँ बुझा रहा।

पिता ने उसे डपट दिया- ''सुनो अजय बाबू, आप भूमिका मत बाँधिए। बूझे...जो कहना है, साफ-साफ कहिए और जल्दी कहिए। जो तय करना है, अभी कर लेते हैं। हम तो अभी आपकी शादी के फेवर में नहीं हैं। और चाहे कितनी मुसीबत की मारी लड़की हो, हम घर में अनाथ आश्रम नहीं चलाएँगे...''

चरखी ने हिचकी ली...

अजय ने हौले से उसे छुआ। वह शांत पड़ गई।

चरखी की गर्दन वैसे ही झुकी रही।

''चरखी सुंदर नहीं है, जैसी सुंदर बहू का सपना आपलोग देखते हैं, हमारे मन में भी वही सब बात भरे थे, आप। कभी ये नहीं बोले कि लड़की स्वभाव की सुंदर हो, उससे तेरी पटे, तुझे प्यार हो, पसंद हो, वैसी पुतोहू लाना। हमने उल्टा किया। अपनी पसंद की लड़की चुनी, जो मन की बहुत सुंदर है, गुणी है, और जिससे मुझे सच्चा प्यार...''

''प्यार...तुमको पिछवाड़ा धोने का लूर है रे, प्यार करने चला है...जानता भी है कि प्यार क्या होता है। कुल खानदान भी कोई चीज़ है। प्यार से बढ़कर परिवार के प्रति कर्तव्य होता है, इतना तो जानते हो कि नहीं...बड़ा आया, बाप को प्यार का पाठ पढ़ाने वाला... जहाँ से आए हो, सीधे वहीं निकल लोज''

पिता तमतमा उठे थे। ग़ुस्से से उनका चेहरा लाल भभूका हो उठा था। वे अभी इतने बूढ़े भी नहीं हुए थे। पचास तक पहुँचे ही थे। बाप-बेटा साथ चलते तो भाई सरीखे दीखते थे। गठीले बदन वाले पिता ने अजय की ठुकाई भी खूब की है। वो तो चरखी का लिहाज कर गए, नहीं तो ग़ुस्से में हाथ उठ गया होता उनका।

माँ ने हस्तक्षेप किया।

''देखिए, जवान बेटा है, हम उसकी मर्ज़ी के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते। हमें उसकी बात सुन लेना चाहिए। फिर हम अपना फ़ैसला सुना देंगे, साफ-साफ। एक लड़की के लिए अपना बेटा तो नहीं खो सकते न...''

''अजय की माँ...तुम ही दिमाग़ चढ़ा रखी हो बच्चों का, कल को ये दोनों लड़कियाँ भी उठा लाएँगी कहीं से दो लंगूर, बाँध देना उनके गले में अपने बेटियाँ।''

''चुप्प हो जाइए...मुझे बात करने दीजिए।''

माँ अपने रौद्र रूप में आईं तो पिता थोड़े शांत पड़े और उठ कर कमरे से बाहर निकल गए।

वे बड़बड़ाते जा रहे थे- ''अब माँ-बेटा मिल कर खिचड़ी पकाएगा...ऐसा बेटा निकला...माँ-बाप की ज़रूरत ही न रही...हमलोग प्रेम नहीं करते थे क्या..तो क्या सबको घर उठा लाते थे...जहाँ माँ बाप तय कर दिए, कर लिए...''

दोनों बहनें सहम कर कमरे में एक कोने में जाकर बैठ गईं।

अजय पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। वैसे ही अविचल बैठा रहा। चरखी थोड़ी हिलडुल रही थी। लगा-कुछ कहना चाहती थी। अजय उसे रोक रहा था।

माँ ने कहा- ''हमें लड़की से बात करवाओ...काहे छुपा रखे हो। क्या दिक्कत है...तुमको पसंद है तो हम विचार कर सकते हैं। एतना नौटंकी करने की क्या ज़रूरत है। हम लोगों को दिल्ली बुला लेते, हम वहीं सब फाइनल कर देते। यहाँ आने का क्या मतलब...''

वे तीक्ष्ण निगाहों से चरखी को ताड़ रही थीं।

माँ...

अजय हिचका।

माँ सशंकित हो उठी। अजय ऐसा क्या कहना चाह रहा। इतना समय क्यों ले रहा है। उनके मन में सवालों के तूफ़ान उठ रहे थे।

''पहले मैं आपको एक कहानी सुनाना चाहता हूँ...उसके बाद आप चरखी को देखना, बात करना...पहले कहानी सुन लो...''

''ये कहानी सुनने का टाइम है क्या बेटा। यहाँ हम सबकी साँस अटकी हुई है। बाहर तेरे पिताजी साँप की तरह फुफकार रहे हैं। देर करोगे तो हम दोनों को भस्म कर देंगे।''

अजय ने उन्हें अनसुना कर दिया।

''एक लड़की थी, मासूम-सी, भोली-भाली। उसकी शादी कम उम्र में एक शैतान से कर दी गई।''

''हमको नहीं सुनना कोई कहानी-वहानी...तुम तो नई कहानी बना रहे हो...अजूबा हो तुम बेटा...''

माँ ने माथा ठोंका।

''उसका पति उसे बहुत मारता-पीटता था। लड़की सुंदर थी, जीवन में कुछ बनना चाहती थी। उसे घरवाले इजाज़त नहीं देते थे। वह गिड़गिड़ाती थी, तो उसका पति मारपीट करता था। घरेलू हिंसा समझती हो न माँ...अपराध है ये। सख्त सज़ा होती है कानून में।''

दोनों छोटी बहनें कहानी का नाम सुन कर भाई के करीब आ गई थीं। थोड़ी देर पहले जो डर से एक कोने में सिमट गई थीं, वे कहानी सुनने के लिए पास आकर बैठ

गईं।

माँ कसमसा रही थीं।

अजय ने दोनों की तरफ़ देखते हुए कहा– ''तुम दोनों भी सुनो, ये कहानी तुम्हारी ज़िंदगी के लिए ज़रूरी है। कल तो तुम्हें भी दूसरे घर जाना है। जान लो, तो सावधान रह सकोगी।''

''इन दोनों को क्या समझा रहे हो...हम हैं इनकी चिंता करने के लिए। इसका बाप ज़िंदा रहेगा। भाई हाथ से निकल गया तो क्या...''

माँ ने ताना मारा।

अब चरखी थोड़ा हिलने-डुलने लगी। चेहरा पर उसी तरह ढँका रहा।

अजय पर माँ के ताने का कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। वह वैसे ही अविचिलित था जैसे जे एन यू कैंपस में रहता है जब कोई उसे पुकारता है– रे छपरा। वो उस समय समूचा ज़िला हो जाता है। छपरा ज़िला। घाघरा नदी के उत्तरी तट पर बसा हुआ तूफ़ानी शहर। नदी का बहाव उसकी रगों में दौड़ने लगता। अपनी श्यामल देह पर पूरे क़स्बाई शहर और नदी की शीतल परछाईं ओढ़ कर सुख की नींद सो जाता था। उसका मन ही न होता कि प्रतिवाद करे। जिसे जो कहना है कहे, कुछ भी कहने के मौलिक अधिकार को वो कैसे छीन ले। अभी कहानी सुनाना उसका मौलिक अधिकार था।

वह अविचलित कथा कहता रहा–

''उस लड़की ने घरेलू हिंसा खूब सही, क्योंकि उसे लगता था, एक दिन सब ठीक हो जाएगा। आदमी का हृदय बदलेगा तो समय भी बदल जाएगा। बुरा वक़्त चुपचाप काट लेना चाहिए। उसके माँ बाप ने उसे यही समझाया था। वो फिर एक बेटे की माँ बनी। उसे लगा, अब तो हृदय ज़रूर बदलेगा। लेकिन...

चरखी के सिसकने की आवाज़ आई। इधर माँ कथा सुनते हुए विचलित हो उठी थीं। उनके मुँह से एक शब्द न निकला। दोनों बहने मुँह बाए भाई को देख रही थीं। पिता जी दो बार कमरे में झाँक कर चले गए। उन्हें लगा, माँ बेटे में कुछ गंभीर बहस हो रही है। वे बाहर ही टहलते रहे। सोचा, एक सिगरेट फूँक लें इतनी देर में।

अजय ने चरखी को रोने से नहीं रोका। माँ का चेहरा पसीजा।

''क्यों रो रही है ? चुप कराओ उसे...हम मिलने आए हैं वो मुँह ढक कर बैठी है। अजीब बात है, बेटा कहानी सुना रहा है, बाप बाहर टंडइली करने चला गया, मने कुछ समझ ही नहीं आ रहा।''

''बेटा भी पाँच साल का हो गया, मगर लड़की पर अत्याचार कम न हुए। वह पिटाई खाती रही, ज़ुल्म सहती रही, एक दिन उसकी सहनशक्ति ख़त्म हो गई। उसने विद्रोह कर दिया। अपने बेटे को उठाया और घर से निकल गई। मायके में शरण नहीं मिला तो एक एनजीओ के पास गई, उनकी सहायता से अलग जीवन शुरू किया, पति से तलाक़ माँगा। पति को यही बात अखर गई कि पत्नी तलाक़ माँग रही है, इसकी इतनी औकात...?''

''बेटा...हमारे समाज में कहाँ औरतें तलाक़ माँगती हैं, शुक्ला जी के यहाँ भी ऐसा मामला उठा था, सब लोग मिला कर उनकी बहू को इतना दबाए कि वह पीछे हट गई। हम लोग मीडिल क्लास हैं बेटा, औरतों के लिए बहुत आसान नहीं है...बेचारी...कैसे झेली होगी...सब...?''

''अच्छा, कहानी ख़त्म हुई हो तो इनसे बात करवा दो...''

चरखी की तरफ़ घूम कर बोलीं।

''अभी कहाँ...''

अजय मानों पत्थर का हो चुका था जिसके मुख में स्पीकर लगा हो, वह वाक्य जहाँ छोड़ता, वहीं से उठाता।

''पति की आन पर बन आई। समाज में कैसे मर्दानगी झाड़ता। वो मर्द कैसे, जिसकी पत्नी तलाक़ दे दे। उसने सबक सिखाने का सोचा। एक दिन पत्नी से गिड़गिड़ाया कि बेटे से मिलवा दो। बेचारी पत्नी को दया आ गई। आख़िर बच्चे पर बाप का हक़ होता है न। वह झाँसे में आ गई और उसे लेकर मिलवाने चली। दिल्ली में एक बुद्धा गार्डन है, जहाँ प्रेमी, प्रेमिका मिलते हैं, बहुत घना जंगल है उसके अंदर। वहाँ बुलाया था। पति ने बेटे को गोद में उठाया, पत्नी के चेहरे पर कुछ फेंका और भागता हुआ गार्डन से बाहर निकल गया। बेटा चीखता, रोता रहा। पिता ने पलट कर पीछे नहीं देखा। लड़की वहीं गिरी हुई तड़पती रही। उसका आधा चेहरा और कंधा झुलस चुका था।''

''जानती हो क्या फेंका था उसके ऊपर...?''

माँ काँप कर रह गई।

''तुम जो बाथरूम साफ करने के लिए मँगाती हो न...तेज़ाब। वही फेंका था उसके मुँह पर...''

''ओह...बेचारी औरत...क्या हुआ होगा उसका...कहाँ गई होगी। तुम जानते हो क्या उसको...?''

''लड़की कई दिन तक तड़पती रही, झुलसे हुए चेहरे के साथ। वहाँ से किसी तरह भाग कर एक जगह पहुँची, जहाँ मज़दूर सब रहते थे। वहीं गिर कर बेहोश। उसी हालत में तीन चार दिन रही, घाव में कीड़े पड़ने लगे तो एक मज़दूर को दया आई, उसने पहुँचा दिया। जानती हो माँ, उस लड़की का भाग्य कितना ख़राब था, मज़दूरों में से एक लफंगा निकला। उसने रात में उसके साथ ग़लत काम करने की कोशिश की, लड़की चिल्लाई तो बाकी मज़दूरों ने उसे बचाया और उसे अस्पताल के दरवाज़े पर छोड़ कर चले गए। लड़की बच गई, मगर उसका आधा चेहरा सड़ चुका था। आँखें बच गई, ग़नीमत है। वो लड़की अब सहारा ढूँढ़ रही है। उसका विश्वास सारे संबंधों से उठ गया है। उसे कहीं नौकरी नहीं मिल रही है। पढ़ी-लिखी है, मगर उसे कौन नौकरी देगा। तलाक़ हो चुका है, बेटा पति ले कर शहर से ग़ायब हो चुका है। कहीं अता-पता नहीं। एन जी ओ वाले कुछ करेंगे उसके लिए। जल्दी उसे काम मिल जाएगा। ज़िन्दगी सामान्य हो जाएगी उसकी...मैं चाहता हूँ, वो फिर से विश्वास करना सीखे...।''

माँ कहानी का अंत सुन कर उलझन में पड़ गईं। बेटे का इस कहानी से क्या कनेक्शन। दोनों बहनें कुछ ज़्यादा नहीं समझ पाईं थी। तेज़ाब के बारे में न सुना था न उसका प्रभाव देखा था।

''बेटा, पिता जी को बुला लो अंदर। कितनी देर बाहर खड़े रहेंगे। जो बात होगी, उनके सामने हो।''

''माँ...पहले आप कहिए...क्या आप उस लड़की के लिए कुछ नहीं करेंगी...एक औरत होने के नाते, आपका कुछ दायित्व नहीं बनता...?''

''अजय...एक बात बता, अभी इस बात का क्या मतलब, तेरी कहानी सुन ली। बस कर...मुद्दे की बात कर...।''

माँ की आवाज़ तीखी थी।

''मैं उस लड़की से प्यार करता हूँ माँ, उससे शादी करना चाहता हूँ और आप सबका साथ चाहता हूँ...।''

अजय ने अपनी माँ का हाथ पकड़ लिया। उसके चेहरे के भाव बदले। अब तक भावशून्य होकर कहानी सुना रहा था। अचानक चेहरे पर करुणा उभरी।

''ये वही लड़की है...?'' चरखी...माँ के होठ काँपे।

चरखी ने धीरे से अपना दुपट्टा हटाया, चेहरे से। सबने देखा- गेहुँआ चेहरा, कजरारी आँखें, काली लटें चेहरे पर, चरखी दूसरी तरफ़ घूमी। वह खड़ी हो गई, अजय की माँ की तरफ़ बढ़ना चाहती थी, उनके पैर छूने के लिए। चेहरे का दूसरा साइड देखते ही माँ और उसकी दोनों बहनें ज़ोर से चीखीं। पिता भी कमरा खोल कर अंदर घुसे थे, वे वहीं ठिठक गए। अंदर का दृश्य उनकी कल्पना से परे था। चरखी के दाएँ साइड का चेहरा बुरी तरह झुलस गया था। चमड़ी सिकुड़ गई थी, सफेद त्वचा अंदर से झाँक रही थी। चमड़े की गुठलियाँ-सी बनी हुई थी, जिससे वो हिस्सा उबड़-खाबड़ हो गया था। दोनों आँखें सलामत थीं, जिसमें काजल लगा रखा था। होंठ थोड़े ही झुलसे थे। नाक का ऊपरी कुछ हिस्सा भी गल गया था। झुलसा हुआ कंधा नहीं दिखाई दे रहा था, वह हिस्सा कुर्ते से ढँका हुआ था। कान भी क्षतिग्रस्त था। मगर उसमें चाँदी के इंयरिंग्स लटक रहे थे। गले में भी पतली-सी चाँदी की चेन थी। बाएँ साइड से चरखी

मोहक लग रही थी, दाएँ साइड होते ही मंज़र बदल जाता था।

माँ ने अपनी आँखें बंद कर ली। बहनों ने माँ की देह में अपना चेहरा धँसा दिया।

''अजय की माँ, घर चलो...।'' कड़कती हुई आवाज़ में ऑर्डर देते हुए पिता फिर कमरे से बाहर निकल गए थे।

अजय ने माँ का हाथ पकड़ लिया था। माँ के मुँह से एक ही शब्द निकला- ''ई मुँहझौंसी कहाँ मिल गई तुम्हें ? हम कभी न होने देंगे...नहीं होगा...नहीं...इस जन्म में नहीं...हम मर जाएँगे, मगर ये शादी नहीं।''

माँ ने अजय का हाथ झटका और दोनों बेटियों को घसीटती हुई दरवाज़े तक गईं। पलट कर देखा, चरखी आधा मुँह ढँक कर खड़ी थी। अच्छी-खासी लंबाई, छरहरे बदन वाली लड़की थी, बेचारी क़िस्मत की मारी...इससे सहानुभूति रख सकते हैं, इकलौता बेटा थोड़े न ब्याह देंगे...

उनकी आँखों से झर-झर आँसू गिरने लगे। वे अपने ग़ुस्से, दुख पर काबू पाते हुए बोलीं- ''तुमको जो मन आए करो, हमारे दरवाज़े हमेशा के लिए बंद।'' वे धड़ाम से दरवाज़ा बंद करके निकल गईं। पिता की आवाज़ आई- ''मर गया बेटा, सब खेत-पथार दोनों बेटियों को दे देंगे। इसको एक फूटी कौड़ी नहीं मिलेगा। बंद करो खर्चा पानी। हम श्राद्ध कर देंगे उसका...घर में घुसने नहीं देंगे।''

अजय वहीं ठिठका खड़ा रह गया। आगे बढ़ कर किसी को न रोका। चरखी जड़ हो गई थी। ज़िंदगी उसके साथ अभी कितने खेल खेलने वाली थी, अंदाज़ा हो गया था। उसने तो अजय को पहले ही समझाया था कि इतना बड़ा फ़ैसला मत लो। एसिड सरवाइवर लड़कियों की ज़िन्दगी नरक हो जाती है इस बेरहम समाज में। कोई नहीं अपनाता है। काम देना तो दूर। किसी न किसी के रहम पर जीना पड़ता है उन्हें। कितने मामले वो देख चुकी थी। अधिकतर लड़कियों को प्रेमियों या ठुकराए हुए लड़कों ने तेज़ाब फेंका था। उसके साथ तो पति ने ही किया। उसका विश्वास सदा के लिए इस संबंध से उठ गया था। अगर अजय उसके जीवन में न आता तो वह कभी छपरा तक नहीं आती। उसे दुनिया का, संबंधों का सामना करने की हिम्मत नहीं बची थी। उसका बेटा भी लापता हो चुका था। मिलने की आस ख़त्म हो चुकी थी। अगर अजय से उसकी एनजीओ वाली सहेली न मिलवाती तो आज ज़िंदगी की कहानी ही कुछ और होती। गुड़गाँव के वृद्ध आश्रम में बुज़ुर्गों की सेवा करने का काम मिल गया था। अपने जीवन का बाकी समय वहीं अकेले गुज़ारना चाहती थी।

अजय ने उसकी ज़िंदगी को फिर से नयी उम्मीदों से भर दिया। एक़दम शांत स्वभाव का अजय, इतना संवेदनशील हो सकता है, उसे यकीन न होता था। कोई उसके साथ कितना भी रफ हो, वह प्रतिक्रिया नहीं देता था। मुस्कुरा कर चल देता और कहता- ये उसका मौलिक अधिकार है। मैं कैसे रोक सकता हूँ।

पहली, दूसरी, तीसरी मुलाकात में चरखी ने उसे खूब टरकाया। उसे लगा, दया कर रहा है। फिर लगा, मज़ाक कर रहा है। अजय लगातार गंभीर होता गया। अक्सर मिलने-जुलने लगा। उसके साथ गंगा ढाबे पर बैठ कर शामें गुज़ारता। दोस्तों से मिलवाता। उसे समझाता- दुनिया का सामना करो, मुँह ढँकना बंद करो। तुम चोर नहीं हो, तुमने कोई ग़लत काम नहीं किया है।

अजय के दोस्त उसे छेड़ते- का रे छपरा। अपने लिए खोजा भी तो हाफ मून। अजय ने उसे सिखाया कि कभी ऐसी बातों को दिल पर नहीं लेना चाहिए। बोलते-बोलते एक दिन लोग थक जाते हैं। चुप हो जाते हैं। जो चुप नहीं होते, उनकी ऊर्जा व्यर्थ जाती है। ऐसे लोगों पर दया

करो...अपने रास्ते चलो...

अजय के संयम पर हैरान रहती। उसे धीरे-धीरे प्यार होने लगा। जिसने ज़ख्म दिया था, वो प्यार नहीं था, संबंधो का निर्वाह था। अजय उसका चयन था। जो उससे सहानुभूति की बातें नहीं करता है, आत्म सम्मान से जीने का हौसला देता है।

पहली बार जब दोनों एकांत में मिले थे, तो अजय ने सबसे पहले उसका झुलसा हुआ चेहरा ही छुआ था। देर तक उसे सहलाता रहा...उसे छेड़ता रहा कि देखों, आधा चंद्रमा साफ, आधे पर पृथ्वी की परछाँई उभर आई है...।

अजय उसे बड़े विश्वास से लेकर छपरा तक आ गया था। माँ के मुँह से मुँहझौंसी शब्द सुन कर चरखी के आँसू निकल आए थे। उसने अपनी रुलाई किसी तरह रोकी। अजय का हाथ पकड़ा-

''एक बात कहना चाहती हूँ, तुम्हारे पैरंट्स ग़लत नहीं हैं, उनकी जगह कोई भी माँ-बाप ऐसे ही रिएक्ट करेंगे। तुम इकलौते बेटे हो, इस परिवार के प्रति तुम्हारी कुछ ज़िम्मेदारियाँ हैं, दो बहनें हैं, उनके बारे में सोचना है, पिता अकेले पड़ जाएँगे। मेरा क्या, अपने हिस्से का कुछ जीवन तो जी ही चुकी हूँ। दुबारा विवाह करने की हिम्मत बची नहीं है। तुमने जो प्यार दिया, उससे हिम्मत जुटा पाई। अब इतने विरोध, तनाव और घृणा के माहौल में मेरा दम घुट जाएगा। मैं ये रिश्ता न जी पाऊँगी...मुझे लौटना है दिल्ली...।''

अजय ने उसे अनसुना करते हुए कहा-''चारु, तुम मेरा एक काम कर दोगी?''

''क्या ?''

''आज रात, तुम अकेली माँ के पास जाओ, मैं पहुँचा दूँगा उन तक, उनसे तुम अकेले बात कर सकती हो, वे एक स्त्री हैं, शायद उनका दिल बदल जाए, वे तुम्हारा दर्द समझें...।''

''अजय, स्त्रियाँ , तब स्त्रियाँ कहाँ रह पाती हैं जब वे किसी की माँ या बीवी, बहन होती हैं। वे उस वक़्त स्त्री होकर नहीं सोचतीं। अगर ऐसा करने लगें स्त्रियाँ तो हमारी दुनिया ही बदल जाएगी। मेरा ये भी अनुभव है, हो सकता है, तुम्हें एंटी वीमेन लगे, अपने अनुभव से जाना कि औरतें, मर्दों की धाक मानती हैं, ज़िद छोड़ेंगी जब कोई

मर्द मनाए। चाहे धौंस से या मनुहार से।''

''तुम मेरी बात सुनो...जाओगी...या...रुको...कुछ सोचता हूँ...हार नहीं मानूँगा। आज रात मैं जाऊँगा, एक आख़िरी कोशिश...।''

''मैं दिल्ली लौट जाती हूँ...तुम कुछ दिन रुक कर आना।''

चरखी सामान समेटने लगी। उसे रात की ट्रेन पकड़नी थी। रिज़र्वेशन दो दिन बाद का था। वह स्लीपर क्लास में ही बैठ कर चली जाएगी, चाहे जो हो। मन ही मन प्लान करती रही।

अजय रात के अँधेरे में पहुँचा था, माँ के पास। बेटा कितना बड़ा गुनाह कर ले, माँ के दिल के दरवाज़े हमेशा खुल जाते हैं। देर तक वह माँ के पैरों के पास बैठा रहा। माँ बिस्तर पर बैठ गई थीं, नीचे पैर लटका कर। अजय नीचे बैठ गया।

''देखो माँ, शादी तो मैं चरखी से ही करूँगा। चाहे आप लोग मुझे त्याग दो। मैं आप लोगों का अपराधी हो जाऊँगा...मगर आपका ही बेटा हूँ, ज़ुबान दे दी, प्रेम कर बैठा...उसे धोखा नहीं दे सकता। आप मान जाइए...।''

माँ की आँखों से आँसू ढुलके और बेटे के हाथों पर गिरे। अजय ने उठ कर उनके आँसू पोंछे।

''मैं आपका अपराधी हूँ...बहुत दुख दे रहा हूँ...आप कभी माफ नहीं कर पाएँगी, जानता हूँ, आपको पिता जी से भी बहुत सुनना पड़ेगा..सब आपके कोख को ही दोष देंगे...मुझे बस इसी बात का दुख है कि कोई बच्चा कुछ करे, लोग उसकी माँ को, उसकी परवरिश को ही दोषी ठहराते हैं...पिता तो पल्ला झाड़ कर अलग हो जाते हैं...।''

''तो माँ...ये संस्कार आपका ही दिया हुआ है, सच के साथ खड़ा होना, जिसे प्यार किया, उसे निभाना। आप नहीं निभा रहीं पिताजी को...।''

''क्या बोल रहा है ?''

''ग़लत बोल रहा हूँ ? उन्होंने आपको कुछ करने दिया। नौकरी करती थीं आप, छुड़ा दिया..घर बिठा दिया..बच्चे थमा दिए, इन्हीं में अपने को ढूँढ़ो...इनके लिए मरो, जिओ...आप कहीं ग़ायब हो गईं माँ...वह लड़की ग़ायब...जो खेल के मैदानों में लंबी दौड़ की धावक थी...आप हमेशा फर्स्ट आती थीं न...याद है...आप कोच बनी थीं न..कम उम्र में...फिर शादी कर दी गई...उसके बाद...हम सब हुए...।''

''मैं अब भी दौड़ रही हूँ बेटा...सबके पीछे...मेरी दौड़ कहाँ ख़त्म हुई...अब थक गई हूँ मैं...। अच्छा, ये सब छोड़, अपना जीवन सोच। इस लड़की के साथ तेरा जीवन नहीं चल पाएगा। मुझे उससे सहानुभूति है, दया है, बस हम अपने घर में नहीं रख सकते...रिश्ता नहीं जोड़ सकते...मैं तुझे मुक्त करती हूँ...जा..इतना मन है तो, कर ले मन की...यहाँ मत आना कभी...समाज में हमारी बहुत थू-थू होगी।''

''इसी समाज के डर से आपने स्पोर्ट्स छोड़ दिया। आज आप कहाँ से कहाँ होतीं। आज भी आपसे तेज़ कोई दौड़ नहीं सकता, चलना भी संभव नहीं, इतनी तेज़ चलती हैं आप। देश ने एक महिला धावक खो दी...।''

''चल हट, मज़ाक मत कर...''

दोनों मुस्कुराए। माहौल हल्का हुआ।

अजय ने ट्यूब के उजाले में अपनी माँ का चेहरा गौर से देखा। कितनी युवा माँ थीं। सैंतालिस साल की उम्र में ख़ुद को बूढ़ी माने बैठी हैं। दिल्ली में होतीं तो जींस पहन कर पार्टियाँ अटैंड कर रही होंगी, सड़कों पर दौड़ रही होतीं। महानगरों में संघर्ष भीषण है, मगर उम्र का अहसास कम। वहाँ संघर्ष की एक उम्र होती है, देह की नहीं। चरखी के एन जी ओ की प्रमुख मिसेज़ दत्ता दिन भर सिगरेट फूँकती रहती हैं, छोटे बाल और

बिंदास ठहाके। युवाओं से ज़्यादा दोस्ती है उनकी। उन्हें सलवार -कुर्ता पहना दो तो माँ जैसी लगेंगी। और माँ ...?

मिसेज़ दत्ता कहती हैं- ''एज, माई फुट।''

माँ कहती है- ''उम्र हो गई हमारी...''

सोच भी स्थानीय होती है। स्थानीयता के हिसाब से सोचें बनती हैं। विचार बनते हैं। कुछ लोग जल्दी उम्र ओढ़ कर सुकून महसूस करते हैं तो कुछ लोग उम्र को ताक पर रख कर मस्त जीवन जीते हैं। अजय एक उम्र की दो स्त्रियों का फ़र्क़ देख रहा था। उसकी माँ में एक धावक लड़की कहीं खो गई है। अब कभी वापस नहीं आएगी...उस लड़की को कोई नहीं जगा सकता।

दोनों थोड़ी देर अपने ख़यालों में गुम हो गए थे। माँ के बगल में दोनों बहनें चैन की नींद सो रही थी।

''माँ, एक बात का जवाब दें...इसके बाद कोई सवाल नहीं।''

अजय ने बहनों की तरफ़ देखते हुए कहा।

''हूँ....बोल ...''

माँ कहीं और थीं, कहीं दूर, किसी खेल के मैदान में...दौड़ रही थीं। सबको पछाड़ते हुए, कुमारी सरिता....गाँव दहियावाँ टोला...और स्टेडियम तालियों से गूँज रहा है।

''अगर कल को आभा के साथ ऐसा हुआ तो ?''

सरिता कुमारी एक झटके से ख़यालों से बाहर आईं। दौड़ ख़त्म, वे जीत के करीब पहुँच कर झटका खा गईं।

''श्राप मत दे, भगवान् न करे मेरी बेटियों के साथ ऐसा कभी हो, तेरे मुँह से कैसे निकला ये, कैसा भाई है तू...जा यहाँ से...।''

''एक पल के लिए माँ...कल्पना कर...आभा का चेहरा...सोच...कल को किसी के प्रेम निवेदन को ठुकरा देगी, कोई सिरफिरा तेज़ाब छिड़क कर भाग जाएगा...फिर क्या होगा...किसी के साथ कुछ भी, कभी भी घटित हो सकता है। इसमें आभा का क्या कसूर माँ...तब क्या तू उसका साथ छोड़ देगी...मरने देगी...कोई साथी नहीं ढूँढ़ेगी उसके लिए। बोल माँ बोल...।''

उसने कंधे से माँ को झकझोरा ''कोई आपके साथ ऐसा करता तो...क्या करतीं आप...इसी डर में जीती रहीं आप। हम सब जानते हैं...।''

माँ ने आभा के चेहरे पर हाथ फिराया और ज़ोर से चीख पड़ी। फिर वे अपना चेहरा नोंचने लगीं थीं। अजय ने उनके हाथ पकड़ लिये। जवान बेटे के ताक़तवर हाथ से कहाँ जीत पातीं। उससे लिपट कर फफक पड़ीं।...

अजय अपने साथ रात के अँधेरे में ही माँ को साथ लेकर निकला। पिता ने टोका। माँ ने जवाब दिया- ''मैं हर बात आपसे पूछ कर नहीं करूँगी अब। मुझे पता है, कहाँ जा रही हूँ, आप सो जाएँ...।''

पिता हक्के-बक्के रह गए। जवान बेटे की माँएँ ऐसे ही अकड़ती हैं। पति से ज़्यादा बेटे की बात सुनती हैं। पत्नी सरिता कुमारी का चेहरा भाँप कर वे आशंकित हो उठे। बेटियाँ घर पर थीं, सो बिस्तर पर पड़े रहे।

होटल पहुँचे तो कमरे में चरखी नहीं थी। एक छोटा -सा पत्र, अजय के नाम रखा था। पत्र माँ ने झपट कर पढ़ लिया।

पत्र में एक लाइन पढ़ कर माँ द्रवित हो उठी-

अजय,

माँ को तकलीफ देकर हमें ये संबंध नहीं बनाना। मैं तुम्हें प्यार करती हुई जीवन काट सकती हूँ, एक माँ का अंतिम पुरुष, उसका बेटा होता है। उन्हें तुमसे अलग करने का पाप नहीं कर सकती। तुम कुछ दिन बाद आना।

मिलेंगे...एक दोस्त की तरह..

अजय ने घड़ी देखी- ट्रेन चलने में आधे घंटे की देर थी। इतनी रात छोटे शहर में रिक्शा मिलना भी मुश्किल। कोई टैंपो मिल जाए शायद। दोनों बाहर भागे गाड़ी की तलाश में। दोनों को स्टेशन जाना था...

दूर -दूर तक कहीं कोई सवारी नहीं। होटल वाला टैक्सी बुलाता, वो भी बीस मिनट के बाद ही आती, तब तक ट्रेन निकल चुकी होगी। अजय माथा नोंचने लगा, क्यों किया चरखी ऐसा। थोड़ा तो रुक जाती। मुझ पर इतना भी भरोसा नहीं। उफ्फ...चरखी, ये तुम्हारी समस्या है, भरोसा करना ही भूल गई हो। एक बार जीवन धोखा दे तो क्या जीवन से विश्वास उठा लें। हद है ये लड़की...

अजय टैंपो वाले को ढूँढ़ रहा था। पैदल चल कर भी जाएगा तो स्टेशन घंटे से पहले नहीं पहुँचेगा। ट्रेन निकल चुकी होगी या रेंग रही होगी। ख़ुद तो दौड़ लगा लेगा, माँ कैसे पहुँचेगी...?

इतना सोचते-सोचते अजय ने माँ की तरफ़ देखा- वो चकरा गया। अजय प्रसाद की माँ, बलदेव प्रसाद की पत्नी, कुमारी सरिता हवा हो गई थीं। दुपट्टा कमर में कस के जो वो दौड़ी, अजय उनका मुकाबला न कर सका। हाँफता, गिरता पड़ता...माँ माँ चिल्लाता पीछे-पीछे दौड़ता रहा।

सरिता कुमारी के कानों में गूँज रहा था... ''मैदान का लाउडस्पीकर...ये हमारी प्रतियोगी, सरिता कुमारी, बस अंतिम लाइन को छूने ही वाली हैं...इस प्रकार से...।''

अजय गिरते-पड़ते स्टेशन पहुँचा। ट्रेन रेंग रही थी...

स्लीपर क्लास की खिड़की के पास बैठी चरखी माँ के हाथों से कुछ पोटलीनुमा ले रही थी। माँ कुछ बोल रही थीं, ट्रेन सरकने लगी थी। माँ ने इशारा किया अजय को, ''रे छपरा, जा चढ़ जा ट्रेन पर...जो होगा, देख लेंगे।''

सरिता कुमारी ने ज्यों ही चरखी के हाथों को छुआ, उनके कानों में लाउडस्पीर से आवाज़ आई...''दहियावाँ टोला की कुमारी सरिता दौड़ प्रतियोगिता जीत गई हैं...।''

अजय ने सुना- माँ ट्रेन के साथ-साथ चलते हुए, चरखी के गाल का झुलसा हुआ हिस्सा थपथपा रही थीं, और कह रही थीं- इसे ढँको मत, दुनिया अपनी आँखें ढँक ले, ये उनकी करतूत है, तुम क्यों ढँको, और ये पोटली में कुछ पैसे हैं, इससे अपना घर बसाओ...फिर हम सबको लेकर वहीं आते हैं। यहाँ का समाज तो देर से बदलेगा, समय लगेगा। पहले अपना घर ठीक करो...आते हैं हम लोग... फ़ोटो भेजना, ठीक है...?''

सरिता कुमारी प्रतियोगिता जीत कर स्टेशन से बाहर आईं तो तेज़ अंधड़ चल रहा था। तूफ़ान का अंदेशा था। वे मुस्कुरा रही थीं।

बैसाख महीने में तूफ़ान बहुत आते हैं। वे दौड़ने लगीं, तूफ़ान से पहले घर पहुँचना था।

***

धरती पर इंद्रधनुष

मनीष वैद्य

राजधानी के आलीशान और जगमग करते होटल के बड़े से सुइट में वह नितांत-निपट अकेला है। भव्यता में पसरा ठंडा एकाकीपन, जो आमतौर पर वह ऐसी जगहों पर हमेशा ही महसूसता रहा है। काँच के बड़े शीशों की साफ़-शफ़्फ़ाफ़ खिड़कियाँ और उससे झाँकता ऊँची-ऊँची इमारतों के ऊपरी हिस्सों का गडमड कोलाज और उस पर फैला धुला-धुला नीला आसमान। मोटे पर्दे और पैर धँसती कालीन। बड़े आकार के आरामदेह पलंग के मुलायम गद्दों पर बीते दो घंटे से वह दोपहर की नींद लेने की कोशिश कर रहा है लेकिन उसकी आँखों में नींद का क़तरा तक नहीं। उसकी उँगलियों के इशारे पर मोबाइल, टीवी, एसी, रूम सर्विस, ड्राइवर और तमाम लोग हैं लेकिन इस वक्त उसका कुछ भी मन नहीं कर रहा।

वह अपने भीतरी तहखानों के अँधेरों में रहना चाहता है जहाँ वह इधर के सालों में कई बार आवाजाहियाँ करता रहा है। रह-रह कर यादों का कोलाज उमड़ता है और उसे भिगोकर चला जाता है। वह देर तक उसमें भीगता रहता है। वह उसे शिद्दत से खोज रहा है। इस लंबे वक़्फ़ा में वह कभी निराशा के गर्त में जाता तो कभी आस की कोई किरण हिम्मत बँधाती। उम्मीद और नाउम्मीदी के बीच इन चार सालों में वह तलाश में जुटा रहा। वह बार-बार उसी रंगों वाली गली में लौटता है, जहाँ अब वह नहीं है।

कोहरे में लिपटी ठंडी सुबह की धुँध में कुछ भी साफ़ नहीं है। सीढ़ियाँ उतरते पीठ पर बस्ता बाँधे गरम कपड़ों में लदे-फदे लड़के की नज़रें उस गली में पड़ती है। ठीक उसी वक्त धूप की एक शहतीर फूटती है और वह गली प्रिज़्म की तरह उसकी आँखों में बस जाती है। एक लड़की अपनी माँ के साथ रंगों से अठखेलियों में व्यस्त है। गुनगुनी धूप में लड़की के आसपास उजास का एक दायरा है। उसमें कई-कई रंग झरने लगते हैं। रंगों की किर्चियाँ पूरी गली में बिखर गई है।

वह स्कूल जाते हुए ठिठक गया। लड़की को एकटक देखने लगा। वह प्रिज़्म-सी लड़की शायद रंगों के किसी झरने से नहाकर लौटी है और उसके गीले बालों से रंग नितर रहे हैं। उसकी पगथलियों में रंगों के रेले हैं। उसके चारों ओर रंग ही रंग है। लड़के ने पहली बार इतने रंग देखे हैं और उस रंगों वाली लड़की को भी।

पिता सायकिल लेकर स्कूल छोड़ने के लिए सड़क पर खड़े थे। इस बार उन्होंने कुछ

मनीष वैद्य
11 ए मुखर्जी नगर, पायोनियर स्कूल चौराहा, देवास (मप्र) पिन 455001
मोबाइल- 9826013806
ईमेल-manishvaidya1970@gmail.com

चिढ़ते हुए उसे पुकारा और वह धड़-धड़ सीढ़ियाँ उतरते हुए उस धुँध में खो गया। लड़के का स्कूल में मन नहीं लगा।

दोपहर में जब वह लौटा तो वह माँ के साथ काम में वाबस्ता थी। उसके आसपास रंग थे और वह उनसे खेल रही है। जैसे वह रंगों की भाषा जानती है। उसकी माँ के हाथों में कोई जादू है। उसके हाथों की नाज़ुक उँगलियाँ जिधर जाती, उधर ही रंग थिरकने लगते। उन उँगलियों में नृत्य की-सी चपलता थी।

तंद्रा टूटने पर उसने होटल की खिड़की के पार देखा, ऊँची इमारतों से धूप फिसलने लगी है। वह सोचता है कि हम सब इस दुनिया में अकेले ही आते हैं और अकेले ही विदा होते हैं, लेकिन इस आने और जाने के बीच हम अपनी तरह की दुनिया बसाते हैं। इसमें कदम-कदम पर लोग जुड़ते हैं और रफ़्ता-रफ़्ता बिछुड़ते हैं। हमसे चिपकी रह जाती है उस मिलने और बिछुड़ने के बीच की स्मृतियाँ। वे बची हुई ज़िंदगी में प्रेतछाया की तरह हमारे आसपास मंडराती रहती हैं। कई बार की कोशिशों के बाद भी उन्हें भीतर से पोंछा नहीं जा सकता। वे हमारी आत्मा की कोटर में बसी रह जाती हैं। मृत्यु के क्षण तक या उससे भी आगे। कौन जानता है!

क्या स्मृतियों को बायपास कर कोई ठौर हो सकता है जहाँ स्मृतियों का कोलाहल नहीं हो, बीते दिनों का कोई टुकड़ा न हो, अवसाद, पछतावा और सुख कुछ न हो। सिर्फ़ वर्तमान। क्या अतीत से कटकर कोई वर्तमान हो सकता है। स्मृतियों के पुल से ही हम अतीत में लौटते हैं, यह जानते हुए कि अब वहाँ कुछ नहीं बदला जा सकता। उसे बदलने के तमाम सूत्र हमारे हाथ से फिसल चुके।

वे माँ-बेटी हमेशा रंगों को बदलती रहतीं। बार-बार नया रंग चुनने के बाद भी वह पहले से सुंदर और खिला-खिला रहता। उसे लगता कि एक दिन वे अपने आसपास के सारे रंग बदल देंगी। बरसों के ढीठ और बदरंग रंगों की जगह ताज़े और चटख रंग भर देंगी। लड़के ने एक दिन स्कूल की चित्र कला में हरे रंग का आसमान, पीले रंग की नदी और लाल रंग का पहाड़ बना दिया। मास्टर जी ने कहा कि यह लड़का कभी रंगों की पहचान नहीं सीख पाएगा। वह चित्र कला के पीरियड में खिड़की से बाहर देखता रहता। कभी आसमान के नीलेपन में खो जाता तो कभी पेड़ का हरापन उसे अपने में छुपा लेता। पकड़े जाने पर मास्टर जी डाँटते कि रंगों की समझ क्लास रूम के भीतर ड्राइंग बुक से आएगी। उसे लगता कि रंगों की समझ उस लड़की से आएगी। उसने कब कहाँ सीखी होगी रंगों की तालीम।

उन माँ-बेटी के हाथों में ग़ज़ब हुनर था। गाँव भर की औरतें उनके इसी हुनर की कायल थीं। वे उन्हें बेरंग कपड़े देतीं और वापस लेते वक्त खुद भी नहीं पहचान पातीं। उन कपड़ों में आसमान से इंद्रधनुष उतर आता तो कभी हवा में बहते हुए फूल आ जाते। वे यहाँ की औरतों की बदरंग ज़िंदगी में उम्मीदों के चटख रंग भर रहीं थी। औरतें इन्हें पहनकर ब्याह-सगाई और अन्य मौकों पर नवेली दुल्हन की तरह लरजती तो गाँव ताज़े रंगों और उम्मीद की ख़ुशबू से दमकने लगता।

माँ ने बंधेज की कला अपने मायके राजस्थान से सीखी थी। वह कपड़े की चार-छह तह कर उसे अलग-अलग आकृतियों में धागे से बाँधकर रंग के कुंड में डाल देती। बँधा हुआ हिस्सा सफ़ेद रह जाता और बाक़ी रंगीन हो उठता। रंगीन हिस्से में बिंदियाँ, लहरिया, पचरंगा, बेल-बूटे, फूल-पत्ते और तरह-तरह की आकृतियाँ निकल आती। उन दिनों कपड़े इतने रंगीन नहीं हुए थे। लोग मोटे सफ़ेद कपड़े ही पहनते थे। कपड़ों में न तो छापे थे और न ही इतने रंग। होते भी हों पर इस गाँव में अभी ऐसे कपड़े नहीं आए थे। औरतें खुद अपने हाथों से गोटा-किनारी या धागों से फूल काढ़ लेती।

धरती का पहला रंग किसी स्त्री ने ही रचा होगा। कायनात ने उसी औरत से रंग लिए होंगे और रंगों का सौन्दर्यबोध सीखा होगा। स्त्रियाँ दुनिया को सुंदर बनाने के लिए उसमें कई-कई रंग भरती हैं। वह ग़ौर से देखता कि उस लड़की की बड़ी-बड़ी उँगलियों से रंग झरता तो उसका साँवला रंग धीरे-धीरे ताम्बई होने लगता। उसकी पारदर्शी गहरी पनीली आँखों में हरापन तैरने लगता। उनके आसपास का गाढ़ा नीला रंग छितरते हुए हल्का होकर आसमान में मिल जाता। काम की चिंता में दुःख परे सरक जाते।

लड़का स्कूल से छूटने के बाद इसी रंगों वाली गली से गुज़रते हुए कुछ देर यहाँ ठहरता। लड़की की आँखों में उतर आए हरेपन को देखता और अपनी आँखों का कुछ गुलाबीपन वहाँ छोड़ जाता। उसे रंगों और उस लड़की के साथ इस तरह रहना अच्छा लगता। देर होने लगती तो लड़की पूछती- 'क्या आज घर नहीं जाना?' और वह सकपकाते हुए बस्ता पीठ पर बाँधने लगता। उसे जाते हुए देखकर वह मुस्कुरा देती। कोशिश होती कि अपने बस्ते में कुछ रंग रख लाए लेकिन रंग लड़की के जादू से बँधे रहते, कभी कोई रंग उसके साथ नहीं आता। वह सोचता, एक दिन इस लड़की को ही घर ले आऊँगा, फिर तो रंगों को आना ही पड़ेगा।

लड़की और उसकी माँ रात के अँधेरे से बहुत डरते थे, धूप उतरते ही वे अपने काम समेटने लगतीं। वे डरती कि कहीं रात का गाढ़ा काला अँधेरा फैल न जाए। अकेली माँ का बड़ी होती बेटी के साथ रहना कितना मुश्किल होता है, यह वही जान-समझ सकती है। गाँव में उसे लेकर कैसी-कैसी बातें चलती हैं। कोई कुछ कहता तो कोई कुछ। जब तक बाप का साया था, तब तक कुछ नहीं और अब कोई भी मुँह उठाए बातें करने लगता है। उसकी माँ इस सबसे अनजान नहीं थी। लेकिन चुप रहती। ख़ामोशी को उसने अपनी ढाल बना लिया था। गाँव में बड़े-बूढों का बनाया एक क़ायदा था, एक लिहाज़ कि आज तक उसका किसी से साबका नहीं पड़ा था। लड़की भी अब इस ख़तरे और लोगों की आँखों में उमड़ते लाल डोरों को पहचानने लगी थी। लड़की चुप नहीं रहती, वह माँ से खूब बतियाती है लेकिन किसी अजनबी के सामने पड़ते ही उसकी आँखें सतर्क हो जाती।

लड़के को अचरज होता कि इतने ताप और तानों के बाद भी उनके भीतर रंगों की नमी उसी तरह क़ायम थी। गाढ़े नीले रंग के सिवा वहाँ ऐसा कुछ नहीं था कि कलेजे की आग या आँखों की कोरों में जमा नमक का स्वाद बता सके।

कभी उसे लगता कि वह लड़की जादू

जानती है। उसे दादी की कहानी याद आती, जिसमें जंगल का रास्ता भटके हुए राजकुमार को एक सुंदर परी मिलती है। अपनी मीठी-मीठी बातों से वह राजकुमार को रिझाती है। उसे अपना बना लेती है और फिर राजकुमार हमेशा के लिए उसका होकर रह जाता है। वह राजकुमार को तोता बना देती है। राजकुमार फिर वहाँ से कभी वापस लौटकर नहीं आ पाता।

एक दिन उसने लड़की से पूछा था-'क्या तुम जादू जानती हो...?'

लड़की देर तक हँसती रही। वह उसे हँसते हुए देखता रहा। जब उसकी हँसी थमी तो उसके चेहरे पर फीकी उदासी उभर आई। उसने कहा-'जादू ही जानती तो यहाँ क्यों खटते रहते। शहर की बड़ी हवेली में जाकर नहीं बस जाते। यह जादू नहीं, हुनर होता है जो अभ्यास से हर कोई साध सकता है। लेकिन उससे पहले रंगों को अपना बनाना पड़ता है। रंग भीतर उतारने पड़ते हैं और उनमें खो जाना पड़ता है।'

लड़की के पास रंग-बिरंगे गुड्डे-गुड्डी थे, वह उनकी शादी करती। कभी गुड्डा लड़के की तरफ़ आ जाता और उसे बारात लेकर गुड़िया के पास जाना पड़ता तो कभी वह बारात ले आती। उसकी छोटी-सी पेटी में कपड़े की कतरनें कई रंगों के कंचे, फूल, इमली के चिंए, कुछ कौड़ियाँ, नदी की रेत से चुने हुए सीप, शंख और चकमक पत्थर जैसी चीज़ों का ख़ज़ाना था। जब वह पेटी खोलती तो उसमें से कुछ रंग-बिरंगे सपने निकलकर उसकी आँखों में उमड़ आते।

लड़के का वहाँ आना लगातार बना रहा। कई बार वह नहीं जा पाता तो उसे लगता कि कुछ छूट गया है। उसके सपनों में रंग उसे बुलाने चले आते। कुछ रंग और सपने उसके भीतर भी बसने लगे थे। अब लड़की उसका इंतज़ार करती और उससे खूब बातें करती। काम ज़्यादा होता तो वह रंगों में डूबी रहती। जब वह ख़ामोश रहती तो खोई-सी रहती और लड़का उसके रचे हुए रंगों को अपनी आँखों में जगह देता।

आठवीं तक आते-आते रंगों की समझ को वहीं छोड़ उसे पढ़ने शहर चले जाना पड़ा। उसने देखा कि शहर गाँव से ज़्यादा रंगीन था पर किसी के भीतर कोई राग-रंग

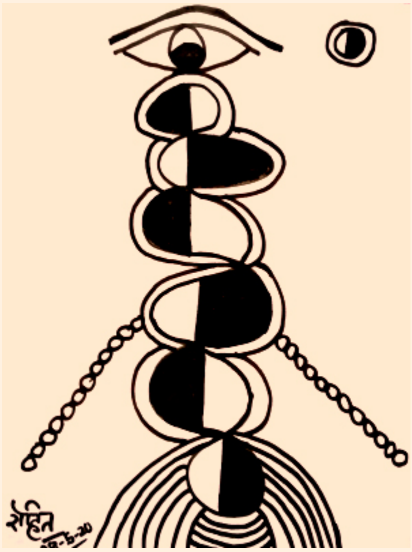

नहीं था। आगे बढ़ने के लिए यहाँ रंगों का कोई मोल नहीं था। वहाँ सिर्फ़ चटख रंग थे, धूसर और हल्के रंग बे-दखल कर दिए गए थे।

कुछ सालों बाद वह फिर गाँव लौटा तो रंगों की गली से गुज़रा। वह लड़की वहाँ नहीं थी। वह उसे ढूँढ़ते हुए नदी तरफ़ गया। लड़की अभी-अभी नहाकर बाहर आई थी। नदी के पानी में ताम्बई आब घुल गई थी। घाट पर वह किसी संगमरमरी बुत की तरह गीले कपड़ों में सलोनी परी लग रही थी। साँवले मोम की गुड़िया। पाकीज़ा। धूप से चाँद हुए जा रहे पानी की चमक उसके चेहरे पर पड़ रही थी।

पहली बार उसे लगा कि लड़की अब पहले की तरह अल्हड़ नहीं रही। वह उससे दूर सीढ़ियों के पास खड़ा था। उससे मिलने वह दौड़ कर नहीं आई, अपने आप में लजा गई। वह सीता की तरह घाट के पत्थरों में धँस जाना चाहती थी या अहल्या की तरह पत्थर हो जाना चाहती थी। उसने तिरछी नज़रों से देखा और उसके चेहरे पर आगन्तुक के स्वागत में भोली-सी मुस्कान फ़ैल गई। उस सुबह उन दोनों के बीच कोई बात नहीं हुई। दोनों एक-दूसरे को देर तक चीह्नते रहे।

उस शाम जब नदी के पानी में चाँद उतर आया था तो वे दोनों देर तक नदी के आगोश में समाए चाँद को देखते रहे। उनकी बातों के टुकड़े नदी की धार में बह रहे थे।

लड़के ने कहा-'मैं बड़ा आदमी बनूँगा, तब तुम मेरे साथ रहना।'

लड़की की आँखें लहरों पर थिरकते चाँद पर थी। उसने कहा-'बड़े आदमी छोटी बातों को याद नहीं रखते, क्या तुम याद रख पाओगे।'

लड़के को तत्काल कोई माकूल जवाब नहीं मिला। फिर उसने लड़की के चेहरे को गौर से देखते हुए पूछा-'क्या तुम्हें मुझ पर यकीन नहीं।'

लड़की उसी तरह चाँद को देखती रही। उसने कोई जवाब नहीं दिया। सिर्फ़ लड़के के दाएँ हाथ को अपने बाएँ हाथ में ले लिया। लड़की को लगा कि उसने चाँद को छू लिया है। उस छुअन में उम्मीद, भरोसा और अपनापन था। लड़के को लगा कि उसने नदी को छू लिया है। उस छुअन में प्रेम और गहरी आश्वस्ति थी। लड़की ने कोई गीत गुनगुनाया था, देर तक नदी और वह गीत के टुकड़ों को कलेजे में सहेजते रहे।

लड़का फिर से बाक़ी पढाई पूरी करने शहर लौट गया। पीछे रह गई लड़की।

शहर जाकर भी वह लड़की को भूला नहीं था। वह हॉस्टल के कमरे और शहर की भीड़ के एकांत में अक्सर उसे और उसके रंगों को याद करता। रंगों की कशिश उसे खींचती। वह गीले रंगों को छूने को बेताब हो उठता। वह लौट आना चाहता था उन रंगों की तासीर में, अपने भीतर भर लेना चाहता था उनकी आदिम गंध को। अपने आपको उनमें खो देना चाहता था।

लेकिन ज़िंदगी के रंग इतने आसान नहीं होते कि जब जैसा चाहें, लगा सकें। कई बार ज़िंदगी के रंग आपस में इस तरह उलझ कर कोलाज बनाते हैं कि कोई बूझ नहीं पाता। कैलाइडोस्कोप की तरह ज़िंदगी भी पल-पल रंग बदलती है।

देर रात जब सारा शहर सो रहा था, लड़के ने अपने भीतर के कुछ रंगों को दीवार पर फैला दिया। लड़का देखकर दंग था कि दीवार पर रंग नहीं भाषा थी। वे बोलने को आतुर थे। यहाँ उन रंगों को कोई नहीं पहचानता था। वे यहाँ के लिए अनूठे थे। दोस्तों ने देखा, शिक्षकों ने देखा। सबका यही कहना था कि ऐसा पहले कभी किसी ने नहीं देखा। लड़के ने दीवार के रंग कैनवास पर बिखेरे तो वे थिरकने लगे। कलाकार, कला आलोचक और मीडिया सब चकित थे।

एक बार लड़के का काम चमका तो फिर उसने कहीं पीछे पलट कर नहीं देखा। वह बढ़ता चला गया। कई शहरों और देश-विदेश में घूमते हुए उसके रंगों का जादू चल निकला। उसे वाहवाही, पैसा और शोहरत मिली। वह अपने काम में इतना रम गया कि उस लड़की और रंगों को भी भूल गया। कभी-कभार कोई रंग स्मृतियों में लौटा आना चाहता तो वह चटख रंग के स्ट्रांग स्ट्रोक से उसे वहीं दबा देता।

एक रात उसने सपना देखा कि उसके आसपास फैले रंग कोई लड़की ग़ुस्से में समेट रही है। अब उसके पास कोई रंग नहीं थे। वह अचकचाकर उठ बैठा। उस रात उसे नींद नहीं आई, बल्कि उसके बाद से अब तक वह कभी चैन से नहीं सोया। उसे लगा कि उसके ये रंग किसी की अमानत हैं, ये किसी का क़र्ज़ हैं। उस क़र्ज को उतारने के लिए वह बेताब हो उठा। उसी सुबह उसने गाड़ी पकड़ी और गाँव पहुँच गया।

वहाँ वे दोनों नहीं मिलीं। कहाँ गईं ये किसी को मालूम नहीं। इधर के दिनों में उनकी हालत दिन-ब-दिन कमज़ोर हो चली थी। रंगीन कपड़ों के चलन में आ जाने से उनके रंग बेमानी हो चुके थे। गाँव में अब कोई उनसे कपड़े नहीं रंगवाता। कैसे दिन कटते। उन्हें कोई और काम याद नहीं था। तब से अब तक वह उनको ढूँढ़ रहा था।

माँ दिन-ब-दिन कमज़ोर होती जा रही थी। लड़की सुबह से शाम तक धागा फ़ैक्टरी में काम करती। वह उसके लिए दवाइयाँ लाती पर कोई फायदा नहीं हुआ। रात-रात भर खाँसते हुए एक सुबह वह चल बसी। अब लड़की के आसपास कोई रंग नहीं थे। सिर्फ़ गाढ़ा नीला रंग उसके छोटे से कमरे में पसरा रहता। उसके लिए इसका गाढ़ापन छुड़ा लेना आसान नहीं था।

लड़की का दिन तो किसी तरह कट जाता लेकिन रात में अकेलापन उसे कुतरता रहता। एकांत उसे दीमक की तरह खाए जा रहा था। अजीब-सी बेचैनी उसे घेरे रहती। वह मुक्त होना चाहती थी, कभी चिड़ियों से उड़ना सीखना चाहती थी लेकिन अब अपने टूटे पंखों से छटपटाती रहती। गीली आँखों से उसका सिरहाना भींगता रहता। सिसकियाँ रात की ख़ामोशी में गीत की तरह ढलती रहती।

कहते हैं, दुःख का रंग भले ही गाढ़ा हो लेकिन स्थायी नहीं होता। धीरे-धीरे उसका दुःख हल्का होने लगा। ज़िंदगी कोई बहाना चुन ही लेती है। स्त्रियाँ अपने दुःख को तरल करना जानती हैं, तभी वे धरती हो पाती हैं। वह धरती के दुःख को नहीं जानती, वह तो शायद अपने दुःख को भी नहीं जानती थी। सब भुलाकर वह दुनिया में ख़ुशियों के रंग बिखेरती रहती। वह रंग-बिरंगे महीन धागों से अपनी रोटी बुनती।

आषाढ़ के आख़िरी दिनों की एक तपती रात टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों से सफ़ेद-शफ़्फ़ाफ़ घोड़े पर सवार युवक तेज़ी से चला आ रहा है। उसके पीछे स्मृतियों के तमाम रंग दौड़ते आ रहे हैं। धरती पर पूरा चाँद फैला हुआ है। दूधिया आब में नदी बह रही है। दूर-दूर तक कोई नहीं, एकांत की ख़ामोशी। बस कभी-कभार पेड़ों के पत्तों के बीच से गुज़रती हवा की सरसराहट और झींगुरों-टिटहरी की आवाज़ें...

दूर कहीं कोई औरत अपनी ही रौ में गहरी ख़ामोशी को तोड़ते हुए गा रही है। यह गीत था या उसकी सिसकियाँ। गीत से करुणा सोते की तरह फूट रही है। गीत उसके कंठ से नहीं कहीं भीतर से आ रहा है। हवा में गीत का आर्तनाद है, जो सुनने वाले की आत्मा को बिंध रहा है।

गीत को छूते हुए हवा का टुकड़ा था या कोई बदली। युवक की आँखों को छुआ तो कोरें भींग गई। यह आवाज़ तो पहचानी हुई लग रही है। बरबस कुछ उमड़ आया। उसने गीत को अपने सीने में महसूस किया।

लड़के को सामने देखा तो लड़की को अपनी आँखों पर भरोसा नहीं हुआ। चटख रंगों का कारवाँ उसके सामने था। दोनों बुत बने एक-दूसरे की आँखों में अपलक देखते रहे। लड़का किसी कैनवास पर नहीं, अपनी उदास और बैरंग ज़िंदगी में रंग भरना चाहता था। उनकी देह पर उन्हें उड़ा ले जाने को बेताब छोटे-छोटे पंख थे। पहली बारिश की बूँदों ने तपती धरती को भिगोया। वह रंगों की बारिश थी, जो धरती पर इंद्रधनुष की तरह कुछ बना रही थी। लड़के ने बारिश में भीगते लड़की के गालों पर अपनी गीली हथेलियाँ रखीं तो उसकी देह लरजकर गुलाबी हो गई।

***

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. **उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित। **पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2020

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

कैसे बताऊँ बिटिया को...

उषा राजे सक्सेना

उषा राजे सक्सेना
54, Hill Rd, Mitcham, CR4 2HQ, UK
मोबाइल- +44 7448401890
ईमेल- usharajesaxena@gmail.com

शीना बेहद थकी हुई थी। वह घर आ कर चुपचाप, आँखें बंद कर सोफे पर लेट जाना चाहती थी। पर उसकी ग्यारह वर्षीय बेटी निन्नी को उसके आने की आहट मिल जाती है और वह खाना छोड़ कर भागती हुई आई और उसकी दोनों हाथों को अपनी गुदाज़ हथेलियों की पकड़ में लेते हुए पूछने लगी, 'मम्मा, आज आपके मरीज़ों को कौन से रोग थे?' निन्नी को पता है कि उसकी मम्मा सरकारी अस्पताल में साइकैट्रिस्ट है और वह उन रोगियों की चिकित्सा करती है जो मानसिक रूप से पीड़ित होते है।

शीना, निन्नी के माथे पर प्यार का चुंबन देने के बाद हाथ में पकड़े ब्रीफ़केस को मेज़ पर रखते हुए उसे अपनी दाहिनी बाँह में लपेट कर डाइनिंग रूम में खाने की मेज़ के पास पहुँच कर, उसे कुर्सी पर बैठा, खाने की ओर इशारा कर खुद साबुन से हाथ धोकर चेहरे पर ठंडे पानी का छींटा मारते हुए कहती है, 'आज के मरीज़ भी वैसे ही थे निन्नी बेटे जैसे और दिनों के मरीज़ होते हैं। कुछ बहुत दुखी, कुछ बहुत बेचैन। एक मरीज़ की सोच इतनी बिगड़ी हुई थी कि उसने मुझे चिंतित कर दिया।'

'ओह! फिर आपने उस रोगी को कैसे सँभाला मम्मा ?'

'वैसे ही। जैसे हमेशा करती हूँ बेटी। उसके दु:खों और बेचैनियों को कम करने के लिए उसके साथ सहृदयता और सहानुभूति के साथ बातें कीं। देर तक उसकी समस्याओं को सुनती रही। उसे आश्वस्त कर उसमें भरोसा पैदा करने की कोशिश की। फिर नर्स कायरा से उसका परिचय कराया और कुछ दिन उसके अस्पताल में रहने का प्रबंध कर दिया।'

शीना इस तरह का उत्तर घुमा फिरा कर निन्नी को कई बार दे चुकी है। निन्नी अब उसके इस उत्तर से संतुष्ट नहीं होती है। उसकी उम्र, परी कथा 'सिंड्रेला' और 'स्लीपिंग' ब्यूटी से आगे निकलकर किशोरों के 'फेमस-फाइव' जैसी जासूसी दुनिया में प्रवेश करने तैयारी कर रही है।

'मम्मा,आपके मरीज़ों की सोच क्यों बिगड़ जाती है?' काँटे में फँसे सलाद के टुकड़े को मुँह में डालने से पहले निन्नी ने आग्रह करते हुए शीना से प्रश्न किया।

शीना निन्नी के इस प्रश्न से परेशान हो उठी। कैसे बताए वह अपनी नन्हीं सी बिटिया को मरीज़ों के उन भयानक, शर्मनाक, और यातना पूर्ण मानसिक विकारों के बारे में? कैसे

बताए वह उनके त्रासद अकेलेपन को, उनके सामाजिक और पारिवारिक दबावों और तनावों को जिनको झेलते-झेलते वे इतने नर्वस, डरपोक, असंतुलित, असहाय और लाचार हो जाते हैं कि दुनिया उन्हें सनकी, पागल और न्यूरॉटिक कह कर खिल्ली उड़ाती है।

परेशान शीना कन्ज़रवेटरी में आ कर रॉकिंग चेयर में बैठ जाती है थकान से उसकी आँखें बोझिल होने लगती हैं पर अर्शिया भनोत की लाल चकत्तों से भरी नंगी बाँहें और बेचैन, पीड़ित आँखें उसका पीछा नहीं छोड़ती हैं।

'मेरी चमड़ी में विषैले कीड़े घुस आए है डॉक्टर। इन सुर्ख चकत्तों को देख रही हैं ना। देखिए कीड़े मेरी चमड़ी के अंदर घुस, मेरी देह को खाए जा रहे हैं।' वार्ड का राउँड लेती शीना, अर्शिया भनोत के हाथ पर उभर आए चकत्तों को देखते हुए कुछ कहने को होती है कि अर्शिया अपने बालों को हाथों की पकड़ में लेकर ऊपर उठाती है और कहती है, 'यह देखिए, मेरी गर्दन इन कीड़ों ने मुझे इतना काटा है कि मेरे घावों में से खून रिसने लगा है। यह देखिए तकिए पर खून के दाग़।' शीना सहानुभूति से सिर हिलाती, देख रही है, अर्शिया की सुर्ख हो रही चमड़ी को जो जगह-जगह छिली हुई है, कहीं-कहीं लहू के बिंदु भी उभर रहे है।

आगे अर्शिया ने रुलाई को दबाते हुए कहा, 'डॉक्टर इन कीड़ों से छुटकारा पाने के लिए मैं क्या नहीं करती हूँ। मैं तरह-तरह के कीट-नाशक साबुन से रगड़-रगड़ कर बदन को धोती हूँ। एंटी एलर्जिक क्रीम लगाकर, कीट-नाशक दवा से पूरे बदन को स्प्रे करती हूँ। क्या बताऊँ, ये जानलेवा विषैले कीड़े मेरा पीछा नहीं छोड़ते हैं...।' शीना की सहानुभूति पाकर अर्शिया उसके और पास सरक आई। शीना के नाक में अर्शिया के बालों और बदन से उठती कीट-नाशक दवा की गंध घुस जाती है। उसे मिचली सी आने लगती है पर वह सहानुभूति के साथ धैर्यपूर्वक अर्शिया के जीवन के त्रासद अनुभवों को सुनती हुई, उसके कंधों को भरोसा देने के लिए हल्के से दबाती है।

शीना की सहानुभूति का एहसास कर अर्शिया थोड़ी और उत्साहित हो उसका हाथ पकड़ कर कहती है, 'जानती हैं डॉक्टर एक दिन बड़ी सावधानी से मैंने अपनी चमड़ी खुरच-खुरच कर कीड़ों को निकाला और एक जार में बंद कर एमरजेंसी लैब ले गई ताकि डॉक्टर लोग उन कीड़ों को माक्रोस्कोप से देख कर दवा तजवीज कर सकें परंतु एक लंबा समय गुज़र गया अभी तक लैब से कोई परिणाम नहीं आया। अब आप ही बताइए मैं क्या करूँ....?'

अर्शिया की शिकायत है कि उसके बदन और उसके घर में बहुत ही सूक्ष्म विषैले कीड़े और पिस्सू घुस आए हैं। वह उनसे छुटकारा पाने के लिए तरह-तरह की कीट-नाशक दवाओं से घर को स्प्रे करती है। अपना बदन साबुन, डेटॉल और एंटीबैक्टीरिया लोशन से साफ़ करती है, फिर भी ये जानलेवा कीड़े हैं मरते नहीं हैं। वह तंग आ चुकी है। कीड़े न तो उसका पीछा नहीं छोड़ते हैं न ही मरते हैं। दिनों दिन कीड़ों की संख्या बढ़ती जा रही है। अर्शिया कहती है कि डॉक्टर की दी हुई दवाइयों से उसे कोई आराम नहीं मिल रहा है। एक लंबे समय तक अर्शिया अपने फ़ैमिली डॉक्टर की सर्जरी और एमर्जेन्सी अस्पताल के चक्कर काटती रही है।

यद्यपि इस बीच उसके फ़ैमिली डॉक्टर ने उसके खून की जाँच कराई। एलर्जी टेस्ट कराए, किंतु अर्शिया के खून में न तो कीड़ों का कोई अस्तित्व मिला और न ही एलर्जी टेस्ट में कोई गड़बड़ मिली।

फिर उस दिन खीझी परेशान अर्शिया अपने फ़ैमिली डॉक्टर से झगड़ पड़ी और उँची आवाज़ में बोली,-'डॉक्टर लेविन्सन आप मेरे इलाज में कोताही कर रहे हैं। मैंने तीस वर्षों तक नेशनल इंश्योरेंस का भुकतान किया है। आज मेरी ज़रूरत पर आप एन.एच.एस. (नेशनल हेल्थ सर्विस) के डॉक्टर मुझे नज़र अंदाज़ करते हुए अँगूठा दिखा रहे हैं।' क्रोधित और उत्तेजित सी वह डॉक्टर के टेबल पर मुक्का मारते हुए चिल्लाई, 'सुनिए! डॉक्टर लेविन्सन, न तो मैं अवैध नागरिक हूँ और न ही अपढ़ गँवार और न ही पागल...मैं... मैं....' कहते-कहते उत्तेजना के कारण वह नीम बेहोश हो गई।

डॉ. लेविन्सन की सेक्रेटरी भागी-भागी पानी का गिलास लिए कमरे में आई, पास बैठे स्टूडेन्ट छात्र मेडिको की सहायता से अर्शिया को रोगियों के इक्ज़ामिनेशन टेबल पर लिटा कर उसे ट्रैंक्यूलाइज़र का इंजेक्शन देकर शान्त किया। ऐम्बुलेन्स से उसे मनोरोगियों के अस्पताल भेज दिया, जहाँ शीना से बातें कर के अर्शिया को कुछ आश्वस्ति मिली। उसने उत्साहित होकर शीना से कहा, 'डॉक्टर मुझे आप पर पूरा भरोसा है। आप चर्म-रोग विशेषज्ञ हैं न? आप अवश्य इन कीटाणुओं से मुझे छुटकारा दिलवाएगी ना।'

शीना, अर्शिया को किसी भ्रम में नहीं रखना चाहती थी। मेडिकल एथिक्स के अनुसार वह मरीज़ से झूठ नहीं बोल सकती है। उसने अर्शिया की आँखों में सीधा देखते हुए, पूरी सहानुभूति के साथ उसके बाँहों को सहलाते हुए कोमल शब्दों में कहा, 'सॉरी, अर्शिया, मैं चर्म रोगों की विशेषज्ञ नहीं हूँ। मैं मानसिक बीमारियों की डॉक्टर, एक साइकैट्रिस्ट हूँ। चर्म रोग के विशेषज्ञ डॉक्टर ने तुम्हारी पूरी जाँच कर लिया है। उन्हें तुम्हारे देह में किसी तरह के विषैले कीटाणु नहीं मिले। अब तुम्हें मेरे पास यानी मानसिक रोगियों के अस्पताल में भेजा गया है।' अर्शिया का चेहरा बुझ सा गया। वह कनफ्यूज़्ड सी खड़ी शीना को घूरने लगी जैसे वह भी उसे पागल और सनकी समझ रही है।

'घबराओ मत अर्शिया। मैं भी तुम्हारी तरह एक औरत हूँ। मैं तुम्हारी समस्याओं, दुःखों, दर्द और तकलीफ़ों को अच्छी तरह समझती हूँ। अर्शिया डीयर, तुम्हें मानसिक आघात लगा है, जिसके लिए तुम बिलकुल तैयार नहीं थी। तुम एक बहुत अच्छी और पढ़ी-लिखी और एक शानदार व्यक्तित्व की स्मार्ट और ख़ूबसूरत महिला हो...' शीना के स्नेहिल और ख़ूबसूरत शब्दों में आई सहृदयता, सहानुभूति और बहनापा, अर्शिया को अंदर तक स्पर्श कर गया और उसके अंदर जमा दर्द उसकी आँखों से टप-टप गिरने लगा। वह धम्म से निढाल बिस्तर के साथ रखी कुर्सी पर गिर कर सिसकने लगी।

शीना स्नेह से अर्शिया का हाथ पकड़कर अपने कंसल्टिंग रूम में ले गई। जहाँ उसने उसे एक आरामदेह कुर्सी पर बैठाकर, मशीन से निकाल कर कॉफ़ी का प्याला पकड़ाते

हुए कोमल शब्दों में कहा, 'देखो अर्शिया, एक डॉक्टर होने के साथ-साथ मैं तुम्हारी दोस्त भी हो सकती हूँ। तुम एक समझदार और पढ़ी-लिखी महिला हो यदि तुम चाहती हो कि तुम्हें इन कीटाणुओं और पिस्सुओं से छुटकारा मिल जाए तो तुम्हें मुझे अपने पूरे मन से सहयोग देना होगा। मेरी कार्य प्रणाली पर भरोसा बनाए रखना होगा। इस समय तुम थकी हुई हो। तुम्हें आराम की आवश्यकता है।' पास खड़ी नर्स कायरा से, शीना ने अर्शिया का परिचय कराते हुए कहा, 'यह कायरा है हमारे यूनिट की सबसे सहृदय और अच्छी नर्स। कायरा तुम्हारे अस्पताल में रहने, नहाने और खाने-पीने का ध्यान रखेगी। अब तुम वार्ड में जाकर आराम करो। मैं तुम्हें शाम को कन्सलटेशन दूँगी और विस्तार से इन कीटाणुओं और पिस्सुओं के बारे में बातें करूँगी जो तुम्हें इतने दिनों से कष्ट दे रहे हैं। विश्वास करो हम दोनों मिल कर इन कीटाणुओं से छुटकारा पाने का सही रास्ता खोज सकते हैं।'

अर्शिया और कायरा के जाने के बाद शीना ने मेज़ पर रखी अर्शिया की केस-हिस्ट्री को पढ़ना शुरू किया '....अस्पताल में हुए विभिन्न टैस्ट स्पष्ट करते हैं कि अर्शिया को कोई शारीरिक रोग नहीं है। वह अवसाद ग्रस्त, मनोरोगी- एक उलझा हुआ साईकैट्रिक केस। किसी मनोविकार से ग्रस्त अर्शिया के मन में यह दृढ़ विश्वास जम गया है कि उसके चर्म के अंदर विषैले कीड़े घुस आए हैं साथ ही उसका घर विषैले कीड़ों और पिस्सुओं से बजबजा रहा है। ये कीड़े इतने सूक्ष्म हैं कि साधारण आँखों से नहीं दिखते हैं। अर्शिया के अनुसार उसके घर की हवा दूषित हो गई है।

इन कीड़ों से छुटकारा पाने के लिए अर्शिया खूब गर्म पानी में डिटर्जेंट डालकर नहाती है। बदन पर 'इंसेक्ट रिपलेंट' स्प्रे छिड़कती है। दिन में कई-कई बार वह अपने आपको डिसइन्फेक्ट करती है। अर्शिया का कहना है कि इन सबसे उसे कोई फ़ायदा नहीं हो रहा है। उसके बदन और घर में घुस आए कीड़े मरने के बजाए दिन रात बढ़ते ही जा रहे हैं। अब वे उसके खाने-पीने के सामान और कपड़ों की अलमारियों में भी घुसते जा रहे हैं। तंग आकर उसने अब इन मृत्युंजय कीड़ों को नष्ट करने के लिए अपने बदन और घर को ख़तरनाक पैस्टी-साइड और खेत-खलिहानों में प्रयोग की जाने वाली इंडस्ट्रियल टॉक्सिक 'बग-बॉम' से फ्यूमिगेट करने लगी है। उसका भरोसा बुरी तरह से टूट चुका है। वह मैंटल केस बन गई है। वह अपने पारिवारिक जीवन के बारे में कोई खुलासा नहीं कर रही है...'

'ओ माई गॉड! पूअर आर्शिया...'

अर्शिया की आगे के रिपोर्ट में चर्म-रोग के एक विशेषज्ञ ने लिखा था, 'ख़तरनाक और विषाक्त कीटाणु-नाशक दवाओं के संक्रमण में आने से अर्शिया की त्वचा में खुजली होती है, लगातार खुजाने के कारण उसके बाहों पर खूनी चकत्ते उभर आए हैं। गर्दन के नीचे मवाद और खून से भरे घाव और फफोले निकल पड़े हैं। इसके अतिरिक्त दूषित, कीट-नाशक फ्यूमिगेशन में साँस लेने के कारण, साँस लेने में उसे कठिनाई महसूस होने लगी है। इन तमाम लक्षणों ने अर्शिया के मन में यह दृढ़ अवधारणा बना दी है कि उसके घर के कोने-कोने में, उसकी चमड़ी की तहों में, उसकी श्वास नली में, उसके फेफड़ों में विषाक्त कीटाणुओं और पिस्सुओं ने अड्डा बना लिया है।'

उफ़! शीना, अर्शिया के दु:ख से आहत हो उठी। फाइल बंद करके वह आँख बंद कर गहराई से सोचने लगी, 'दिनों-दिन जटिल होती जा रही आज की इस संवेदनहीन रॉकेट की गति से भागनेवाले जीवन पद्धति से आम इंसान ताल-मेल नहीं बैठा पा रहा है।'

शाम को घर जाने से पहले अर्शिया की काउंसिलिंग करते हुए शीना को बात-चीत के दौरान पता चला कि रजोनिवृति (मैनोपाज़) के उम्र में अधिक रक्तस्राव के बीच जब उसके हार्मोन असंतुलित हो रहे थे और वह कुछ मुरझाई, कुछ चिड़चिड़ी हो रही थी। गर्म और ठंडे लपटों से परेशान, पसीने से लत-पथ खुद को समझ नहीं पा रही थी। महावारी की समस्याओं से जूझती सरल हृदया अर्शिया को पता ही नहीं चला कि उसके पति का एक लंबे समय से किसी अन्य स्त्री से संबंध है और अचानक एक दिन जब उसका पति अपना सामान लेने घर आया तो अर्शिया ने उससे पूछा कि इतने दिन वह कहाँ रहा? उसने कोई जवाब नहीं दिया बस ग़ुस्से से फुफकारता हुआ जल्दी-जल्दी अपना व्यक्तिगत सामान समेटता रहा। जब वह जाने लगा तो अर्शिया ने उसे घेर कर पूछा कि आख़िर वह इतना सब सामान लेकर जा कहाँ रहा है? तो उसने चिल्लाते हुए कहा, 'टु द हेल! वोमन, यू स्टिंक, दिस हाउस स्टिंक्स। इट्स बज़िंग विद पॉयज़न्स जर्म्स ऐन्ड इनसैक्टस।' कहते हुए उसने दरवाज़े पर खड़ी अर्शिया को ज़ोरों का धक्का दिया और धड़ से दरवाज़ा मार कर चला गया। थोड़ी देर बाद जब अर्शिया होश में आई तो पति का क्रोधित चेहरा 'जर्म्स और स्टिंकिंग हाउस' जैसे कुछ टूटे-फूटे वाक्य याद कर हर वक्त परेशान रहने लगी।

अर्शिया एक साधारण सहज-सरल स्त्री थी। उसे अपनी घर-गृहस्थी सुंदर और सुचारु रूप से चलाने में गर्व की अनुभूति होती थी। अत: घर को साफ़-सुथरा रखने और परिवार को सुविधा देने में वह इतनी व्यस्त रही कि उसे कभी किसी अन्य बात का ध्यान ही नहीं रहा। उसके पति को काम-काजी स्त्रियाँ शोख़ और चरित्रहीन लगती थी। अत: पढ़ी-लिखी होने के बावजूद भी उसने कभी बाहर जाकर काम करने की सोची ही नहीं। वह अपने घर और बगीचे की देखभाल करने में सुख पाती। उसे कभी किसी दोस्त आदि की ज़रूरत भी नहीं महसूस हुई।

अर्शिया का चेहरा उस समय गुलाबी हो उठा जब उसने बताया कि उसके पति ने प्रेम का इज़हार कर उसके माँ-बाप की इच्छा के विरुद्ध कोर्ट में जाकर उससे शादी की और दो महीने उसके साथ घर में रह कर हनीमून मनाता रहा।

अर्शिया का एक बेटा है जो पिछले वर्ष उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका चला गया है। वह हमेशा इस बात से खुश रहती कि बेटा अपने पिता से फ़ोन पर बात-चीत कर लेता है। लड़की पढ़ाकू किस्म की है। वह हमेशा कानों पर हैड-फ़ोन लगाए अपने कमरे में बंद कंप्यूटर और फ़ोन पर लगी पढ़ाई करती रहती थी। उसे सिर्फ़ अपने खाने-पीने, पढ़ाई-लिखाई और पॉकेट-मनी से मतलब रहता था। माँ-बेटी में सिर्फ ज़रूरत भर का संवाद होता था। एक दिन बेटी ने अर्शिया

को बाँहों में भर कर कहा, 'उसे जर्मन इंस्टीट्यूट से स्कॉलरशिप मिल गई है और वह आगे की पढ़ाई करने के लिए जर्मनी जा रही है।' यह तो खुशी की बात है अर्शिया ने सोचा। लड़की दो-तीन महीने पहले अपना सामान समेट कर आगे की पढ़ाई करने जर्मनी चली गई।

अर्शिया को इस बात का अहसास ही नहीं हुआ कि वह दिनों-दिन अंदर-अंदर, और-और अकेली होती चली जा रही है...

उस दिन अचानक जब उसका पति घर आया तो उसके आक्रामक और उद्दंड व्यवहार से अर्शिया को ज़बर्दस्त धक्का लगा। सरल स्वभाव की अर्शिया के दिल पर ऐसी चोट लगी कि उसके मस्तिष्क का संतुलन बिगड़ गया। दु:ख के तीव्र आघात के कारण उसके मस्तिष्क में बनने वाले रसायन का संतुलन बिगड़ने लगा और उसका नर्वस ब्रेक-डाउन हो गया। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि आख़िर सब लोग उसे छोड़ कर इस तरह चले क्यों जा रहे हैं, जब कि वह तो अपने पति और बच्चों के लिए इतनी समर्पित है।

आगे उसने बताया, तमाम अन्य औरतों की तरह ना तो उसे गप्पें लगाने का शौक है और ना ही उसे टेलीफोन और इंटरनेट से चिपटे रहने का शौक है। वह तो हर वक्त बस घर को टिप-टॉप, साफ-सुथरा, पति बेटे और बेटी की सुविधा का ही ख़याल रखती रही है। अचानक उस पर दु:ख का पहाड़ टूट पड़ा। उसके मन-मस्तिष्क को भयंकर चोट पहुँची और वह अर्ध विक्षिप्त सी हो गई।

पति के इस तरह चले जाने के बाद जब उसे होश आया तो उसे कुछ समझ नहीं आया फिर उसे हल्के हलके-हलके चक्कर आने लगे। जाने किस अनजाने क्षोभ और ग्लानि के कारण वह अपराधबोध से ग्रस्त सोचने लगी कि आख़िर यह सब करा कौन रहा है? उसके घर में ऐसा क्या प्रवेश कर गया है जिसके कारण घरवाले, घर छोड़ कर भाग रहे हैं। दु:ख के आवेग में वह अपने बाल नोचने लगी, बालों के उखड़ने से सिर में घाव होने लगे। घावों पर खुरंट जमने लगे, उनमें खुजली होने लगी। सिर खुजाते-खुजाते वह अपना बदन भी खुजाने लगी। अर्शिया के सोचने की शक्ति क्षीण होने लगी। उसे वास्तविक कारण दिखना बंद हो गया। छल, बिछोह, दु:ख और तनाव से पीड़ित अर्शिया का ध्यान धीरे-धीरे बालों और देह में होने वाली खुजली पर केंद्रित होता चला गया। उसे विश्वास हो चला कि उसके बदन और घर में हज़ारों और लाखों की संख्या में विषैले कीड़े घुस आए है जो उसके बदन को खाए चले जा रहे हैं और वह खुद को और घर को डिसइन्फेक्ट करते-करते पैस्टीसाइड से फ़्यूमीगेट करने लगी...

हे प्रभु! शीना का हृदय करुणा से चीत्कार उठा। ऐसी विषम मानसिक स्थिति में दवा ('ट्रैंक्युलाइज़र') से अधिक रोगी को स्नेह, सौहार्द्र, सहानुभूति, विश्वास और आश्वासन की आवश्यकता होती है। अर्शिया के पास कोई सहारा नहीं था वह अकेली पड़ गई है। अस्थिर हो उठी है। आज का वर्तमान समाज जिस तरह विकसित हो रहा है और जिस तरह के दबाव-तनाव और अकेलेपन की विषम परिस्थितियों से व्यक्ति, घर-समाज और परिवार गुज़र रहा है उसमें कोई भी सुरक्षित नहीं है किसी को भी मनोरोग हो सकता है। साइकॉसिस के इन भुतहे गलियारों से निकालने के लिए औषधि के साथ अर्शिया को स्नेह, सौहार्द्र के साथ साईकैट्रिक सहायता यानी काउंन्सिलिंग की आवश्यकता थी जो उसका फ़ैमिली डॉक्टर समय से उसे नहीं दे सका। ना जाने कब से वह इधर से उधर लावारिस सी एक फुटबॉल की तरह लुढ़कती फिर रही है।

शीना सोच रही थी कि वह अर्शिया को किस तरह, उसके जीवन के यथार्थ से परिचित कराते हुए आश्वस्ती के साथ उसे पुनर्वासित करें। किस तरह अर्शिया के जीवन की गुत्थियों को सुलझाते हुए वह उसे उन भुतहे गुंजलकों से निकाल कर उसका विश्वास जीतते हुए सहजता के साथ सामाजिक जीवन में प्रवेश कराए......

तभी निन्नी खाना समाप्त करके तौलिए से हाथ पोंछती हुई उसकी गोद में आ कर बैठ गई और शीना के गालों पर चुम्मी देते हुए उसके चेहरे पर झूल आए लट को कानों के पीछे खोंसते हुए बोली, 'मम्मा बताइए ना, आपके मरीज़ों की सोच कैसे बिगड़ जाती हैं, और आप उन्हें कैसे ठीक करती हैं?

शीना निन्नी के साथ बागीचे में पड़े झूले पर आ कर बैठ जाती है और उसकी कमर में हाथ डाल कर उसे अपने और करीब खींच लेती है फिर सावधानी से शब्दों का चयन करते हुए उसे बताती है। 'निन्नी आज जो महिला रोगी अस्पताल में आई थी, उसका दिमाग बहुत परेशान था, इतना परेशान था कि वह ठीक से सोच ही नहीं पा रही थी। रोगी का कहना है कि उसके बदन में विषैले कीटाणु घुस गए है और वे उसके बदन को काट-काट कर छलनी किए दे रहे हैं जबकि खून की जाँच और सोनोग्राफी बताती है कि उसके बदन में कोई कीटाणु नहीं है। रोगी का भरोसा डॉक्टर पर से उठ गया है उसका कहना है कि डॉक्टर उसकी जाँच ठीक से नहीं कर रहे हैं।'

पहली प्रतिक्रिया में निन्नी की आँखे आश्चर्य से चौड़ी हो जाती है और वह ज़ोरों से हँस पड़ती है पर फिर दूसरे ही क्षण वह रोगी के भय, पीड़ा और निराशा के बारे में सोच कर दु:खी हो जाती है, मद्धम स्वरों में, शीना के कंधों पर सिर रख कर कहती है, 'मम्मा ! अब क्या होगा? मुझे आपके रोगी की बड़ी चिंता हो रही है। वह ठीक तो हो जाएगी न मम्मा, प्लीज़ बताओ न?' वह भरे गले से पूछती है।

कैसे बताए वह निन्नी को? निन्नी अब बच्ची नहीं रही उसके सोचने के ढंग के साथ उसके प्रश्नों में अब जीवन की सच्चाइयाँ प्रवेश कर रही हैं। निन्नी अधीर हो उठती है। शीना को सोचने का समय नहीं देती है।

'मम्मा, आप उस रोगी को ठीक तो कर देंगी?' निन्नी ज़ोर देकर प्रश्न तुरंत दोहराती है जिसका उत्तर वह 'हाँ' में चाहती है।

'मेरी गुड़िया उसकी बीमारी बहुत जटिल है। अभी मैं उसकी बीमारी को जानने और समझने की कोशिश कर रही हूँ। सबसे पहले मुझे उसका भरोसा जीतना है फिर उसे उसके जीवन की सच्चाइयों से परिचित कराते हुए उसको पुनर्वास के लिए तैयार करना होगा। उसे ठीक होने में बहुत दिन लगेंगे। लंबे अर्से तक उसे अस्पताल में रहना होगा।'

'यह पुनर्वास क्या होता है मम्मा ?'

'पुनर्वास का अर्थ है कि उसे नए घर में,

नए लोगों के साथ मिल-जुल कर एक साथ रहना सीखना होगा.....'

'पर मम्मा वह ठीक तो हो जाएगी ना?' शीना निन्नी की आवाज़ में आई संवेदना और चेहरे पर पसर आई चिंता को देखती है। निन्नी को बाँहों में भर कर शीना उसकी आँखों में झाँकते हुए कोमल स्वर में समझाते हुए कहती है, 'मुझे नहीं मालूम मेरी गुड़िया कि इस रोगी के ठीक होने में कितना समय लगेगा। पर वह ठीक हो जाएगी ऐसा मुझे आभास हो रहा है।' शीना निन्नी के आँखों में अपने प्रति आश्वास्ति की झलक देखती है।

निन्नी ही नहीं हम सब चाहते है कि रोग के लक्षण पहचान कर डॉक्टर ऐसी दवा दे कि रोग चटपट ठीक हो जाए। काश! शारीरिक रोगों की तरह अवसाद ग्रस्त मनों-रोगों के लिए भी पेटेंट दवाएँ होतीं। बल्ड-टेस्ट होता, एक्स-रे होता, सोनोग्राफी होती। साइकैट्री में ऐसा कुछ नहीं है। साईकैट्रिस्ट असंतुलित हो गए मस्तिष्क के अँधेरे कोनों में में उपजे गुंजलकों और गुत्थियों को सुलझाने के लिए स्नेह, सौहार्द, सहानुभूति, आस्था, विश्वास के साथ परामर्श देते हुए रोगी के भावनाओं के उन अँधेरी कोठरियों और तहख़ानों में जाते है, जहाँ संदेह, संशय, डर, भय, घृणा, अविश्वास जैसे विषधर कुँडली मारे रोगी को डंक मारते रहते हैं। रोगी दिनों-दिन मानसिक रूप से अस्थिर होता चला जाता है और स्वयं पर से उसका नियंत्रण नहीं रह जाता है।

निन्नी इस समय जीवन के बड़े ही नाज़ुक दौर से गुज़र रही है। उसके बाल देह के अंदर सुप्त ग्रंथियों का रसायन बदल रहा है। वह बाल्यावस्था से कैशौर्य की ओर कदम बढ़ा रही है अत: निन्नी अब अधिक संवेदनशील और प्रश्नाकुल होती जा रही है। उसका अवचेतन मन कल्पना और यथार्थ में फर्क करना सीख रहा है। देह के साथ-साथ निन्नी का मानसिक विकास भी हो रहा है। शीना सोचती है निन्नी के स्वस्थ, संतुलित शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए उसे विशेषकर उसकी संवेदनाओं के मूल तत्व को समझते हुए उसे सतर्क और सहज करते रहना होगा। कुछ खोज निन्नी स्वयं करेगी और कुछ में उसे निन्नी का मित्र बनकर उसे सहयोग और सहायता देनी होगी।

'अरे! निन्नी, वह देख तो सही जो टमाटर के पौधे तू पिछले दिनों नर्सरी से लाई थी। उसमें फूल आ रहे हैं और वह देख, दूसरे वाले पौधे में तो नन्हें-नन्हें टमाटर भी आने लगे हैं। पौधे कुछ झुकने लगे है अगर समय से उन्हें सहारा नहीं मिला वे टूट जाएँगे। उनमें लटके सूखे पत्तों को चुन कर निकालना होगा और फिर जल्दी ही ये बेबी टमाटर बड़े होकर लाल और सुर्ख हो जाएँगें।' वह सायास निन्नी का ध्यान टमाटर के पौधों की देख-भाल की ओर मोड़ती है। निन्नी की नज़र टमाटर के पौधों पर जा टिकती है।

वह दौड़ कर, बागीचे में टमाटर के पौधों के पास पहुँच जाती है और बड़ी सावधानी से झुके हुए टमाटर के पौधों को डंडी के सहारे खड़ा कर पौधों में लटके सूखे पत्तों को निकाल कर कॉम्पोस्ट बिन में डालती है। पानी में बेबी-बायो की तीन चार बूँदें डाल कर पौधे को स्नेह से सींचती है फिर खुरपी से पौधे के आस-पास की मिट्टी को गोड़ती है। घड़ी भर टमाटर के पौधों पर प्यार की नज़र डाल कर शीना से कहती है, 'मम्मा क्या आपको मालूम है। पौधों के साथ हमें बात-चीत करनी चाहिए। उन्हें संगीत सुनाना चाहिए। अगर पौधे खुश रहते हैं तो जल्दी बढ़ते हैं और उनमें फल भी जल्दी आने लगते हैं। उनको भी कंपनी अच्छी लगती है।' कहते हुए उसने दूसरे टमाटर के गमले को उसके पास सरका दिया।

फिर शीना से लिपटते हुए बोली, 'मम्मा अब जब हवा चलेगी तो दोनों पौधे एक दूसरे को छूते हुए आपस में बातें करेंगे। है न! और ये जो बाकी के पौधे हैं, उन्हें भी अलग-अलग पॉट में लगाना होगा। उनका पुनर्वास करना होगा...' कहते हुए वह खिलखिला कर हँस पड़ी।

शीना, गहरी दृष्टि से निन्नी को प्रसन्नता के साथ देखते हुए सोचती है, उसकी नन्हीं सी बिटिया अब परियों के देश से निकल कर वास्तविक संसार में प्रवेश करने की स्वयं ही अच्छी और स्वस्थ तैयारी कर रही है।

***

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीएँफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

अतीत के अँधेरे में..

मंजुश्री

बाहर सड़क पर कार से उतरती उस महिला को दुकान में लगे शीशे से देखते ही पीटर अचानक चौंक गया और हाथ में पकड़े हुए पैसे और सामान कॉउंटर पर छोड़कर इतनी तेज़ी से बाहर की ओर लपका कि दरवाज़े से टकराते-टकराते बचा। मैं भी पैसे छोड़कर सामान उठाते हुए उसके पीछे-पीछे भागा। पता नहीं क्या होता जा रहा है उसे। जिधर देखो उधर उसकी निगाहें बस उन्हें ही ढूँढ़ती रहती हैं। पिछले कई सालों से एक जुनून सा सवार होता जा रहा है उस पर। हालाँकि उसने कभी उन्हें देखा नहीं है...तस्वीर भी नहीं, पर इधर-उधर इतने शहरों और अलग-अलग दफ़्तरों के चक्कर काटते पूछते-पाछते एक तस्वीर-सी बन गई है उसके मन में जो उसे बेचैन किए रहती है, बस उसी के सहारे वह उन्हें हर जगह ढूँढ़ रहा है। नहीं जानता कि इस सब के बाद सचमुच अगर वह अचानक सामने आ जाती हैं तो वह क्या करेगा। बात भी कर सकेगा क्या उनसे! इसकी तो कोई तैयारी उसने नहीं की है।

अपना खोया हुआ कल ढूँढ़ते पीटर को वर्षों हो गए हैं, उसे यह भी नहीं मालूम कि यह पीटर ब्रॉउन उसका असली नाम है या इसके पहले का पीटर जार्ज या उसके पहले का कोई और.... बार-बार कई संस्थाओं और फोस्टर होम्स बदलने के साथ-साथ उसके नाम, उपनाम भी बदलते गए हैं और वह कितने वर्षों से अपनी पहचान और अस्तित्व की तलाश में दर-दर भटक रहा है। उसको देख कर आश्चर्य होगा कि एक सुखी जीवन जीने के लिए उसके पास क्या नहीं है! रुपया-पैसा, शोहरत, घर, पत्नी, बच्चे, माँ... फिर क्यों उसके मन में एक फाँस-सी अटकी है.... एक खालीपन-सा...भटकन-सी.... एक हँसते-मुस्कराते कामयाब व्यक्ति के भीतर छिपा एक टूटा बिखरा हुआ आदमी... अपनी जड़ से कटा हुआ, अपने होने न होने का मतलब तलाशता हुआ। अपने सलीब को अपने ही कंधों पर उठाए थका-हारा व्यक्ति।

आज से कई साल पहले मेरी मुलाकात मशहूर थिएटर आर्टिस्ट पीटर ब्रॉउन से लंदन के हीथ्रो एयरपोर्ट पर हुई थी। लंदन के बार्बिकैन सेंटर में उसका शो था और उसके साथ उसका पूरा ट्रूप था। रिपोर्टर होने के नाते मेरा ध्यान तुरंत उसकी ओर गया और मैं उससे मिलने के लिए पहुँच गया। मैं उस समय भारत होते हुए नेपाल में आए भूकंप को कवर करने के लिए जा रहा था। वहीं हम दोनों की अपने-अपने प्रोफ़ेशन को लेकर एक छोटी-सी औपचारिक मुलाकात हुई। उसने मुझे अपना विज़िटिंग कार्ड दिया और फिर कभी मिलने की बात कहकर हम अपनी-अपनी फ़्लाइट्स के लिए चल दिए। वैसे वह एक मशहूर आर्टिस्ट था और सभी उसे जानते थे। टी.वी. पर भी उसके शो होते रहते थे।

पाँच-छः महीने बाद 'द न्यूयार्क टाइम्स' के अपने ऑफ़िस की ड्रॉअर में कुछ ढूँढ़ते समय उसके विज़िटिंग कार्ड पर मेरी निगाह पड़ी और मैंने उसे फ़ोन लगाया। फ़ोन पर उसने बताया कि इस समय वह अपने परिवार के साथ छुट्टियों में हवाई आया हुआ है। यह भी कहा कि कुछ दिनों बाद उसका प्रोग्राम न्यूयॉर्क सिटी सेंटर में है और उन दिनों वह सेंट्रल पार्क में स्थित होटल रिट्ज कार्लटन में ठहरेगा अगर उस समय मैं न्यूयॉर्क में होऊँ तो

मंजुश्री
ए-10 बसेरा, दिन क्वारी रोड, देवनार,
मुंबई-400088.
मोबाइल- 9819162949
ईमेल- kathabimb@gmail.com

वहाँ मिल सकते हैं। मैं पिछले ही महीने दोबारा नेपाल, अफ़गानिस्तान, टर्की के तहस-नहस शहरों के रिफ्यूज़ी कैंपों की बदहाली और खस्ता सरकारी तंत्र में उलझे बदनसीब लोगों की रिपोर्टिंग करके वापस लौटा था। ख़ास तौर पर भूखे नंगे छोटे-छोटे अनाथ बच्चों की दुर्दशा देखकर मन बड़ा बेचैन था। कुछ बच्चे तो ऐसे थे जिन्हें अपने माँ-बाप, शहर, देश का नाम कुछ भी मालूम नहीं था। उनकी कोई पहचान ही नहीं थी। स्टेटलेस....क्या होगा उनका आगे भविष्य में ...यहीं ज़िंदगी का सही अर्थ और मूल्य समझ आता है। ईश्वर ने जो नियामतें हमें बख़्शी हैं; जिन्हें हम टेकेन फॉर ग्रांटेड लेते हैं, उनके लिए अपने-आप ईश्वर के आगे सिर झुक जाता है। यह सही है कि यह सब मेरे काम का हिस्सा है फिर भी इंसान तो हूँ ना... मानसिक रूप से बहुत विचलित था कुछ दिनों की छुट्टी लेकर आराम करना चाहता था। कुछ-छुटपुट काम निपटाने थे। कोई बड़ा एसाइनमेंट नहीं था हाल-फिलहाल।

पंद्रह दिनों के बाद एक दिन उसका फ़ोन आया और उसके होटल में ही उससे मिलने का प्रोग्राम बन गया। शाम को जब मैं उसके होटल पहुँचा तो वह पूल के किनारे पड़ी आराम कुर्सी पर ड्रिंक लिए बैठा था। पूल के नीले पानी पर पड़ती रोशनी और हल्के संगीत में बैठा वह छुट्टियाँ बिताने के बाद काफी रिलैक्स्ड और फ्रेश लग रहा था। उसने मेरे लिए भी ड्रिंक का ऑर्डर दिया और हम दोनों काफी देर तक एक दूसरे के काम, परिवार और उसकी हवाई में बिताई गई छुट्टियों के बारे में बात करते रहे। मैंने नोट किया कि वह मुझसे दूसरी ही मुलाकात में काफी खुल गया था। बीच-बीच में स्पैनिश, आधी-अधूरी हिन्दी, गुजराती में भी बात करने लगता। दरअसल उसके ट्रूप में मिली-जुली भाषा बोलने वाले बहुत लोग थे और फिर अलग-अलग जगहों पर शो भी होते रहते थे। मुझे उससे बात करना अच्छा लग रहा था वह काफी खुला और सुलझा हुआ था।

विदेशी भूमि पर विशेष रूप से युद्ध और दंगे-फसादों के बीच रिपोर्टिंग के दौरान पैदा होने वाले ख़तरों और परिस्थितियों के मेरे अनुभव और अलग-अलग जगहों पर जाकर शो करने के उसके अनुभव एकदम अलग थे। बम धमाकों में क्षत-विक्षत विस्थापित स्त्री-पुरुषों, अनाथ बच्चों की रिपोर्टिंग करना, बदहाल रिफ्यूज़ी कैंपों में ज़िंदगी काटते रोटी के टुकड़ों के लिए छीना-झपटी करते लोगों को देखना और उनके बारे में लिखना, कितना त्रासद और विचलित करने वाला होता है इसकी कल्पना करना भी कठिन है। रिपोर्टर की मानसिक स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह सब वह बड़ी ध्यान से सुन रहा था। बीच-बीच में अपने बारे में भी बताता जा रहा था कि जब वह किसी जगह परफॉर्म करने जाता है तो समय निकाल कर किसी न किसी चिल्ड्रन होम, चैरिटी संस्था, अनाथाश्रम में अवश्य जाता है, कुछ संस्थाओं को सपोर्ट भी करता है। मैंने नोट किया कि मुझसे बात करते समय नेपाल और टर्की के हादसों में अनाथ हुए बच्चों के बारे में ज़्यादा चिंतित था और उन्हीं के बारे में पूछ रहा था।

अचानक हाथ में पकड़ी हुई ड्रिंक का बड़ा-सा घूँट लेकर गिलास पास रखी मेज़ पर रखते हुए वह बोला...

''व्हॉट विल यू से मिस्टर गौरव अबाउट ए चाइल्ड हू इज़ फोर्सफुली स्नैच्ड फ्रॉम हिज़ मदर एट बर्थ, बाय हर फ़ैमिली, ऑर यू मे से बाय सोशल सिस्टम ऑर एस्टेट व्हॉटएवर?''

''इट्स क्रूयल, वेरी-वेरी क्रूयल मिस्टर पीटर।''

''प्लीज़ कॉल मी गौरव वी आर फ्रेंड्स दोस्त।'' हाथ बढ़ाते हुए मैं बोला।

मैंने देखा कि उसकी आँखों में गीलापन उतर आया है और वे पूल के नीले पानी पर पड़ती रोशनी में चमकने लगी हैं।

''यस यस...दोस्त... दोस्त...'' उसने मेरा हाथ थपथपाया। वह कह रहा था--

''ये जो थिएटर की झिलमिलाती दुनिया का मशहूर आर्टिस्ट पीटर ब्रॉउन तुम्हारे सामने बैठा है गौरव वह रीयल मैं नहीं हूँ। आय विल टेल यू द ट्रुथ माय डीयर फ्रेंड...यह वास्तव में घर-बाहर, दोस्त, दुनिया, समाज से दुत्कारा हुआ, हाशिए पर खड़ा... अपनी जड़ से उखड़ा हुआ... अनाथ, बेसहारा, निरीह, एब्यूज़्ड एंड एडॉप्टेड, अपनी पहचान की तलाश में दर-दर भटकता टूटा-फूटा इंसान है।''

सुन कर मैं सन्नाटे में आ गया। कुर्सी से गिरते-गिरते बचा। इस सबकी तो मैं क्या कोई भी कल्पना नहीं कर सकता। यह मेरे लिए एक ज़बरदस्त झटका था। मेरी तो बोलती ही बंद हो गई हो जैसे। मेरे भीतर का रिपोर्टर एक-एक बात को बड़ी ध्यान से सुन रहा था। मैंने उसकी ओर देखा पर उसका ध्यान मेरी ओर नहीं था। मानों वह कहीं खोया हुआ हो अपने आपसे बात करता हुआ। मेरे वहाँ होने का उसे एहसास था भी या नहीं कह नहीं सकता।

''मैं वर्षों से अपना खोया हुआ कल तलाश रहा हूँ। माय लॉस्ट चाइल्डहुड....मैं नहीं जानता कि मैं पीटर ब्रॉउन हूँ या पीटर जॉर्ज या कोई और मेरा नाम मेरा, उपनाम....माय नेम, सरनेम कुछ भी मेरा अपना नहीं है। सब कुछ मुझे भीख में मिला हुआ है, अलग-अलग अनाथाश्रमों, संस्थाओं, दत्तक परिवारों... यू नो.. फोस्टर होम्स में भटकते-भटकते मेरी पहचान ही गुम हो गई है सब उन्हीं जगहों से मिला है।''

''पीटर आय एम एक्सट्रीमली सॉरी फार यू....'' उसके कंधे पर हाथ रखते हुए मैं बोला

''नो नो नहीं...नहीं... इसमें तुम्हारी क्या ग़लती...व्हाई शुड यू बी सॉरी। कहने दो मुझे, मैंने आज तक कभी किसी से इतनी खुलकर बात नहीं की है। मॉम से भी नहीं... दो शी इज़ वैरी अंडरस्टैंडिंग..... शायद तुमसे बात करके मेरा दिल कुछ हल्का हो जाए और मेरी तलाश में तुम कुछ मदद कर सको।''

''मैं ! तलाश में...किसकी.. भला कैसे? कर सका तो अवश्य करूँगा।'' अचकचा गया मैं

''तुम रिपोर्टर हो इधर-उधर बहुत सारी जगहों पर तुम्हारा आना-जाना होता है...फिर तुम तो अलग-अलग संस्थाओं, अनाथाश्रमों, रिफ्यूजी कैंम्प्स, रिमांड होम्स की ख़बरें रखते हो शायद किसी जगह कोई सुराग मिल जाए...।''

''पीटर ये इतना आसान काम नहीं है। सूखी घास के बड़े से ढेर में सुई ढूँढ़ने की बात कर रहे हो। इतनी बड़ी दुनिया में कहाँ ढूँढ़ोगे तुम उन्हें जिसके बारे में कुछ भी पता

नहीं है!!''

''जानता हूँ...बहुत मुश्किल काम है। कुछ थोड़ी बहुत कोशिश की भी है पर मंज़िल अभी बहुत दूर है। शायद मैं पंद्रह-सोलह साल का रहा होऊँगा तब से यह फितूर सिर उठाने लगा था और अब तो पिछले दस-बारह साल से यह एक जुनून की तरह मेरे दिमाग पर छाने लगा है। मुझे रातों को नींद नहीं आती। मिसेज़ ब्राउन से मुझे कोई शिकायत नहीं है, उन्होंने मेरी बहुत अच्छी परवरिश की है। वही मेरी माँ हैं.... आय डोन्ट नो माय रीयल मदर.. फिर भी मन में कहीं एक फाँस सी अटकी है।''

''पीटर तुम्हें कैसे मालूम कि तुम जन्म के समय ही माँ से अलग कर दिए गए थे...।''

''ऐसा ही तो होता है अनचाही संतानों के साथ। पैदा होते ही उन्हें फेंक दिया जाता है। बड़ी लम्बी कहानी है और वर्षों की तलाश के बाद यहाँ तक पहुँच पाया हूँ..... इसके आगे अभी बहुत लंम्बा रास्ता तय करना है। इसी तलाश के दौरान एक एजेंसी से कहीं बात-बात में कुछ इस तरह की बात का पता चला पर उसके आगे कुछ नहीं।''

''यू नो गौरव मैं लगभग चौदह साल का था जब मिसेज़ ब्राउन ने मुझे गोद लिया था। उसके चार-पाँच साल पहले उनका बीस साल का इकलौता लड़का एक कार एक्सीडेंट में मारा गया था। वे बहुत टूट गईं थी। एक बच्चे को गोद लेकर शायद इस खालीपन को भरना चाहतीं थी और मैं उस समय तक अपने ग़ुस्से, मार-पीट, झगड़े-फसाद, एग्रेशन के कारण कहीं टिक नहीं पा रहा था। अलग-अलग रिमांड होम्स, सोशल सर्विस सेंटर के चक्कर काट चुका था। बहुत ग़ुस्से से भरा रहता था। आज जब मैं उन दिनों की याद करता हूँ तब लगता है कि उन्होंने मुझे कैसे बर्दाशत किया होगा?''

''ओह माय गॉड पीटर..ये सब क्या सुन रहा हूँ मैं..... सोच नहीं सकता कि तुमने दुनिया के कितने रंग देखे हैं, इतनी ठोकरें खाई हैं, और न जाने क्या-क्या सहा है। इस हँसते- मुस्कराते चेहरे के पीछे इतना दर्द छिपा है!''

''इसके पहले मिस्टर वॉल्टर जॉर्ज और मिसेज़ एनी जार्ज मेरे फोस्टर पेरेंट थे। वे मुझे पाँच साढ़े पाँच साल की उम्र में अपने घर लाए थे। उनके अपने भी दो बच्चे थे जो बहुत शरारती थे और मारपीट करते थे। मिस्टर वॉल्टर छोटी-छोटी बात पर ग़ुस्सा करते और मुझे अक्सर घंटों कमरे के एक कोने में भूखे-प्यासे टाइम आउट देकर खड़ा कर दिया जाता जिससे मेरे मन में डर और ग़ुस्सा भरता चला गया। मुझे नहीं मालूम कि उन्होंने मेरी फोस्टर पेरेंटिंग के लिए क्यों हामी भरी।''

''शायद पैसे मिलते होंगे इसलिए क्योंकि बहुत सी स्टेट्स में ऐसा है।'' मैंने कहा।

''उनके बच्चों से अलग दिखने और एडॉप्टेड होने के कारण स्कूल में बच्चे मुझे चिढ़ाते और ताने मारते, हालाँकि और भी एशियाई, अमेरिकन अफ्रीकन, अलग-अलग रूप-रंग के बच्चे स्कूल में थे। सामने से पता नहीं चलता पर नस्लीय भेद का अंडरकरेंट हमेशा रहता था। हो सकता है नस्लीय रूप से अलग होने के साथ-साथ एडॉप्टेड होना मेरे लिए दोहरी मार थी जो मेरे भीतर की आग को और भड़का रही थी। बच्चे मेरे साथ खेलते नहीं, दूर रहते। छोटी सी उम्र में ही इसका गहरा असर मेरे ऊपर पड़ने लगा, मैं हमेशा ग़ुस्से से भरा रहता और खेल के मैदान में छोटी-छोटी बात पर धक्का-मुक्की, मार-पीट, गाली-गलौज, तोड़-फोड़ करता, चीखता-चिल्लाता। जिसकी वजह से मुझसे कोई दोस्ती नहीं करना चाहता था। आय वाज लोनली एंड एब्यूज्ड, उस छोटे से बच्चे के दिमाग़ में क्या चलता होगा कोई नहीं समझ सकता।''

''वन्स सम बडी कॉल्ड मी बास्टर्ड...मैंने उसका जबड़ा तोड़ दिया उसके बाद मुझे स्कूल से निकाल दिया गया। जिसकी वजह से घर और बाहर काफी तनाव रहने लगा। मिस्टर जार्ज वाज वेरी एब्यूसिव। उन्होंने कभी मुझे समझने की कोशिश नहीं की। उन लोगों ने मुझे अपने घर में अब और रखने से इनकार कर दिया और सोशल सर्विस सेंटर में वापस भेज दिया। तब मैं ग्यारह साल का था फिर एक के बाद एक करेक्शन सेंटर, रिमांड होम्स के चक्कर लगने लगे। कहीं टिक नहीं पाता था। भाग जाता था। तभी मिसेज़ ब्रॉउन मेरी ज़िंदगी में आईं। मैं उस समय मिलवॉकी विसकॉनसिन की कैरिटास फॉर चिल्ड्रन होम में था।'' बोलते-बोलते वह भावुक हो आया। काफी देर तक वह चुप बैठा रहा फिर हम दोनों के लिए और ड्रिंक्स मंगाई।

''आय एम सर्चिंग फार माय लॉस्ट इयर्स...फॉर माय चाल्डहुड...आय वांट टू हैव ए सेंस ऑफ बिलॉन्गिंग गौरव... उस चाहत को मैं तुम्हें समझा नहीं सकता। उस तड़प को बस महसूस किया जा सकता है। कहने को आज सब कुछ है मेरे पास.... फिर भी अधूरापन है एक टिमटिमाती आशा है कि कभी तो इस टीस से छुटकारा मिलेगा। कहीं तो कोई इस दुनिया में वास्तव में मेरा भी अपना होगा।''

''मुझे लगता है कि तुम मिसेज ब्रॉउन के साथ ज़्यादती कर रहे हो पीटर..!'' मैंने कहा।

''यस... मैं भी यही सोचता हूँ। आज जो भी मैं हूँ उनके कारण ही हूँ। उन्होंने मुझे दिशा दी और मेरी ज़िंदगी को मायने भी...... शी अंडरस्टुड मी, हालाँकि मैंने कभी किसी से अपने मन की कोई बात शेयर नहीं की। उनसे तो कभी नहीं शायद, इसलिए कि उनका मन न दुखे। पर उन्होंने मेरी बेचैनी पढ़ ली और खुद ही पहल की। मेरे अकेलेपन और ग़ुस्से को चैनेलाइज़ करने के लिए एक्टिंग एंड सिंगिंग स्कूल में डाला, हालाँकि वहाँ भी मैं अपनी ज़िद में बहुत दिनों तक यूँ ही समय बिताता रहा।''

''पर फिर धीरे-धीरे मुझे मज़ा आने लगा और आज मैं यहाँ हूँ। तुम्हें बताऊँ गौरव कि मेरी परफार्मेंस में जो इतना एग्रैशन है उसका कारण यही है कि स्टेज पर आते ही मैं पीछे कहीं चला जाता हूँ। समाज और सिस्टम ने जो मेरे साथ अन्याय किया है वह सब स्टेज पर उतर आता है सामने बैठे लोग मेरे अभिनय की तारीफ करते हैं पर यह अभिनय नहीं है, मेरे भीतर का सच है, अपना भोगा हुआ जीने लगता हूँ। सामने बैठा हुआ दर्शक उस समय मेरे सामने समाज का वह प्रतिनिधि होता है जिसने मेरा सब कुछ छीन लिया है......शी इज़ द बेस्ट थिंग व्हिच हैपेन्ड इन माय लाइफ। शी इज़ माय मॉम गौरव...।''

''पर पीटर इसमें किसी और का क्या दोष? तुम सब भूलकर आगे क्यों नहीं बढ़

जाते क्योंकि पीछे मुड़कर देखने से तुम्हारी ही नहीं बल्कि और कितने लोगों की ज़िंदगी में खलबली मच जाएगी...।'' मैंने उसे समझाते हुए कहा

''जानता हूँ कि तुम सही कह रहे हो। यू नो एक काँटा-सा फँसा है कि मैं इस दुनिया में क्यों आया, या यों कह लो कि मेरे इस दुनिया में लाए जाने का मकसद क्या था। क्यों नहीं जन्म से पहले ही ख़त्म कर दिया यदि पैदा होते ही फेंक देना था! ये क्यों, कब, कहाँ, कौन, कैसे मेरे दिमाग़ में चक्र के जैसे घूमते रहते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर खोजने का फितूर अब सिर चढ़ कर बोलने लगा है, पागलपन की हद तक जो मुझे चैन से सोने नहीं देता।''

''तुम्हें बताऊँ, मेरे मना करने के बावजूद मेरी मॉम ने मेरी इस तलाश में बहुत मदद की है वे जानती हैं कि अधूरी तलाश मन को कचोटती ही रहेगी। जिस एजेंसी से उन्होंने मुझे गोद लिया था उसके कितने चक्कर काटे कितने मेल किए पर कोई भी संस्था, सेंटर या एजेंसी कोई जानकारी देने के लिए तैयार नहीं होती। वे भी अपनी जगह सही हैं। वे चाहते हैं कि बच्चे पिछली बातें छोड़कर ज़िंदगी में आगे बढ़ जाएँ। इट्स ए पैंडोरा बॉक्स गौरव...बहुत सी ज़िंदगियाँ जुड़ी हैं एक दूसरे के साथ...पीछे मुड़कर देखने से ऐसे बवंडर उठने की संभावना है कि न जाने कितनों को अपने साथ उड़ा ले जाए, कितनी ज़िंदगियाँ बरबाद हो जाएँ...लाइफ इज़ वेरी कॉम्पलीकेटेड...।''

''और इतना सब जानने के बाद भी तुम अपना कल खोज रहे हो... मेरा कहा मानों और आगे बढ़ो...सब कुछ तो है तुम्हारे पास....।''

''दरअसल मन विश्वास करना चाहता है कि अनचाहा ही सही पर मेरे अस्तित्व में कहीं तो कुछ प्यार के क़तरे रहे होंगे मुझे कंसीव करने के क्षणों में ही सही। मैं प्यार की पहचान हूँ बास्टर्ड नहीं। और दुनिया के किसी कोने में मेरा भी कोई है।'' कहते-कहते उसका गला भर आया। मैने हौले से उसका हाथ सहलाया।

''प्लीज़ ट्राई टू अंडरस्टैंड मी।'' मेरा हाथ अपने हाथ में लेते हुए बोला।

''मुझे मिस्टर वॉल्टर की हल्की-सी याद थी। ग्यारह साल की उम्र तक उनके साथ रहा था पर अब वो कहाँ और कैसे हैं किसी को मालूम नहीं था। मॉम ने बहुत मेहनत की और नेट पर देश भर के सैंकड़ों वॉल्टर जॉर्ज के प्रोफाइल्स दिखाई देने लगे। उसमें मेरे फोस्टर फादर वॉल्टर जॉर्ज को ढूँढ़ना वाकई बड़ा उबाऊ और दिमाग़ी तौर पर थका देने वाला काम था। पर मॉम ने हिम्मत नहीं हारी कई लोगों को कॉल किए, पर्सनली कॉन्टैक्ट किया। कई बार दूसरे शहरों में मिलने भी गए। मैंने उन्हें मना भी किया पर वे ये सब मेरे मन की शांति के लिए कर रही थीं। शी मेड ए मिशन ऑफ इट...कई सालों की मेहनत के बाद छः साल पहले वी कुड लोकेट एनी जॉर्ज इन वर्जीनिया। हम दोनों तुरंत उनसे मिलने वर्जीनिया पहुँचे। वॉल्टर की डेथ हो चुकी थी। शी वॉज ए हैगर्ड लुकिंग वैरी फ्राइटैंड लोनली ओल्ड वुमैन। उनके दोनों बच्चे उन्हें छोड़ गए थे। पहली दफा उन्हें देखकर मुझे अफसोस हुआ। आय फेल्ट पिटी फॉर हर।''

''बट आय मस्ट टेल यू...शी वॉज वैरी रूड टू माय मॉम। पहले तो बात करने को ही तैयार नहीं थी। मॉम के बहुत रिक्वैस्ट करने के बाद वह बात करने को तो राज़ी हुईं पर कुछ भी बताने को तैयार नहीं थीं। हम एक हफ्ता वहाँ एक होटल में रुके और मॉम दो-तीन बार अकेली भी उनसे मिली। बहुत मिन्नतों के बाद उन्होंने उस संस्था का नाम भर बताया पर उसका अता-पता नहीं बताया। उस संस्था की देश भर में कई शाखाएँ हैं। मुझे भी कुछ याद नहीं आ रहा था; क्योंकि उनके घर में और उसके बाद के अलग-अलग सुधार-गृहों, संस्थाओं की ठंडी, कठोर दीवारों के बीच बिताए दो-तीन साल बड़े कष्टकर थे जिन्हें मैं अपने दिमाग़ से मिटा चुका था। जैसे एक तिनके को समुद्र की लहरें किसी वीरान टापू के तट पर छोड़ दें अकेला...!''

''ऐसा क्यों किया उन्होंने?'' आश्चर्य से मैंने पूछा।

''पता नहीं... मे बी शी हेटेड मी.. या शायद मुझे देखकर कुछ याद आ गया हो...गॉड नोज़....।''

''एनी वे... कई जगहों पर फ़ोन और मेल करने के बाद बड़ी मुश्किल से यह मालूम पड़ा कि हो सकता है कि शिकागो की क्लार्क स्ट्रीट पर स्थित एडॉप्शन एजेंसी से उन्होंने मुझे फोस्टर पेरेंटिंग के लिए एडॉप्ट किया हो। तुरंत हम दोनों शिकागो आए। शिकागो आकर मुझे भी कुछ-कुछ याद आने लगा था। कहाँ रहते थे वह जगह तो मुझे याद नहीं थी पर एक मिडल क्लास नेबरहुड था। और वहीं हमें यह भी मालूम पड़ा कि उस एजेंसी में मैं पाँच साल की उम्र में आया था मुश्किल से छः महीने वहाँ रहा था उसके पहले की जानकारी वे नहीं देना नहीं चाहते थे। साफ मना कर दिया। यू कैन इमैजिन अवर फ्रस्ट्रेशन...यहाँ तक आकर भी कितनी दूर थे हम। करोगे न मेरी मदद तुम।''

मैं क्या जवाब देता चुपचाप सुन रहा था। उसकी खोज में साथ देने का भरोसा दिया।

''तुम ही देखो कितनी जगह और कितने अलग-अलग लोगों के साथ उस छोटी-सी उम्र में मैंने क्या-क्या सहा होगा। कल्पना करो कि जन्म लेने के कुछ क्षणों बाद आँख खुलने से पहले ही माँ के सीने पर रखते ही जो बच्चा उसकी धड़कन में प्यार और सुरक्षा पहचान लेता है वही थोड़े से प्यार को तरसता इन बड़ी-बड़ी बेजान इमारतों में नियमों-कानूनों से बंधे नौकरी करने वाले भावशून्य लोगों के बीच कितना डरा-सहमा और मजबूर होता होगा। देश, सरकार या राज्य द्वारा संचालित ये संस्थाएँ एक व्यवस्थागत जेल ही तो हैं। तंत्र के कैदी बेचारे अनाथ अलग-अलग घरों और संस्थाओं में भेजे जाने की बाट जोहते...मैं जानना चाहता हूँ कि क्या मैंने माँ के सीने का क्षण भर भी स्पर्श किया.. क्या मेरी माँ को मेरे जबरदस्ती छीने जाने का पता चला, क्या वह रोई-गिड़गिड़ाई थी मेरे लिए... क्या उसने याचना की... विरोध किया. उसकी क्या मजबूरी थी।''

''मैं एडॉप्टेड हूँ यह सबको मालूम है और मेरी इस कठिन यात्रा में लोग अपने-अपने कॉम्पलैक्स रिलेशन्स के मायने ढूँढ़ते हैं कोई अपने को भाग्यशाली मानकर मुझसे हमदर्दी रखता है तो कोई मुझे बेचारा समझता है...कुछ शुक्र मनाते हैं अपने जायज़ होने का...कोई कहे न कहे आज इतनी ऊँचाई पर पहुँचने के बाद भी मैं इस बात को महसूस करता हूँ। मेरी पर्सनालिटी पर इसका बहुत असर पड़ा है। कितना

ग़ुस्सा और गिल्ट भरा है मेरे भीतर..।''

''कम ऑन पीटर...मैं ज़रूर तुम्हारी मदद करूँगा, लेकिन प्लीज़ फॉरगेट एंड फॉरगिव... मूव ऑन माय डीयर फ्रैंड....।''

''यू नो गौरव मैंने और मॉम ने बहुत लंबी लड़ाई लड़ी है अब तो नतीजे तक पहुँचना ही है, बट आय प्रॉमिस मैं किसी की ज़िंदगी में ख़लल नहीं डालूँगा बस एक बार दूर से ही सही मेरी कल्पना में बसी उस तस्वीर को एक नज़र देखना है।''

''ओके.... तो ये बताओ कि तुम कब तक न्यूयॉर्क में हो क्योंकि मेरे पास भी अभी कोई खास प्रोजेक्ट नहीं है। हो सकता है कि अगले कुछ दिनों में फिर किसी असाइनमेंट पर लंबे समय के लिए बाहर चला जाऊँ। हम दो चार दिनों के लिए दोबारा शिकागो की उसी एडॉप्शन एजेंसी में खोजबीन करते हैं शायद आगे की कोई जानकारी मिल जाए। वहाँ तक तो तुम पहुँच ही गए हो।''

उसने कहा कि वह भी अभी फ्री है पर पता नहीं वहाँ जाकर कुछ फायदा होगा भी या नहीं। तब तो वे कुछ भी बताने को तैयार नहीं थे।

''कोई बात नहीं एक बार और कोशिश करने में क्या हर्ज है।''

और दो दिन बाद हम दोनों फिर वहाँ उस एजेंसी में पहुँच गए। दो तीन दिन लगातार अलग-अलग समय पर कई लोगों से मिले पर इस बार केवल इतना और पता चला कि श्रीलंकन मूल की अमेरिकन नागरिक मेरी वर्गीस नाम की महिला पच्चीस साल पहले एक पाँच साल के बच्चे को इस एजेंसी में छोड़ गई थी; क्योंकि वह एक गंभीर बीमारी से जूझ रही थी और उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं थी...उसके आगे और कुछ नहीं... यह तब भी पता नहीं चला कि वही उस बच्चे की माँ थी या कोई और। हमारी तलाश का सिलसिला अब भी ख़त्म नहीं हो पा रहा था। बड़ी निराशा हुई।

हम बाहर निकल ही रहे थे कि तभी अचानक वहाँ काम करने वाली एक महिला चुपचाप एक कागज़ हमें थमा कर चली गई। बाहर आकर हमने कागज़ खोला तो उसमें एक घंटे बाद दूसरी स्ट्रीट पर स्थित स्टारबक कॉफ़ी शॉप पर मिलने के लिए कहा था। हम दोनों इस नए घटनाक्रम से चकित रह गए कि अब और क्या... एक घंटा काटना कठिन हो गया। बार-बार घड़ी पर नज़र जाती, तभी वह आती हुई दिखी।

हमने तीनों के लिए कॉफी ऑर्डर की और दुकान के बाहर पड़ी मेज़ के गिर्द पड़ी कुर्सियों पर बैठ गए। उसका नाम केतकी शाह था और वह इस एजेंसी में बहुत समय से काम कर रही थी।

''आपने हमें ये कागज़ दिया...।'' मैंने कागज़ दिखाते हुए बात का सिलसिला शुरू करने की कोशिश की।

''हाँ दरअसल मैं आपको कई दिनों से एजेंसी के चक्कर काटते हुए देख रही थी आज जब मैंने मेरी वर्गीस का नाम सुना तो मुझे लगा कि आप लोग ज़रूर उसके बारे में कुछ पता करना चाह रहे हैं। और आप तो शायद पहले भी एक महिला के साथ यहाँ आए थे?'' उसने पीटर की ओर इशारा किया।

''हाँ वो मेरी माँ हैं।''

''माँ... तो आप यहाँ क्या पता करने आए हैं?''

''हाँ वो मेरी माँ हैं उन्होंने मुझे एडॉप्ट किया है। मैं अपनी बर्थ मदर को तलाश रहा हूँ... अपनी जड़, अपनी ज़मीन को ढूँढ़ रहा हूँ।''

''हूँ... पर आप जानते हैं यह सही नहीं है। कितनी बातें बाहर आएँगी, कितने लोगों की ज़िंदगी के पन्ने पलटे जाएँगे। और ये ज़रूरी नहीं कि उसके बाद आपको सुकून मिल जाए। हो सकता है कि ज़ख्म और भी गहरे हो जाएँ और आगे की राह और कठिन हो जाए!''

''आप सही कह रही हैं पर हम वर्षों से इस तलाश में लगे हैं और काफी दूर तक चले आए हैं। अब बिना सब जाने चैन आना मुश्किल है। आप मेरी मदद करेंगी न??''

''हाँ, मुझे पूरा सब कुछ तो नहीं मालूम जितना पता है उतना बताती हूँ, हालाँकि मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए, पर हो सकता है अनजाने में ही सही कुछ मसले हल हो जाएँ। मेरी वर्गीस हमारे पड़ोस में रहती थी। अकेली थी और चर्च से जुड़े एक एन. जी. ओ. में काम करती थी। जिसके सिलसिले में चर्च की तरफ से इधर-उधर देश-विदेश में बहुत सी जगहों पर उसका आना-जाना होता रहता था। खासतौर पर श्रीलंका और भारत। जाफना में उसका घर था। भारत में भी ज़्यादातर मुंबई, गोवा और केरल के चर्च में जाती रहती थी। ऐसे ही एक ट्रिप के बाद उसने वहाँ एक नवजात बच्चे को गोद ले लिया था जो उसे चर्च की सीढ़ियों पर मिला था। हालाँकि जब तक बच्चा कानूनी तौर पर उसे मिला तब तक छः महीने का हो चुका था। ये अंतर्राष्ट्रीय एडॉप्शन का मामला है। ज़रूर कोई बड़ा शहर होगा और सेंट्रल एडॉप्शन रिसोर्स ऑथौरिटी (CARA) के माध्यम से हुआ होगा।''

हम दोनों साँस रोके उनकी बातें सुन रहे थे और ईश्वर से दुआ कर रहे थे कि उस चर्च का नाम पता चल जाए। लग रहा था कि मंज़िल कितनी करीब है। अब तक कॉफी ठंडी हो चुकी थी। मैं तीनों के लिए दूसरी कॉफी ले आया।

वे बोलीं ''दरअसल मेरी उससे कोई ख़ास पहचान नहीं थी बस पड़ोसी होने के कारण हाय हैलो थी, वैसे भी हम दोनों व्यस्त रहते थे। वो तो जब वह बीमार रहने लगी तब बच्चे को लेकर उसकी परेशानी बढ़ गई और पड़ोसी होने के नाते मैं उसकी मदद कर देती थी। मैं चूँकि इस संस्था में काम करती थी इसलिए मुझसे अपनी चिंता शेयर करती थी। और तभी उसने बच्चे के बारे में थोड़ा बहुत बताया था। धीरे-धीरे उसकी हालत बहुत ख़राब होने लगी और उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं रही तब बच्चे की देखभाल मुश्किल हो गई। उस समय उसने इसी संस्था में उस बच्चे को एडॉप्शन के लिए दे दिया। उसके ब्रेन में ट्यूमर था जिसका ऑपरेशन नहीं हो सकता था; क्योंकि काफी फैल चुका था।''

''क्या आपको उस शहर या चर्च का नाम पता है।''

''नहीं... पर उसे गोवा और वहाँ के चर्च बहुत पसंद थे और अक्सर मौका निकाल कर वहाँ ज़रूर जाती थी।'' हमारा दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था, शायद उन्हें कुछ और याद आ जाए पर इससे ज़्यादा कुछ और इस समय उन्हें याद नहीं आ रहा था। फिर भी थोड़ी तसल्ली थी कि कम से कम गोवा तक की जानकारी तो मिली।

बात करते-करते कब दो घंटे हो गए पता ही नहीं चला। उठते हुए वो बोलीं कि

अगर कुछ और याद आया तो मैं फ़ोन करूँगी। हमने एक दूसरे को फ़ोन नम्बर देकर विदा ली।

दूसरे दिन फ़्लाइट लेकर हम वापस आ गए। अब हम लोगों के दिमाग़ में केवल गोवा और चर्च ही घूमते रहते थे... नेट पर पूरे गोवा में छोटे-बड़े सैकड़ों चर्च और एडॉप्शन संस्थाएँ दिखाई देने लगीं, उसमें से सही चर्च और संस्था को ढूँढ़ना काफी कठिन काम था पर हम दोनों ने हिम्मत नहीं हारी।

हम दोनों गोवा की सभी ऐसी बड़ी जगहों की तलाश कर रहे थे जहाँ अंतर्राष्ट्रीय एडॉप्शन की सुविधा हो। घूम फिर कर पंजिम पर आ जाते थे। तभी एक दिन केतकी शाह का फ़ोन आया कि उन्हें ठीक से तो नहीं याद है पर मेरी ने एक बार बात-बात मे सांता क्लॉरा या सांता मारिया ऐसी किसी नाम का ज़िक्र किया था। बस फिर क्या था। नेट पर क्लिक करते ही सांताक्रूज चर्च मिल गया। पीटर ने तुरंत वीसा के लिए एप्लाई किया, मैं अभी हाल में ही भारत होते हुए नेपाल गया था मेरे पास वीसा था। वीसा आते ही हम दोनों ने टिकट कटाए और पहुँच गए गोवा की राजधानी पणजी,जिसे पहले पंजिम कहते थे। पणजी के पास ही सांताक्रूज चर्च के नाम पर सांताक्रूज़ या कैलाफर गाँव है। वहाँ पहुँच कर पता नहीं क्यों ऐसा महसूस हुआ कि अब हम मंज़िल तक पहुँच गए हैं।

दूसरे दिन सुबह ही हम चर्च पहुँच गए और प्रार्थना के बाद फादर एलफांसो से मिलने पहुँचे।

हमारी बातें सुन कर वे बोले, ''यह काफी समय पहले की बात आप बता रहे हैं। मुझे कुछ ठीक से याद नहीं है। और वैसे भी चर्च के बाहर अक्सर रात में लोग बच्चे छोड़ जाते हैं, कभी-कभी उनके साथ कोई मैसेज़ होता है कभी ऐसे ही ...यू नो अनवांटेड चाइल्ड ...गॉड फारगिव दैम ...कौन बच्चा कब रख गया ये बताना कठिन है। और हम तुरंत पुलिस को सूचना देकर बच्चे को उन्हें सौंप देते हैं। अपने पास नहीं रखते। कानूनी मामला होता है। फिर उसके बाद हमें नहीं मालूम होता कि बच्चा किसके पास गया। आप पणजी की मातृछाया और कॉरीटैस एजेंसीज़ में भी पूछताछ कर सकते हैं। दोनों काफी बड़ी संस्थाएँ हैं और अंतर्राष्ट्रीय एडॉप्शन में डील करती हैं। उनके पास रिकॉर्ड होगा। पता नहीं वे कुछ बताएँगे भी या नहीं। आय डाउट....।''

''बट माय डीयर चाइल्ड आय विल सजेस्ट यू टू फारगेट अबाउट दिस होल थिंग। दिस विल ब्रिंग यू मोर हार्टब्रेक्स....मूव ऑन सन....।'' पीटर के कंधे पर हाथ रखते हुए वे बोले।

''यस फादर बट यू नो आय एम सो नियर टू फाइंड आउट अबाउट मी, माय पास्ट, मीनिंग ऑफ माय एक्जिस्टैंस।''

''आय अंडरस्टैंड डीयर....टेक केयर....एक्सक्यूज़ मी ।'' और सीढ़ियाँ उतरने लगे।

हम दोनों कुछ देर तक वैसे ही खड़े रहे फिर वापस जाने के लिए, मुड़े तभी फादर ने पीछे से आवाज दी।

''हैलो... आप दोनों जब तक यहाँ हैं प्रेयर के लिए आते रहें, दैट विल गिव यू सम पीस ऑफ मांइड ...।''

''यस फादर...श्योर'' और हम होटल वापस चले गए।

दूसरे दिन हम मातृछाया और कॉरीटैस एजेंसी गए। वहाँ पर भी कुछ पता नहीं चला। कोई कुछ बताने के लिए तैयार नहीं था। बार-बार रिक्वैस्ट करने पर बस कई सारे फॉर्म अवश्य थमा दिए अपनी पूरी जानकारी भर कर देने के लिए ...कहाँ से आए हैं, क्यों और कैसी जानकारी चाहिए... वगैरह.. वगैरह।

दूसरे दिन हम फिर फादर एलफांसो से मिलने सांताक्रूज चर्च पहुँचे। गैदरिंग के बाद हाल लगभग खाली था। सामने की बेंच पर एक बूढ़ा बैठा कुछ बुदबुदा रहा था और दरवाज़े के पास वाली पिछली बेंच पर एक दुबली-पतली अधेड़ उम्र की महिला गोद में हाथ रखे चुपचाप बैठी थी। जैसे मन ही मन प्रार्थना कर रही हो।

फादर ने बताया कि बूढ़ा व्यक्ति प्रेयर के बाद काफी समय तक यहाँ बैठा रहता है उसका कोई नहीं है और ये महिला कई सालों से संडे की प्रेयर के बाद देर तक अकेली बैठती हैं और दूसरों के लिए दुआ करती हैं।

''दूसरों के लिए....ताज्जुब है...ऐसा क्यों फादर!''

''पता नहीं... मैंने कभी पूछा नहीं...एक बार खुद ही मुझसे पूछने लगी...फादर विल गॉड फारगिव दैम हू हैव सिन्ड...प्लीज़ फादर प्रे फार दैम...।''

मैंने जवाब दिया था कि.. ''यस माय चाइल्ड। गॉड उन सबको माफ कर देता है जो सच्चे दिल से अपनी ग़लती के लिए माफी माँगते हैं। और हमें भी उन लोगों को माफ कर देना चाहिए जिन्होंने हमारे साथ कुछ ग़लत किया है हालाँकि यह आसान नहीं है..... फारगिवनैस इज़ द ग्रेटेस्ट हीलर...।''

''यस फादर.....'' पीटर बोला।

''गॉड ब्लैस यू'' कह कर वे वहाँ से चले गए। हम दोनों वहीं बैठे रहे। लगभग आधे घंटे बाद जब वो महिला उठीं और बाहर जाने लगीं तो हम दोनों उनके पास पहुँच गए।

पीटर ने हाथ बढ़ाते हुए कहा.. ''हैलो मैम..''

''यस...'' उन्होंने पीटर का बढ़ा हुआ हाथ अपने हाथ में लेते हुए आश्चर्य से पूछा ''डू आय नो यू !!''

''नो मैम...आय जस्ट वांटेड टू से हैलो टू यू!'' पीटर ने अपने दोनों हाथों में उनके हाथ को पकड़े-पकड़े कहा।

''व्हाई !'' उन्होंने पीटर की आँखों में देखा और एक क्षण को ऐसा लगा कि उनकी आँखों में हल्की छाया-सी तैर गई।

''आप दूसरों के लिए प्रे कर रही हैं।''

''यस माय चाइल्ड वी ऑल मेक मिस्टेक्स। गॉड विल फारगिव दैम... वी मस्ट आलसो।''

''ओके सन... जस्ट टेक केयर..उसके हाथों को थपथपाया ..और एक्सक्यूज़ मी'' कह कर बाहर निकल गईं। बहुत देर तक पीटर उनके हाथ की छुअन को महसूस करता रहा। सहसा उसे लगा कि उसके भीतर कहीं एक तरंग झंकृत हुई। इस अवस्था में कितना समय बीता, उसे कुछ मालूम नहीं हो पाया। तब तक वे काफी दूर निकल गई थीं, वह बस उन्हें जाते हुए देखता रहा।

दूसरे दिन हम लोगों ने वापसी की फ्लाइट पकड़ ली...।

***

गाइड

संदीप शर्मा

स्पेन के पर्यटकों का दल हिमालयी पर्वत शृंखलाओं की एक चोटी मून पीक को चढ़ने के लिए रात के अँधेरे को चीरता हुआ धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। इनमें एक नवयुवती जिसका नाम मर्सीडीज़ है, वह कोई तीन घंटे पहले एक चट्टान से फिसली थी और कोई बीस फुट तक फिसलती गई थी। उसके गॉड ने उसे बचाने का प्रण किया होगा कभी, तभी वह एक देवदार के तने में फँस गई थी। उसे रस्सियों की मदद से ऊपर रास्ते तक पहुँचाया गया। उसके पाँव में जबरदस्त मोच आ चुकी थी, वह पीड़ा से कराह उठी थी। वह अठारह वर्ष की भूरे बालों वाली युवा, रमणीय, कोमल शरीर की लड़की है लेकिन लगातार चलने व फिर फिसलने के बाद भी उसने हिम्मत नहीं हारी थी। वह निर्णय की पक्की लग रही थी। उसने दल को परेशान न करने की ठानी और लगभग घिसटते हुए ऊपर चढ़ने का फ़ैसला किया। हिमाचल में 17000 फुट की ऊँचाई पर चद्रखानी दर्रा रात के वक़्त उनका इंतज़ार नहीं कर रहा था, पर चाँद ऐसे सोच रहा था कि मानों इन हिम्मत से भरे पर्यटकों के लिए वह अपनी उधार ली हुई रोशनी उनके ऊपर बरसा दे।

चाँद दानवीर बनने का हठ कर चुका था। उसने अपनी सारी रोशनी को अँधेरे में भटक रहे रास्ते पर फैला दिया पर ठंडे चाँद की रोशनी हिम्मती मर्सीडीज़ के लिए ज़्यादा कुछ न कर पाई। वह अचेतन होने लगी। उनके लीडर मैन्युअल ने अपने दल के गाइड कमल से कुछ मदद की गुहार लगाई। गाइड की आँखें चाँद की रोशनी में कुछ सोच कर चमकी। उसने अपनी तेज़ रोशनी वाली टार्च को पहाड़ के एक कोने की ओर नीचे ढलान की एक और फेंकना शुरू किया। दूसरी ओर से भी तेज़ रोशनी उन पर पड़ने लगी। गाइड की आँखें और ज़्यादा चमकीं।

''उसने हमें देख लिया है,'' गाइड कमल चिल्लाया, ''दीपक,मदद चाहिए ! ऊपर आओ दल का एक सदस्य बुरी तरह से घायल है, मदद करो, ऊपर आओ दीपक।''

ये आवाज़ दूर पहाड़ से टकराने के बाद फिर से दल के कानों तक पहुँचने लगी, दल को लगा कि जैसे इस रात का अँधेरा उनकी फरियादों को फिर से वापिस भेज रहा है। पहाड़ अभिमान के नशे में चूर था। एक ओर पहाड़ से रोशनी ऊपर चढ़ने लगी और पूरा दल अपनी थकावट के बोझ में दबी खुशी को सहारा देकर उठाने लग पड़ा। उनके गाइड कमल ने उस खुशी को ओर बढ़ाने के लिए उस रोशनी के मालिक की तारीफ या पहचान के बारे कुछ बताना शुरू किया। वह जो फरिश्ता पहाड़ के एक कोने से आ रहा है हमारा मददगार बनने के लिए, वह दीपक है। वह हमें अब कई बार इस मौसम में इन वादियों में भेड़-बकरियाँ चराता मिल जाता है, वह एक पढ़ा-लिखा नौजवान है और पर्यटन, पहाड़, प्रकृति पर सुंदर गीत रचता है। वह एक अच्छा गाइड व ट्रैकर भी है। वह कई बार मून पीक पर चढ़ाई भी कर चुका है, अफ़सोस कि वह अब ट्रैकिंग में गाइड नहीं बनता। दल ने अपने मददगार बनने वाले के लिए जिज्ञासा तो होनी ही थी इसलिए दल के लीडर मैन्युअल ने कमल से पूछा, ''क्यों?'' कमल बोला,''वह हमेशा प्रकृति की नाराज़गी के कई क़िस्से सुनाता है। हमें उसकी कुछ बातें अच्छी नहीं लगती जैसे वह हमें आप जैसे पर्यटकों को यहाँ-वहाँ पहाड़ों पर ले जाने का मना करता है। वह कहता है कि ये पर्यटक तुम्हारी सच्चाई, प्रकृति प्रेम, भोलापन सब तहस-नहस कर देगें। वे तुम्हें तमाशे की वस्तु समझेंगे, वे तुम पर तरस खाएँगे, तुम्हें देहाती, दीन और हेय दृष्टि से देखेंगे। तुम पहले-पहल तो उन लोगों की सेवा में अपने आप को भूल जाओगे और फिर अपनी संस्कृति को धीरे-धीरे खो दोगे, तब तुम अपने-आप को असहाय महसूस करोगे। वह सब तहस-नहस कर देंगे, तुम्हें भी अपने रंग में रंग देंगे। तुम तब अलग से सपने देखोगे और अपनी आत्मा के स्वभाव को खो दोगे।''

मैन्युअल ने टार्च की लाइट की दूर से आती रोशनी पर आँखें गड़ाते पूछा। ''ऐसा क्या

संदीप शर्मा
हाउस नं. 618, वार्ड न. 1, कृष्णा नगर,
हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश 177001
मोबाइल- 094181-78176
ईमेल- sharmasandeep489@gmail.com

हुआ कि वह अपनी सोच में इतना बदलाव ला बैठा।''

कमल ने फिर से बोलना शुरू किया, ''बचपन में वह गाँव का एक होनहार लड़का था। हम दोनों अच्छे दोस्त थे। पर वह बहुत पढ़ाकू था, हम कई उबड़ खाबड़ रास्तों से होते हुए, स्कूल जाते थे। जब भी कभी हमारे इस छोटे से गाँव में कई बार पर्यटक आते, वे गाँव में प्रसिद्ध मंदिर के दर्शन करते और फिर उपर पहाड़ की चोटी की ओर निकल जाते। हमें उनके कपड़े, उनका साजो-सामान बड़ा अच्छा लगता। वे कभी हमसे रास्ता पूछते पर हम उनकी भाषा नहीं समझते।

दीपक अपनी कुछ सीखी अंग्रेज़ी में उनसे बातें करने लगता तो वे लोग बड़े खुश होते। हम ऐसे ही कई बार ऊपर तक उन्हें रास्ते तक छोड़ आए। मून पीक तो नाम अभी मशहूर हुआ है, हमारे दादा-पापा सब इसे चंद्रशिखा कहते हैं। मैं और दीपक बचपन में कई बार भेड़-बकरियों संग उस पीक तक अपने-अपने बाप-दादा के साथ गए है। पीक के दूसरी ओर एक पवित्र झील है, जहाँ सावन-भादों को मेला लगता हैं। वहाँ भी हम कई बार जा चुके हैं।

हमें ट्रैकिंग का शौक था, शौक क्या! जब पूरे गाँव के मुख्य पेशा भेड़-बकरियों को पालना है तो फिर भेड़-बकरियों के साथ न जाने हमने कितने ही पहाड़ की चोटियों को अपने पाँवों से नाप डाला होगा। बाहरवीं की पढ़ाई करने के बाद वह 25 किलो मीटर दूर कॉलेज गया।

उसने मन में एक बात ठान ली थी कि वह अंग्रेज़ी में सबसे बेहतर बनेगा। वह ऐसी अंग्रेज़ी बोलने लगा, जैसे आप लोग बोलते हैं। उसने एक अच्छा गाइड बनने का सपना हमें बताया था। वह कहता देखना कुछ दिनों के बाद जब यहाँ पर्यटकों की भरमार होगी तो फिर वह अच्छा अंग्रेज़ी बोलने बाला गाइड ढूँढ़ते हुए आएँगे। तब तुम लोग भी अच्छी अंग्रेज़ी बोलने को ललचाओगे, पर तब तुम्हें बड़ी मुश्किल होगी इसलिए इस वक्त अंग्रेज़ी पर पकड़ बना लो तो बेरोज़गार न रहोगे। सरकार हमारे गाँव से निकलने वाले ट्रैक पर बहुत से काम करने वाली है। फिर एकदम ही उसके विचार बदल गए।'' अब दल की जिज्ञासा बढ़ चुकी थी।

इस बार मर्सीडीज़ बोली,''कमल! इसका कोई ठोस कारण तो होगा।''

कमल बोला,''एक बार मेरे ज़ोर देकर पूछने पर उसने इसका कारण सिर्फ यही बताया था कि वह अब रोज़ सपने में पहाड़ के देवता को अपने पास खड़ा महसूस करता है। पहाड़ का देवता उसको बार-बार यही आग्रह करता है कि मत लाओ तुम इन बिन बुलाए मेहमानों को मेरा सीना रौंदने के लिए। तुम लोग कुछ पैसे के लालच में इन सनकी, पागल व हिम्मत भरे साहसिक पर्यटकों को जब मेरे पास लाते हो, मेरा सुख चैन सब खो जाता है, मेरी भक्ति भंग हो जाती है, मेरे देवता होने की शक्तियाँ क्षीण होने लग पड़ती हैं। यही लोग पहले इक्का दुक्का आएँगे, फिर कतारों में आएँगे और फिर पहाड़ पर नंगा नाच होगा। ये वादियाँ ज़हरीली हवा की गंध से भर जाएँगी। मैं भी इन वादियों को छोड़कर किसी ओर पहाड़ पर अपना बसेरा बना लूँगा, तब तुम इंसानों की रक्षा कोई न कर पाएगा। तुम तब सब के सब प्रकृति माँ की नाराज़गी के शिकार बन सब नदी-नालों में बहते जाओगे, तुम्हारे ऊपर अथाह सागर का पानी बरस पड़ेगा, जो तुम्हारे घर, खेत खलिहानों को दूर तक बहा ले जाएगा, तुम पर बड़े पत्थरों की तेज़ आँधी बड़ी निर्ममता से गिरेगी, तुम तब बहुत असहाय नज़र आओगे। यह सब तुम्हें समझ न आएगा। तुम्हारे कई देवता तुम्हें ठुकरा देंगे, वे तुम्हें छोड़कर स्वर्ग प्रवास पर लौट जाएँगे और कभी वापिस न आएँगे, तुम बिल्कुल अकेले हो जाओगे। इसके बाद वह सिर्फ भेड़-बकरियों को हाँकने वाला एक युवा पढ़ा-लिखा गद्दी लड़का बन गया। वह पुश्तैनी काम में हज़ारों खूबियाँ ढूँढ़ कर एक साधु सी बातें करने लगा। वह अलग-थलग रहने लगा।''

दीपक अँधेरे से निकलकर दल के सामने पेश हुआ। दीपक सचमुच चाँद की रोशनी को अपने साथ ले आया था। अँधेरे में वह मध्यम कद का गठीला नौजवान सारे दल को रात का देवता महसूस हो रहा था। थकी हारी व दर्द से पीड़ित मर्सीडीज़ के लिए तो वह सचमुच का देवता बन चुका था। वह बड़ी एवं तीक्ष्ण आँखों के साथ पहली नज़र में मर्सीडीज़ को बहुत सुंदर युवक लगा था।

दल ने मर्सीडीज़ को दीपक के हवाले कर आगे बढ़ने का फैसला किया। दीपक के मुँह से अभी कोई भी शब्द नहीं निकला था। उसने गर्म भेड़ की ऊन से बने अपने कोट को अपने एक हाथ पर टाँगा था। मर्सीडीज ने कहा, ''अगर आप मेरी वजह से मून पीक के नज़ारे को खो दें तो मैं खुद में बहुत ग्लानि महसूस करूँगी, कृप्या आप आगे बढ़ें, चाहें तो मैं यहीं रुक जाऊँगी, लेकिन दल के लिए बाधा न बनूँगी।''

अब सिर्फ उसके मन में एक ही शंका थी कि कहीं दीपक ने उसकी सहायता करने में असमर्थता जाता दी तो पूरे दल को यह तो यहीं कहीं आसपास रुकना पड़ेगा या फिर ऐसे ही घिसटते हुए आगे बढ़ना पड़ेगा। उसने अपने गॉड से प्रार्थना की। वह सचमुच ही उस युवक की सहायता प्राप्त करना चाहती थी। दीपक पहली नज़र में मर्सीडीज़ को न तो एक देहाती लगा था और न ही शहरी। उसने एक ब्रांडेड ट्रैक सूट डाला था और पावों में रीबॉक के जूते डाले थे। टॉर्च की लाइट में उसका ट्रैक सूट व शूज़ की पट्टियाँ साफ चमक रही थी। मर्सीडीज़ को ऐसा लगा कि जैसे एक स्पैनिश राजकुमार दूर पहाड़ियों से उतर कर उसे मुसीबत से निकालकर अपने राजमहल में ले जाने आया है।

दीपक ने मर्सीडीज़ की ओर देखा,उसके भूरे बालों पर टार्च की रोशनी पढ़ते ही वह सुनहरी बालों वाली, चाँदी-सी सफेद चेहरे की मल्लिका, कोई राजकुमारी पीड़ा से ग्रस्त मदद की गुहार लगा रही थी। उसके चेहरे पर दीपक को देखते ही हलकी मुस्कुराहट फैल गई। उसकी आँखों में मदद का आग्रह था। पहली नज़र में उसे वह पराया नहीं लगा बल्कि एक सुंदर नौजवान,तहज़ीब से भरा हुआ और हिम्मती। दीपक ने कुछ देर अपने पुराने साथी ट्रैकर व गाइड कमल से एक कोने में कुछ बातें की।

कमल ने उसे साफ कह दिया कि इस दल का मुख्य उद्देश्य पूर्णिमा की रात में मून पीक के बेस कैंप में पहुँच कर पीक की अद्वितीय छटा को निहारना है। बेस कैंप में पहले से कैंपिग का सामान है। बस हम ये दो-तीन घंटे का रास्ता पूरा कर लेंगे, सिर्फ मर्सीडीज़ को छोड़कर दल बिल्कुल ठीक है और इन्हें ट्रैकिंग का ज्ञान भी है हम आगे

आने वाली बड़ी ढलान को पूरा करके ऊपर बेस कैंप में पहुँच जाएँगे। अगर तुम हमारे पुराने साथी होने के नाते मदद करो, तो मर्सीडीज़ जो पीड़ा से कराह रही है, उसे आज की रात अपने अस्थाई डेरे में आराम करवा दो, वर्ना पूरा दल यहाँ खुद भी परेशान होगा, और मुझे भी परेशान करेगा।

दीपक ने कहा,''अगर मर्सीडीज़ अकेले मर्द के साथ रात भर रहने को तैयार हो तो मुझे कोई एतराज़ नहीं, कहीं परदेस में उसका मन डर के साये में पूरी रात न बिताए।'' गाइड कमल फिर से मर्सीडीज़ के पास गया। मर्सीडीज़ ने कहा,''अब जब मैं आपके देश के हवाले हूँ, तो मुझे आप लोगों पर विश्वास है। मैं इस वक्त बस आराम चाहती हूँ, चाहे तो आप मुझे इन पत्थरों पर छोड़ जाओ।'' कमल ने फिर दल के मुखिया मैन्युअल को भरोसा दिलाया। दीपक ने अपना हाथ आगे बढ़ाया और चाँदनी रात में नाज़ुक पर बहादुर लड़की ने एक अंजान व्यक्ति के हाथ को पकड़ा लिया। दीपक ने गर्म ऊनी कोट मर्सीडीज़ को पहनाने की कोशिश की, वह पहले तो थोड़ा झिझकी पर फिर इसी कड़कड़ाती ठंड में उसे कोट डालते ऐसा लगा, जैसे उसने एक भद्र पुरुष का साथ पाकर जीवन की अथाह खूबसूरती व रिश्तों की गर्माहट को पा लिया हो।

दल आगे निकल गया और एक अंजान फरिश्ते के संग कोमल मर्सीडीज़ का नाता जुड़ गया। मर्सीडीज़ ने कराहते हुए उसके साथ एक तरफ की ढलान पर टेड़े-मेड़े रास्ते पर पीड़ा के साथ उतरना शुरू किया। वह बड़ी मुश्किल से कदम उठा पा रही थी। अभी उसने एक पत्थर से नीचे पाँव रखा ही था कि वह फिर से कराह उठी। उसकी मोच ने उसे भंयकर दर्द दे दिया था। वह वहीं बैठ गई। वह रोने लगी। दीपक ने देखा, क्रिस्टल की तरह आँसू उसकी आँखों से टपकने लगे थे। टार्च की रोशनी में वो आँसू फिर अनमोल हीरों की तरह चमकने लगे थे। दीपक ने चाँद को एक नज़र देखा और मर्सीडीज़ से एक आग्रह किया, ''कृप्या मैडम अगर आप इजाज़त दें तो मैं आप को अपने कंधे पर उठा कर डेरे तक पहुँचा सकता हूँ। यहाँ ज़्यादा देर बैठना ठीक नहीं। भालू इंसानों की गंध को सूँघ रहा होगा। हम अँधेरे में फँसे हैं।'' हार चुकी मर्सीडीज़ ने 'हाँ' में स्वीकृती दे दी।

दीपक ने एक झटके में इस कमसिन युवती को अपने कंधे पर उठा लिया। उठाते वक्त उसके शरीर की कोमलता का अहसास दीपक के हाथों के रास्ते, पूरे शरीर में फैल गया। ये अहसास फिर बढ़ता रहा। उसके सुनहरे बाल दीपक के चेहरे पर पड़ते,तो उसका शरीर झुनझुना उठता पर अँधेरे में उबड़-खाबड़ रास्ता उसे इस सुंदर अहसास को लेने नहीं दे रहा था। वह थक जाता तो कुछ पल उस नौजवान युवती को ज़मीन पर उतारता,फिर उसके नाज़ुक कूल्हों को एक हाथ से जकड़ कर उठाता और एक बाज़ू से उसके बाज़ू को अपने गले में फँसाता। यह बंधन जब मज़बूत हो जाता, वह फिर उतर चलता। बेबस मर्सीडीज़ दीपक के मज़बूत शरीर की एक- एक मांसपेशी के हिलने का अहसास ले रही थी, पर उसका शरीर पीड़ा के कारण अचेतनता की ओर भी उसे ले जा रहा था। पर वह अचेतन नहीं होना चाहती थी।

वह पहली बार एक हिंदुस्तानी मर्द के कंधों पर सवार हुई थी। वह अपनी विनीत युवती की आत्मा को एक साहसी युवक की असाधारण सहानुभूति भरी अपनी आत्मा से जोड़ चुकी थी। उसे ऐसे लग रहा था जैसे वह सदियों से इस युवक के साथ जुड़ी है। वह हज़ारों मील का सफ़र करके यहाँ एक गरीब चरवाहे की सहानुभूति के जाल में फँसने आई है।

वह एक अमीर माँ-बाप की लड़की है, पर उसका जुनून व सोच उसे इन पथरीले पहाड़ों पर ले जाता रहा है। ईश्वर ने उसे अभी बहुत कुछ बताना था। वह उस भद्रपुरुष की गुप्त अराधना करने लगी। वह उसकी शक्तिशाली काया की मुरीद हो रही थी। वह ईश्वरीय मदद का अहसास पा रही थी। मर्सीडीज़ को लग रहा था कि ये युवक प्रकृति के रस से अपनी आत्मा को सराबोर कर चुका है।

यह किसी हिमालयी साधु सा प्रतीत हो रहा है जो जीवन, ज़िंदगी की कड़वी सच्चाई को समझ कर उस अपनी धुन में जीना सिखा रहा है। उसके मन में उसके लिए कुछ प्रेम के बीज अंकुरित होते नज़र आने लगे थे, जिन बीजों को हवा, पानी व ज़मीन मर्सीडीज़ ने नहीं बाँटी। वे तो खुद मनमानी करके ये हवा, पानी और ज़मीन चुरा ले गए थे। इस नवयुवक का स्पर्श उसके शरीर में कई तरह के संपदन पैदा कर रहा था। अचेतन सी युवती उस दयालु युवक के डेरे में पहुँच चुकी थी। लेकिन वो अब अचेतन होने के बाद नींद में जा चुकी थी। युवक ने उसे अपने डेरे के एक कोने में बिछे मोटे कंबलों पर सुला दिया। मोम सी नाजुक युवती अपने शरीर की असहाय पीड़ा के कारण आँखें नहीं खोल पा रही थी। उसके नाज़ुक होंठ सूखे गुलाब की पँखुड़ियों से लग रहे थे। उसके सुंदर गाल शरीर के बुखार से मोम की तरह पिघल रहे थे।

दीपक ने अपनी एक कमरे की झोंपड़ी जो टीन के पतरों से बनाई थी और बीच-बीच में तिरपाल से भी ढँकी थी। वह पत्थरों को सही ढंग से टिकाकर बनाई दीपक के दादा के समय की झोंपड़ी है, जो बर्फ पड़ने से कई बार टूटी और कई बार बनी। अचेतनता के स्वप्न में मर्सीडीज़ एक नौजवान दोस्त के साथ इस पृथ्वी के हर कोने तक उड़ती रही, ये धरा, ये हवा, ये सागर, ये पहाड़, कहीं ज्वालामुखी की भयानक गर्द में घूमती और कभी सागर की अथाह गहराइयों में गोते लगाती।

मर्सीडीज़ ने अपनी थकी आँखें खोली। वह अब तक इस दुनिया से बेख़बर थी। उसे लगा वह नए लोक में जन्म लेकर एकदम एक जवान युवती बन गई है। उसकी अचेतनता ने उसे जड़ कर दिया था। उसे लगा जैसे वह किसी स्पेनिश राजकुमार के राजमहल में सोई थी और अब वही राजकुमार उसे कहीं दिखाई नहीं दे रहा है। उसने अपने पाँव की ओर देखा। गर्म पट्टियों से उसका पाँव बँधा था। ये कीमती पट्टियाँ उस झोंपड़ी में कहाँ से आईं?

वह उठी तो एक टीस के साथ उसके पाँव ने पीड़ा होने का स्पष्ट प्रमाण दिया। उसके बिछोने से कुछ दूरी पर मिट्टी के तेल से जलने वाला दीया हवा में फड़फड़ा कर अपने अस्तित्व को बताने लगा। वह धीरे-धीरे पतले से दरवाज़े से बाहर निकली। बाहर दीपक लकड़ियाँ जलाकर आग सेंक रहा था। मर्सीडीज़ को देखते ही उठा और बोला,''मर्सीडीज़ क्या अब आराम मिला

है! आओ थोड़ा आग सेंक लो।'' उसने जल्दी में एक फटी सी बोरी आग के पास बिछा दी। मर्सीडीज़ बोरी पर बैठती हुई बोली, ''तुम एक फरिश्ते से कम नहीं हो, क्या इतने घने जंगल में तुम अकेले रहते हो? क्या तुम्हें डर नहीं लगता? क्या तुम हमेशा यहीं रहते हो?'' दीपक ने मर्सीडीज़ की दो चाँद सी चमकती आँखों में देखा और कुछ सोच कर बोला,''बस यही मेरा घर है। आराम है। ये देवदार व बुरांश के पेड़ खड़खड़ाती और कर्कश आवाज़ करके मुझे रात भर अपना साथ देते हैं। चरागाहों में घास के तिनके मेरा इंतज़ार करते हैं।''

मर्सीडीज़ बोली,''तुम बड़ी शायराना बातें करते हो प्रिय दीपक।'' और मर्सीडीज़ ने एक मुस्कराहट अपने सुंदर चेहरे पर आग की रोशनी में फैलाई। दीपक को वह किसी देव कन्या सी प्रतीत हुई। वह भी मुस्कुराया और बोला, ''ये जंगल ही कविता है। यहाँ हर दिन, हर रात ही एक कहानी है। यहाँ तो सब गाते हैं। कविताएँ सुनाते हैं। नाच गाना करते हैं। प्रति ध्वनियाँ गूँजती हैं, पत्थर राग छेड़ते हैं।''

मर्सीडीज़ को दीपक की बातें किसी स्पेनिश कवि की तरह लग रही थी।

वह फिर बोली, 'क्या तुम हमेशा यही रहोगे? तुम्हारा कोई और घर नहीं।'

दीपक बोला,''हे विदेशी परिन्दे, अब जब तक मेरा मन इन सब कवियों से जुड़ा रहेगा, तब तक यहाँ रहूँगा,फिर तलहटी में बसे अपने छोटे क़स्बे की ओर लौट जाऊँगा। मेरे पास आराम करने का वक्त नहीं। तुम एक साध्वी की तरह मेरे मन में बसे ईश्वर का भेद जानने आई हो। मुझे ऐसा प्रतीत होता है तुम अपने मन को हमेशा सुंदर दृश्यों, प्रकृति के असंख्य चित्रों, हसीन वादियों की दूर तक फैली झील में डुबोए रखती हो। तुम शायद अपनी धन संपदा के दम पर अपनी बनाई योजनाओं पर कामयाब होती हो और फिर प्रसन्नता लिए यहाँ - वहाँ विचरण करती हो। मैं या मेरे जैसे लोग मन का कहना नहीं मानते और उसको छोटे-छोटे जीवन यापन के कार्यों में लगा कर उसके लिए बाहरी दुनिया के सब दरवाज़े बंद कर देते हैं। एक दिन तुम इस सारे भौतिक संसार, इस प्रकृति की रचना के चक्रव्यूह को देख लोगी समझ लोगी,पर तुम्हारा मन फिर भी शायद चैन से नहीं बैठेगा। मेरे लिए हर पल, हर क्षण प्रकृति का एक पूर्ण साक्षात्कार करवाता है। तुम अभी भी मून पीक के दृश्य, कैंपिग में अपने साथियों की मस्ती के लिए तड़फ रही होगी। मुझे ऐसा लगता है पर तुम कब तक ऐसा करोगी। इस प्रकृति रूपी माया की कोई थाह नहीं।''

मर्सीडीज़ बोली,''तुम तो हमेशा भेड़-बकरियों को हाँकने वाले उनके लिए अपनी सारी मानसिक व शारीरिक ऊर्जा खत्म करने वाले, बहुत सा समय अपने खाने-पीने का सामान इकट्ठा करने व पकाने में बिताते हो तो फिर तुम्हें ज़िंदगी नीरस नहीं लगती।''

दीपक मर्सीडीज़ को देख कर मुस्कुराया और अंगारों को हिलाते हुए बोला, ''मर्सीडीज़ मैम, यही तो फ़र्क़ है तुम्हारी और हमारी सोच में। हमारा मन इन भेड़ों को हाँकते हुए,उनके लिए नई चरागाहें ढूँढ़ने, नए जंगल ढूँढ़ने में लगा रहता है। साथ में यह मन ईश्वर के बनाए पहाड़ों से नीचे फैलती रोशनी,बादलों के बरसने के बाद पानी की बूँदों के रास्ता बनाने की कार्य प्रणाली में बहुत कुछ पा लेता है। इन वृक्षों को आसमान की ओर ईश्वर का धन्यवाद करते देखो! उनके आँचल में छिपे नन्हें कीट पंतगों की दुनिया को देखो। वे वृक्षों का हमेशा गुणगान करते रहते हैं क्या तुम उनके शोर में मधुर स्वर की स्वर लहरियों को सुन सकती हो? क्या तुम कल-कल बहते झरनों, इन पत्थरों को हमेशा भक्ति भाव में ईश्वर आराधना में बैठे महसूस कर सकती हो? क्या तुम इन पथरीले रास्तों पर भटकती मेरी भेड़-बकरियों की आँखों में मेरे लिए उमड़ते धन्यवाद को महसूस कर सकती हो? मैं कर सकता हूँ, इसलिए, यही मेरा अब यही कर्म मार्ग है। मुझे अपने मन को दूर पहाड़ की चोटियों तक नहीं पहुँचाना है, उसे यहीं कहीं प्रकृति के नित नए चमत्कारों को दिखाना है। ये पहाड़ रोज़ चमत्कार करता है। ये जंगल रोज़ चमत्कारों का प्रंपच रचते हैं। एक ईश्वर की शह पर और मैं इनका दर्शक हूँ। इकलौता और मेरे पास कोई गवाह भी नहीं है। मैंने अपनी ज़िंदगी को इन पहाड़ों के लिए समर्पित करने की ठानी है, पर यह पहाड़ हम इंसानों से नाराज़ नहीं होने चाहिए नहीं तो सारा संगीत फिर दुर्लभ हो जाएगा। हमारी रीति-रिवाज, संस्कृति इन्हीं पहाड़ों, नदियों, घाटियों, जंगलों, चरागाहों के अफ़सानों से बनी है; जो अब ख़त्म हो जाएगी। हे ईश्वर अब सब बर्बाद हो जाएगा।''

यह सुनकर मर्सीडीज़ बोली,''क्या बर्बाद हो जाएगा? कैसे बर्बाद हो जाएगा? तुम क्या कहना चाहते हो दीपक?'' दीपक ने अँधेरे की ओर पेड़ों को देखा और बोला, ''तुम नहीं समझोगी मर्सीडीज़! ये एंडवेंचर, ये प्रकृति, पहाड़ तुम्हारे जैसे पर्यटकों के लिए एक तमाशा हैं, तुम प्रकृति के नज़ारों को एक नई दुल्हन सी समझते हो, और बार-बार घूँघट उतारकर उसका चेहरा देखने की कोशिश करते हो। तुम लोग अब दर्जनों से सैकड़ो में आने लग पड़े हो, अब सरकार तुम्हारे लिए ट्रैकर हट बनाने वाली है, ऊपर मून पीक के पास एक रेस्ट हाउस भी बनने वाला है, कल शायद यहाँ रोप वे या फिर कोई हैली पैड बन जाए। तुम जैसे फिर सैकड़ों से हज़ारों में आएँगे। गाँव के लड़के अपनी पढ़ाई बीच में छोड़कर गाइड बनने लग पड़े हैं। वे अब खेतों में काम नहीं करते, उनके सपनों में बदलाव आ रहा है तुम लोगों ने उनके जिंदगी में बेवजह दखल दे लिया है ठीक जैसा तुमने प्रकृति, पहाड़ की ज़िंदगी में डाला है।'' मर्सीडीज़ दीपक की बातों से दुखी हो गई पर वह तर्क के साथ बोली, ''तो क्या तुम ऐसे ही ग़रीब भेड़ पालक बने रहना चाहते हो? तुम क्या ज़िंदगी नही जीना चाहते हो,क्या तुम्हारी इसी फटेहाल ज़िंदगी से आगे भी कुछ है उसे देखना,पाना नहीं चाहते हो?''

दीपक मर्सीडीज़ की आँखों में देखकर बोला,''कैसी ज़िंदगी मैम, जब ईश्वर ने हमें प्रकृति के बीच में पैदा किया, हमारे लिए रहन सहन खाने-पीने का इंतज़ाम किया तो फिर हम कौन सी ज़िंदगी जिएँगे। ये जंगल हमें सब कुछ देता है लकड़ियाँ, जड़ी बूटियाँ, औषधियाँ। खेत अनाज उगा रहे हैं। हर साल, नदी हर दिन पानी से लबालब है, मौसम अपनी चाल में अपनी कृपा बरसा रहे हैं, तो हम कौन सी ज़िंदगी जीना चाहेंगे, मुझे यही समझ नहीं आता! मुझे तो असली दुख यही है कि हमारे गाँव की संस्कृति अब पर्यटन संस्कृति बन रही है, गाँव के लड़के

तुम्हारे बड़े-बड़े बैगों को उठा रहे हैं, तुम्हारे साथ टूटी फूटी अंग्रेज़ी बोल कर कुछ पैसे ऐंठ रहे है। वो रोज़गार के सपने देख रहे हैं वो सड़क के किनारे ढाबे डाल रहे हैं। वो अब जंगल नहीं जाते, नदी के किनारे नहीं जाते, वो अब तुम्हारे लिए हर सुविधा के बदले पैसे के सपने लेते हैं और कइयों के सपने तो पूरे भी हो रहे हैं। गाँव की तस्वीर बदल रही है यह आख़िरी गाँव अब पर्यटकों की गाड़ियों की धूल में नहाने लगा है।''

मर्सीडीज़ अब दीपक की बातों से परेशान हो चुकी थी उसे समझ नहीं आ रहा था कि दीपक कौन सी दुनिया की बातें कर रहा है। क्या वह एक विद्रोह की चिंगारी को सुलगा रहा है, वह प्रकृति प्रेम में मानवीय जीवन की प्रकृति ही नहीं समझ पा रहा है। वह बोली, ''दीपक मैं तुम्हारे मन की व्यथा समझ रही हूँ पर आख़िर तुम भी धारा प्रवाह अंग्रेज़ी बोलने वाले, अच्छी शिक्षा के लिए इस गाँव के स्कूल से दूर कॉलेज तक गए होगे, ये भी परिवर्तन का हिस्सा था। तुम पढ़े-लिखे नहीं होते तो तुम्हारी सोच कुछ और होती। तुम नई सुविधाएँ लेने के बाद प्रकृति प्रेम की बातें कर रहे हो! क्या तुम अनपढ़ ही बने रहना चाहते थे? अब तुम्हारे विचार सुने जा रहे हैं वर्ना यहाँ कई देहातियों की ओर हम अभी ध्यान से देखते भी नहीं।''

दीपक अपने तर्क के साथ फिर बोल पड़ा, ''नहीं मर्सीडीज़! मैं यह चाहता हूँ कि ये बदलाव हम प्रकृति के विरुद्ध जा कर कर रहे हैं। क्या गद्दी लोग जो पहाड़ों, चरागाहों, नदी, नालों में अपनी रेवड़ के साथ खाक छानते हैं ये ठीक काम नहीं कर रहे, ये प्रकृति के संग जी रहे हैं। इन्होंने पूरा जीवन यही काम किया फिर इनकी औलादों ने इनके काम से नफ़रत पाल ली। वे शिक्षा, विस्तार परिवर्तन के सपने देखने लगे,उनकी भेड़ें-बकरियाँ धीरे-धीरे ख़त्म हो गईं। वे औलादें या तो किसी की नौकर बन गईं, या फिर बेरोज़गारी के पहाड़ में दब गईं। उनके लिए यही पहाड़, नदियाँ, घाटियाँ ही अभिशाप नज़र आने लगीं। वे अपनी मानसिकता में फँसते गए। उन्होंने नएपन के सपने में सब छोड़ दिया। अब उनके शरीर नए सपनों के अलावा कुछ नहीं सोचते, वे मति भ्रम में जी रहे हैं। क्या उन्हें प्रकृति ने अभी भी अपने पुत्र नहीं माना है।''

मर्सीडीज़ बोली, ''देखो दीपक! तुम्हारे लिए तो प्रकृति मेहरबान है, पर क्या बीहड़ों रेगिस्थानों में रहने वाले भी वहीं गलते सड़ते रहें, उनके लिए परिस्थितियाँ भिन्न हैं। मैं कई सुनसान जगहों में गई हूँ, जहाँ लोग प्रकृति से भी कुछ नहीं पाते। वे नारकीय जीवन जी रहे हैं।'' दीपक ने अपना तर्क नहीं छोड़ा, ''मुझे लगता है कि उन्होंने जीने की कला छोड़ दी होगी। क्या रेत के साँप को कुछ खाने-पीने को नहीं मिलता! क्या वह रेत छोड़ देता है! क्या खारे पानी की मछलियाँ मीठे पानी की झीलों के सपने लेती हैं? या बीहड़ों में जंगली पौधे नहीं उगते?''

मर्सीडीज़ अब फिर दीपक की बातों से बेबस नज़र आ रही थी। उसने अपने सिर के ऊपर से चाँद को गुज़रते देखा और उठ खड़ी हुई। ''मुझे भूख महसूस हो रही है मेरे बैग में कुछ खाने-पीने का सामान है, मैं बाहर ले आती हूँ।'' दीपक ने उसे एक दम रोक दिया ''बस आप एक दो मिनट रुकें, मैंने आपके खाने लायक कुछ बनाया है।''

वह पत्तागोभी की सब्ज़ी व अपने हाथों से बने मोटी चपातियों को एक पुरानी सी एल्यूमीनीयम की प्लेट में लाकर मर्सीडीज़ के लिए आग के अंगारों में गर्म करने लगा। ''ये सब्जी इन्हीं खेतों से निकलती है, यह आपके खाने में सही होगी। आप चखें तो सही। मैंने अपने लिए बनाई थी। आप के बैग में तो शायद चॉकलेट, ब्रैड सूप, वगैरह होगा।''

मर्सीडीज़ छोटे -छोटे चपाती के टुकड़ों को सब्ज़ी के साथ खाती रही और खाते हुए बोलती रही,''ये स्वादिष्ट है पर मुझे लगता है दीपक कि तुम्हें अपने मन को समझाना होगा। तुम्हें समझौता करने की आदत डालनी होगी। तुम बहुत सोचते हो और यह ज़्यादा सोच तुम्हारे लिए तो ठीक है, पर दूसरों की नज़रों में तुम्हें पागल सा घोषित कर देगी। मैं तो कहती हूँ तुम अगर ऐसे ही जीना चाहते हो तो जिओ पर दूसरों को अपने हिसाब से जीने दो। वे तुम्हारे रास्ते पर नहीं चलेंगे। वे बदलाव के स्वप्न संसार की रचना कर चुके हैं। मैं भी उसी का हिस्सा हूँ। पर हाँ चिंतन करती रहूँगी। तुम एक अच्छे विचारों वाले नौजवान हो, पर मैं अपने ख़यालों में जीना चाहती हूँ। मैं घूमना चाहती हूँ। इस दूनिया के अथाह रास्तों पर चलना चाहती हूँ। इसके सिवा मैं और कुछ नहीं सोचती पर तुमने मेरी सोच में ज़बरदस्त दखल दे दिया है। तुमने कुछ अलग विचारों के बीज मेरे मन मस्तिष्क की गीली मिट्टी में फैंक दिए हैं अब देखती हूँ कि वे अंकुरित होते है या फिर नहीं।''

दीपक उसे धीरे-धीरे खाता और बोलते देखता रहा। मर्सीडीज़ फिर बोली, ''दीपक मैं तुमसे एक निजी स्वाल पूछना चाहती हैं अगर तुम्हें बुरा न लगे। क्या तुम शादी करके अपनी पत्नी को ऐसे ही अपनी इस झोपड़ी में रखोगे। क्या उसकी उम्मीदें, उसकी इच्छाओं का इससे हनन नहीं होगा। शायद वह तुम्हारी तरह जीना नहीं चाहेगी तो फिर तुम क्या करोगे।''

दीपक हँस दिया और बोला, ''तो फिर शादी ही नहीं करूँगा। आपने मुझे सचेत कर दिया। मैं आपका आभारी हूँ।'' मर्सीडीज़ को लगा कि वह एक साधु जैसे नौजवान की ज़िंदगी में दखल दे रही है। वह खाना चबाते वक्त सोचती रही कि अगर उसके जैसी युवती ऐसे प्रकृति प्रेमी के हिस्से में आ जाए, तो शायद उनकी ज़िंदगी कुछ दिनों तो अच्छी चलेगी। वे इस धरा के नज़ारों को देखेंगे, घूमेंगे, रेवड़ों को हाँकेंगे। फिर वे सब सुविधाओं को त्यागते जाएँगे। वे फिर से ऐसी ज़िंदगी में चले जाएँगे; जिससे निकलने के लिए इंसानों ने वर्षों लगा दिए। क्या वे सब बेवक़ूफ़ है या फिर दीपक बेवक़ूफ़। उसे फ़ैसला करना था कि क्या सही है पर वह फ़ैसला नहीं कर पाई। उसे लगा वह भी दीपक की बातों से भ्रमित हो गई है। उसका मन अभी इतना मज़बूत नहीं हुआ है। कि वह फ़ैसला कर ले।

उसे लगा, नहीं वह तो बहुत ही कमज़ोर युवती है। उसका मन कर रहा था कि दीपक जैसे संन्यासी के कदमों में गिर जाए और उससे कई वर्षों तक बातें करती रहे। उससे मन में उठे हर प्रश्न का जबाब पूछती रहे। वह अपने आपको इतना विनीत ज़िंदगी में पहली बार महसूस कर रही थी। दीपक ने उसकी आत्मा को उसकी आँखों के सामने ला खड़ा कर दिया था। वह अब उस आत्मा के स्वरूप को समझने की कोशिश कर रही थी। फिर मन में एक लहर

उठी और उसने अपने आप को उस लहर के आगे नतमस्तक कर दिया। वह हार गई एक हिन्दुस्तानी युवा लड़के के सामने। दीपक ने उसको चंगुल से निकाल दिया, ''हम सुबह तड़के मून पीक के कैंप की ओर रवाना होंगे, अब तुम सो जाओ मर्सीडीज़। पेनकिलर खा लो जो शायद तुम्हारे पास होगा और पट्टी को बाँधे रखना।'' शुभ रात्री के साथ ज़मीन के सहारे मर्सीडीज़ नींद की आगोश में चली गई। वो स्वप्न में एक हिंदू राजकुमार के संग अरावली पर्वत के अनोखे रास्तों की सैर को निकली थी, उसे लग रहा था कि उसका मन व आत्मा हिंदू राजकुमारी जैसी थी पर सोच में एक स्पेनिश लड़की जैसे विचार व दृष्टिकोण था। वह एक हिंदू मित्र राजकुमार के साथ उसके इतिहास व सभ्यता की बातें चर्चा करती रही।

सुबह तड़के ही मर्सीडीज़ को दीपक ने उठा दिया। अभी शायद वो फिर किसी सपने में थी, जो अब किसी फ़िल्म के रील रुक जाने पर अँधेरे में बदल गया था। सुबह बकरी के दूध की चाय पीकर वो चढ़ाई चढ़ने लगे। रास्ते में दीपक उससे कोई बात नहीं कर रहा था। दोनों अपने पुराने वार्तालाप के जंजाल से निकलकर मन को अंजानी राहों की तलाश में लगा रहे थे। घंटे भर के बाद एक तीखी चढ़ाई के बाद मून पीक का नज़ारा उनकी आँखों के सामने था।

ग्रेनाइट के पत्थर व चट्टानों पर चाँद की रोशनी चित्रकारी कर रही थी। मर्सीडीज़ बोली,''ओह माई गॉड! इस अदभुत नज़ारे के लिए मैं इस कठिन चढ़ाई की योजनाएँ बनाती आ रही थी। धन्यवाद दीपक! तुम्हारे कारण और तुम्हारी प्लानिंग ने मुझे यह अहसास करवा दिया कि मैंने चोट के बाद कुछ खोया नहीं हैं।''

दीपक मुस्करा दिया। वह बोला,''मैं यह गाइड जैसा काम कभी नहीं करना चाहता था। पर फिर भी मुझे आख़िरी बार तुमने गाइड बना ही दिया। मैंने कभी गाइड न बनने का प्रण लिया था, पर तुम्हारे कारण मैं मजबूर हुआ था। शायद ईश्वर व प्रकृति दोनों ने ऐसा ही कोई प्रंपच रचाना था।'' वह मून पीक को देखता रहा पल भर। आगे घाटी पसरी थी। बेस कैंप के टैंट से आती एक रोशनी की लकीर साफ देखी जा सकती थी। सुबह का चाँद अपनी बची-खुची रोशनी को वहीं छोड़कर सोने की तैयारी करने वाला था। दीपक का मन रात के वार्तालाप से परेशान हो रहा था। उसे लग रहा था कि जैसे उसने अपने विचारों के संताप से एक चंचल आधुनिक विदेशी लड़की के मन को बेवजह पीड़ा दे दी हो। उसे आत्मग्लानि हो रही थी।

मर्सीडीज़ दीपक के हाव भाव पहले ही पढ़ चुकी थी। वह अब फिर से अपने चेहरे से चाँद की रोशनी को उतार कर दीपक के विचारों के अँधेरे को ओढ़कर बोली,''मुझे पता है दीपक तुम क्या सोच रहे हो! तुम अपने विचारों से खुद ही पीड़ित महसूस हो रहे हो, जब तुमने सब सच्चे मन से मुझसे शेयर किया है तो फिर पश्चाताप में क्यों जल रहे हो? तुममें हिम्मत, विश्वास होना चाहिए कि तुम ठीक कह रहे हो,तुममें ज़िद होनी चाहिए कि तुम ठीक हो। वर्ना यह सब बेकार है अपने विश्वास पर क़ायम रहो! हे बहादुर नेक दिल दीपक!''

दीपक और मर्सीडीज़ कैंप में पहुँच गए। पूरा दल तब तक उठ चुका था। वहाँ लगभग दस-बारह टैंट लगे थे और कुछ लोग भी थे। कुछ विदेशी और कुछ लोकल। मून पीक की चोटी की चढ़ाई में मदद करने वाले गाइड व सहायक। ऊपर एक अलग ही दुनिया थी। मर्सीडीज़ को वहाँ पहुँचा देखकर पूरा दल खुश हो चुका था और दीपक के कानों में दर्जनों धन्यवाद भरे शब्द आ रहे थे। दीपक वापिसी की तैयारी में चलने को हुआ। मर्सीडीज़ ने उससे मोबाइल नम्बर लेना चाहा जो दीपक के पास नहीं था। मर्सीडीज़ ने आख़िरी बार धन्यवाद से दीपक को बाय-बाय कहा।

कोई सात-आठ वर्ष बीत गए। मर्सीडीज़ साल-छः महीने के बाद अपने गाइड कमल से दीपक का हाल चाल पूछती रही थी। वह कई बार कमल के जरिए दीपक से भी बात करती रही थी। वह खुश होकर दीपक को बताती थी कि वह दीपक के विचारों पर एक उपन्यास लिख रही है, जो एक प्रकृति प्रेम के लिए पागल लड़के की ज़िंदगी के आस-पास घूमता है। इसकी पृष्ठ भूमि भारतीय ही है। वह इससे पहले भी कई बार कमल से दीपक के जीवन के कई अनछुए पहलुओं पर कई बातें जानती रही थी। इस बार उपन्यास का विमोचन होते ही उसने दीपक से बात करने के लिए कमल को जैसे ही फ़ोन किया।

कमल ने उसे एक अति दुखद समाचार सुनाया, ''मैडम दीपक और उसकी भेड़ें अब इस जहान में नहीं हैं। इस बरसात में एक भयानक बादल मून पीक के पास फटा और तेज़ पानी के बहाव में दीपक और उसकी भेड़ें करोड़ों टन मलबे में दब गए। अब न दीपक की झोंपड़ी बची है और न ही उसकी ज़मीन। बड़ा भयानक नज़ारा है वहाँ का। अब तो कोई विदेशी ट्रैकर भी वहाँ नहीं आता है।

वे मून पीक के लिए दूसरे ट्रैक से जाने लगे है। जिस रास्ते से हम मून पीक के लिए जाते थे, वह तो बादल फटने से गिरे पहाड़ में कहीं खो गया है। वह रास्ता अब सुरक्षित नहीं है। किसी गाइड ने उस रास्ते की बजाए नए रास्ते की ओर से कुछ पर्यटकों को ले जाना शुरू कर दिया है। अब शायद कुछ वर्षों बाद पहले सा माहौल बन जाए, पर दीपक का गाँव अब ट्रैक गूगल के मैप रास्ते से भी हट गया है।'' मर्सीडीज़ ने फ़ोन सुनकर एक दुख भरी लंबी साँस ली। उसकी तीन साल की बेटी उसके पास आकर बोली, ''क्या हुआ मॉम,क्या हुआ?''

मर्सीडीज़ बोली,''तुम्हारे इंडियन हीरो अंकल दीपक जिसके नाम पर मैंने प्रकृति प्रेम पर उपन्यास लिखा है, वह अब सचमुच ही प्रकृति के रास्ते की बाधा बन गया था, इसलिए प्रकृति ने उसे अपने रास्ते से हटा दिया है।'' नन्हीं मारिया को कुछ समझ नहीं आया और वह अपनी मॉम के कमरे से दूसरे कमरे में चली गई। वह वहाँ पड़े एक खिलौने से खेलने लगी। मर्सीडीज़ की आँखों में उस भारतीय टूर के दृश्य, बिताए पलों को परत दर परत खोलते हुए तैरने लगे जो उसने दीपक के साथ बिताए थे। उसके बाद उसके उपन्यास में हीरो बने दीपक के इर्द-गिर्द बिताए पल उसकी आँखों में आँसू की बरसात को न्यौता देने लगे। वह सोचने लगी-क्या किसी हीरो के साथ ऐसा भी हो सकता है? प्रकृति क्या ऐसी भी होती है? प्रकृति क्या ऐसी होती है! पहाड़ का देवता सचमुच क्या दीपक से ही नाराज़ हो चुका होगा।

***

पंचनामा

हरिप्रकाश राठी

हरिप्रकाश राठी
सी-136, कमला नेहरु नगर प्रथम विस्तार,
जोधपुर- 342009, राजस्थान
मोबाइल- 9414132483
ईमेल-hariprakashrathi@yahoo.co.in

रसिया जी क्या आए कॉलानी में हडकंप मच गया। आवारा पशुओं को देखकर औरतें जैसे बच्चों को अंदर ले लेती हैं, रसियाजी को घूमते देख कॉलानी के मर्द एक विचित्र आशंका से भयभीत हो उठते। उस समय इनमें से किसी की बीवी यदि घर के दरवाज़े पर अथवा इर्दगिर्द होती तो वे यही कहते जो अक्सर मैं वंदना को कहता, वहाँ क्या लड्डू रखे हैं ? बेबात बाहर क्यों खड़ी हो ? यह भी हो सकता है वे ठीक इन्हीं शब्दों का प्रयोग न कर कुण्ठा में अन्य शब्दों का प्रयोग करते हों, जैसे मुझसे उकता गई हो जो इसे देखकर बाहर आ जाती हो अथवा फिर यह रोटी देता है, जो इसके स्वागत में खड़ी हो अथवा ऐसा ही कुछ-कुछ, जो इस बात पर निर्भर करता कि बीवी पर किसका कितना ज़ोर चलता था। इन सब में सबसे अच्छा, मन को सुकून से भरने वाला तो मुझे मेरे पड़ौसी आर्या का यह कहना लगता, 'आँख मटक्का करना है जो वहाँ खड़ी हो ? भीतर आती हो या लगाऊँ गाल पर दो चमाट।'

यह सब स्टेटमेंट इवनिंग वॉक में मर्द मिलते तब साझा होते। मैं आर्या के शौर्य की खुले मन से सराहना करता, मन ही मन सोचता इन लुगाइयों को यही कहना चाहिए, इससे कम पर यह मानने वाली नहीं। एक शूरवीर की तरह स्वयं को पूरा तैयार करता लेकिन घर पहुँचते फुस्स हो जाता। वंदना के तूणीर में दस तीर होते, ''दूध लाए ? सब्जी का कहा था, कुछ याद रहता है ?'' अथवा फिर धोबी, दर्जी, टीवी वाला, वह कोई न कोई मेंढक मुझे देखते ही सर पर रख देती। मैं मन ही मन सोचता, काश! इसे आर्या जैसा पति मिला होता। चमाट खाकर गाल पर उँगलियाँ देखती, तब पता चलता पति किस बला का नाम है। एक पति को उसी की तरह कठोर, बदमिज़ाज होना चाहिए, औरतें ऐसे पतियों की पूजा करती हैं। पति ज़रा नरम हुआ, औरतें छाती पर नाचने लगती हैं। आर्या तो एक बार बता रहा था वह कई

बार बिना कारण बीवी को चमाट धर देता है। मैंने कहा ऐसा क्यों करता है, तो बोला, उसे डरी, सहमी हुई औरत अच्छी लगती है। तब मैं मन ही मन आर्या जैसा पति होने का स्वप्न देखता लेकिन इस हसीन स्वप्न में भी वंदना आँख दिखाने से बाज़ नहीं आती। मेरा स्वप्न तब ताश के पत्तों की तरह ढह जाता।

रसिया जी हमारी कॉलोनी में मात्र छ: माह पूर्व आए पर फकत छ: माह में उन्होंने औरतों पर वह प्रभाव बना लिया जो हम विवाह के वर्षों बाद तक नहीं कर पाए। मुझे अनेक बार कोफ़्त होती जिसे मैं अक्सर साँझ की गुफ़्तगू में निकालता, ''लोग इन छड़ों को मकान किराये पर देते क्यों हैं ? सरकार को गृहस्थों के मोहल्लों में छड़ों का प्रवेश निषेध कर देना चाहिए। छुट्टे सांड घूमेंगे तो गाएँ कब तब हिफ़ाजत से रह सकेंगी ?'' कॉलोनी के अन्य मर्द इस बात पर मुझे आँखें तरेर कर देखते, मुझे तब समझ आता मैं कहना क्या चाहता हूँ एवं कह क्या देता हूँ। तब आर्या जवाब देता 'उसका मकान मालिक तापड़िया खुद चिरकुँवारा है, उसके लुगाई होती तो वह समझता ऐसे मर्दों से जोखिम क्या हैं।' मैं आर्या से सुर मिलाता, ''मुझे तो लगता है इस हरामी ने हमें चिढ़ाने के लिए मकान इस छड़े को किराये पर दिया है। इस बार होली पर सभी दारू पीकर तापड़िया की फ़जीती करेंगें। इसका मुँह कोलतार से पोतेंगें तब कुत्ते को अकल आएगी कि हर कॉलानी की एक मर्यादा होती है एवं मकान सोच-समझकर सही किरायेदार को देना चाहिए। जाके पाँव न फटे बिवाई वो क्या जाने पीर पराई।'' तभी मेरे पास बैठा सुशील बोला, ''मैंने सुना है आजकल दो मर्द भी आपस में संबंध बना लेते हैं। कहीं यह होमो तो नहीं ?'' उसकी बात सुनकर हम सभी खिलखिलाकर हँस पड़े।

रसिया जी की उम्र लगभग मेरे करीब यानि पैंतालिस के आसपास होगी। एक ऐसी उम्र जिसमें मर्द बहुधा ढलने लगते हैं लेकिन रसियाजी आज भी तीखे-बाँके लगते। आर्या एक बार बता रहा था कि वह नित्य बैडमिंटन खेलने जाता है, इसी के चलते जवान, चुस्त-दुरुस्त दिखता है। पानीदार आँखें एवं आत्म-विश्वास से भरी

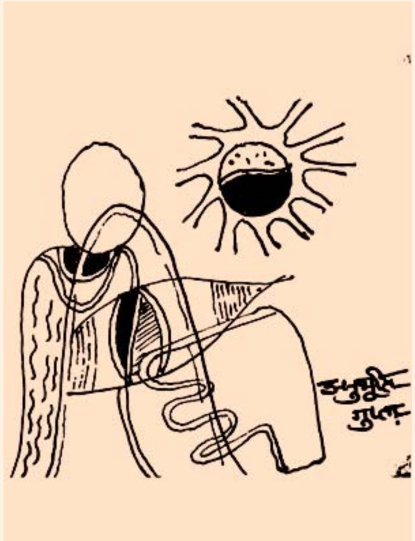

चाल उनके व्यक्तित्व में इज़ाफा करती। औसत से ऊपर क़द था, टिंगू आर्या जब भी उनसे बात करता, मुँह ऊँचा करके करता। अंग्रेज़ी-हिन्दी दोनों में पारंगत थे, कम बोलते लेकिन जब भी बोलते उनकी वाणी का प्रभाव देखते बनता। यहीं किसी कंपनी में जनरल मैनेजर था, कॉलोनी की सबसे अच्छी एवं महँगी गाड़ी भी उसी के पास थी। जहाँ हम सभी जोड़-तोड़कर पच्चीस हज़ार वेतन पाते, वंदना एक बार बता रही थी इनकी तनख्वाह लाख से ऊपर है। कहते-कहते उसने मेरी ओर ऐसे देखा मानों अपने दुर्भाग्य को कोस रही हो। आशंकित, मेरी छाती पर साँप लोट गए। मैंने पूछा, तुझे कैसे पता चला, तो बोली, यह बात पड़ौस में रहने वाले सुशील जी की वाइफ ज्योति ने उसे बताई है। मैंने बात आगे बढ़ाई, उसे कैसे पता चला तो वंदना कुढ़ते हुए यह कह कर चली गई कि पूछ कर बताऊँगी। जाते हुए उसकी आँखों का क्रोध स्पष्ट बता रहा था कि वह यह भी कहना चाहती है कि उसके पल्ले तो मुझ जैसा फ़क़ीर पड़ा था, महीना बीतते ही बगलें झाँकने वाला। मेरे लिए यह भी रहस्य था कि आख़िर ज्योति को यह बात कैसे पता पड़ी एवं पता चली तो उसने सुशील को क्यों नहीं कही ? उसे पता होता तो वह बड़बोला कब का उगल देता। ओह, इन औरतों का सूचना तंत्र कितना प्रभावी होता है वरना एक मर्द को तो दूसरे की तनख्वाह तक जानने में वर्षों लग जाते हैं।

उनका नाम 'रसिया जी' क्यों पड़ा यह भी एक दिलचस्प वाक़या है। एक बार वे शाम के समय गाड़ी में ऑफ़िस से आ रहे थे। गाड़ी उनका ड्राइवर चला रहा था, पीछे सीट पर उनके साथ कोई खूबसूरत महिला बैठी थी। हम वॉक कर सुस्ता रहे थे। यकायक रसिया जी की गाड़ी हम से थोड़ी दूरी पर रुकी, वह महिला गाड़ी से उतरी एवं वहीं खड़े कुछ देर उनसे बतियाती रही, दोनों हँस-हँसकर बेतकल्लुफ बातें कर रहे थे। जहाँ हमें औरतों से बातें करने तक में शर्म आती, रसिया जी नि:संकोच बातें किए जा रहे थे, वरन् आत्म-विश्वास में वे महिला पर भारी पड़ रहे थे। जाते हुए महिला ने आगे बढ़कर उनसे हाथ मिलाया, रसिया जी ने उसके समीप आकर अंग्रेज़ों की तरह गर्दन से गर्दन मिलाई एवं बॉय-बॉय कह कर चल दिए। उस दिन हम फटी आँखों से उन्हें देख रहे थे।

यकायक उन्होंने हम सब की ओर देखा तो मुड़कर हमारी ओर चले आए। उनके समीप आते ही हम खड़े हो गए, हीन भावना से पहले से ग्रस्त थे, उन्हें देखते ही बोले, गुडइवनिंग सर! मुझे मेरे हम वय व्यक्ति को सर कहना अखरा, पर विनम्रता की औलाद शर्मा पहले ही सर बोल पड़ा तो सुशील, आर्या एवं वहाँ बैठे अन्य सभी को सर कहना पड़ा।

''गुडइवनिंग! आप सभी कैसे हैं ?'' रसिया जी वहीं खड़े-खड़े बोले। उनके पोर-पोर से आत्म-विश्वास टपक रहा था।

''अच्छे हैं सर!'' इस बार सुशील इस तरह बोला मानों वह धरती पर नहीं कुएँ में खड़ा हो।

''मैं ऑफ़िस से आकर नित्य खेलने चला जाता हूँ, अत: आपसे मिलना नहीं हो पाया। आप कभी घर आएँ, परिवार, बच्चों को भी साथ लाएँ। मैं अकेला रहता हूँ अत: मुझे लोगों से मिलना बहुत भाता है। आज ज़रा जल्दी में हूँ, चलता हूँ। ओके।'' जाते हुए भी उनकी चाल, आँखों की चमक देखने लायक थी।

उनके जाते ही हमें मुद्दा मिल गया। हमने पीछे बैठी औरत के बारे में अगड़म-बगड़म हज़ार बातें की। आर्या ने तो यहाँ तक कहा कि यह इसकी रखैल हो सकती है तो बाकी सभी चौंक गए। औरत हसीन थी वह जवाँमर्द एवं जिस तरह वह गले मिल रहा था उससे हमारे जैसे अल्पबुद्धियों

का आशंकित होना स्वाभाविक था। जाने कैसे उस दिन मेरे मुँह से निकल गया, ''हरामी रसिया लगता है।'' उस दिन सभी खुलकर हँसे एवं तबसे ही उसका नाम 'रसियाजी' पड़ गया हालाँकि उस दिन मैं घर आया तो वंदना ने बात करते हुए बताया कि यह लड़की उनकी सेकेट्री है। मैं फिर आशंकित हुआ, बात न बढ़े इसलिए इस बार यह पूछना टाल गया, तुझे कैसे पता चला।

रसिया जी का असल नाम गौरव सक्सेना है एवं नाम के अनुरूप स्वाभिमान एवं गौरवभाव उनके अंग-अंग से टपकता है। हर समय चुस्त दिखते हैं। कॉलोनी का गार्डन वर्षो से ख़राब था, उन्होंने पहली बार यहाँ रहने वालों की बैठक बुलाई, सबको ऐसे उत्साहित किया कि गार्डन चंद दिनों में दुरुस्त हो गया। उनका पहला वक्तव्य ही ऐसा दमदार था मानों किसी जादूगर ने सम्मोहन किया हो। इस कार्य में उन्होंने स्त्रियों, बच्चों तक को हाथ बँटाने का आह्वान किया, फिर क्या था कोई गार्डन साफ कर रहा है, कोई जंगली घास उखाड़ रहा है, कोई पत्थर इकट्ठे कर बाहर डाल रहा है, कोई पौधे लाकर लगा रहा है, किसी ने खाद-बीज का इंतज़ाम किया, एवं गार्डन चंद महीनों में महकने लगा। कॉलोनी में एक टूटा मंदिर था, वह भी उन्होंने जन-सहयोग एवं दानदाताओं से मिलकर ठीक करवा दिया। बिजली के खम्भों से पुराने तार लटकते रहते थे, आँधी-बरसात में बिजली अक्सर नदारद होती। रसियाजी ने विभाग से सम्पर्क कर नई लाइन लगा दी। कॉलोनी में पानी की छोटी लाइन थी, पानी धीरे-धीरे ऐसे आता जैसे ग़रीब की तिजोरी में धन इकट्ठा होता है। रसियाजी ने यहाँ भी कमाल कर दिखाया। सरकारी इंजिनियर्स से मिलकर बड़ी लाइन लगवा दी। यह तो कमाल हो गया। उस दिन कॉलोनी में घूमते हुए रसिया जी घर के आगे से निकले तो वंदना चीख पड़ी, ''गौरवजी अब तो पानी इतना तेज़ आता है कि छानने का कपड़ा फट जाता है।'' उसकी खुशी देखने लायक थी।

''इसकी तो पार्टी बनती है, वंदना जी!'' रसिया जी मुस्कुराकर बोले।

''वह भी मिलेगी। सच में हम सभी को आपका अभिनन्दन करना चाहिए पर फिलवक्त आप मेरे ख़ास अनुरोध पर

ब्रेकफास्ट लेकर जाएँ। मैं उपमा बहुत अच्छा बनाती हूँ।'' वन्दना उससे ऐसे आग्रह कर रही थी मानों घर के बाहर देवता खड़ा हो।

मैं कुढ़कर रह गया। एक तो मैं उसे निमंत्रण देना जोखिम समझता था दूसरा इतनी देर, बेझिझक, उसका मात्र वंदना से बात करना मुझे ज़रा नहीं सुहाया। लेकिन अब कर क्या सकता था। मैंने भी मुस्कुराकर उनका अभिवादन किया एवं उन्हें चुप भीतर लेकर आया। इस छोटे से रास्ते में आशंकाओं के असंख्य बादल मेरे विचार-व्योम पर तैर गए।

हम सभी डाइनिंग टेबल के आगे बैठे थे, ''ओह, आप कितना स्वादिष्ट उपमा बनाती हैं। वर्षो बाद ऐसा स्वाद मिला।'' रसियाजी ब्रेकफास्ट करते हुए बोले।

''चलिए! आपको स्वादिष्ट लगा, यह जानकर अच्छा लगा।'' मैं बीच में बात काटकर बोला।

तभी बबलू मेरे पास आकर बोला, ''पापा! क्या मेरा एडमिशन हो गया ? मैं स्कूल कब जाऊँगा ?''

''अरे! आपका अब तक एडमिशन नहीं हुआ ?'' रसिया जी ने उसके सर पर हाथ फेरते हुए पूछा।

''इण्डियन पब्लिक स्कूल में बात चल रही है। दो बार होकर भी आए हैं पर परिणाम कुछ भी नहीं। आजकल बच्चों का एडमिशन कितना कठिन हो गया है। ऊपर से यह ठहरे भोलेनाथ।'' वंदना ने रसिया जी को कहते हुए अपनी खीझ निकाली।

''अरे, उस स्कूल के प्रिंसिपल मिस्टर शारदा मेरे मित्र हैं, मैं बात करूँगा।'' नेकी और पूछ-पूछ। रसिया जी के उत्तर से वंदना आश्वस्त हुई। यह मेरे एवं वंदना की कोहनी पर गुड़ लगाने वाली बात थी। वंदना इस काम को लेकर रसिया जी के पीछे पड़ गई। आश्चर्य! उनके प्रयासों से बबलू का एडमिशन भी हो गया। अब तो अपने छोटे-मोटे अटके कई काम में वंदना उनसे सहयोग लेने लगी। मेरे हाउसिंग लोन की इन्क्वायरी एवं अन्य कई कार्यों में वंदना के अनुरोध पर रसिया जी ने जी भरकर सहयोग किया। मेरा एवं वंदना का ही नहीं कॉलोनी की अन्य महिलाओं के कार्यों में वह जब-तब हाथ बँटाता। औरतें भी रपट कर सहयोग लेतीं। हद तो तब हुई जब औरतें बच्चों के हाथ उनके घर स्पशेल डिशेज़ पहुँचाने लगीं। मिसेज़ आर्या तो अनेक बार खुद उनके यहाँ डिशेज़ पहुँचा कर आती। यह सब वह तब करती जब आर्या ऑफ़िस में होता। यह परम रहस्य वंदना ने मुझे गोपनीयता की कसम दिलाकर बताया।

इतना हम सबसे कहाँ सहन होता। साँझ हम रसिया जी की जी भर बुराई करते। हमने हमारे व्यवहार, ड्रेस, औरतों को दी जाने वाली हाथखर्ची आदि आदतों में सुधार भी किया इसके बावजूद सब पर रसिया जी का नशा सवार था। जगत् में चाम नहीं काम प्यारा है। अनेक बार हमें क्रोध भी आता कि यह औरतें आख़िर बनी किस मिट्टी की हैं, खाती खसम का हैं गीत रसिया जी के गाती है। हम जानते हुए भी ज़ब्त कर जाते। इन औरतों का क्या। ज़िद चढ़ जाए तो जाकर रसिया जी को कह दें ये आपसे जलते हैं।

एक रात मैंने वंदना से पूछा, ''आख़िर रसिया जी में ऐसा क्या है कि औरतें इन्हें आँखों पर बिठाती हैं ?'' मैं जलाभुना था, दम लगाकर पूछ ही लिया।

''आप कितने शक्की हैं। उनकी तरह सहयोग, साहचर्य एवं मित्रभाव से भरने की बजाय उनसे जलते हो। छी: अपनी हीनता दूर करने की बजाय उन्हें कोसते हो।'' वह एक साँस में इस तरह उगल गई जैसे उसे पहले से पता था कि मैं एक दिन रोऊँगा एवं वह मुझे यह जवाब देगी। मैं अपना-सा मुँह लेकर रह गया।

दिन यूँ ही बीतने लगे। रसिया जी के बढ़ते प्रभाव से हम सभी खिन्न थे। सभी मनौती करते जितना जल्दी कॉलोनी से

निकले अच्छा है। हरामी ने औरतों को सर चढ़ा दिया। हमारे पास कोई तोड़ भी नहीं था। संकड़ी गली में सांड आ गया। आर्या तो एक बार यहाँ तक बोला, पहले अँगूठे तले रहती थी, आटे की आया थी, जब से रसिया जी आए हैं, स्त्री अधिकारों तक की बातें करने लगी है। अभी कुछ दिन पहले स्त्री-प्रताड़ना कानूनों तक के बारे में बता रही थी। मुझे तो लगता है यह रसिया ही इसे भड़का रहा है।

मैंने कुढ़कर कहा ''यह भड़वा मर क्यों नहीं जाता''।

तभी शर्मा बीच में बोला ''तू चुप कर! तेरी ज़ुबान काली है।''

इस बात को भी अरसा बीत गया।

आज शाम वॉक के बाद हम सभी बैठे थे। तभी पुलिस की एक जीप कॉलोनी में आई। जीप हमसे थोड़ी दूर रुकी। उसमें से एक बँधी गठरी लेकर चार पुलिस वाले उतरे। उनके पीछे इंस्पेक्टर था, वह आगे बढ़कर बोला, ''बहुत बुरी ख़बर है। आपकी कॉलोनी से एक फर्लांग पहले इसी कॉलोनी के गौरव सक्सेना का दुर्घटना में निधन हो गया। ऑफ़िस से लौट रहे थे, आज ड्राइवर अवकाश पर होने से कार स्वयं चला रहे थे। वे गाड़ी में अकेले थे। उनकी कार सामने तेज़ी से आ रहे एक ट्रक से टकरा गई। सूचना मिलते ही हम आनन-फानन अस्पताल ले गए। डॉक्टरों ने देखकर इन्हें मृत घोषित कर दिया। इनकी बॉडी पोस्टमार्टम रूम में रखी है। घटना-स्थल का हमने पंचनामा बना दिया है, बस, कपड़ों की पहचान कर पंचनामे पर दस्तख़त होने हैं। इस गठरी में उनके कपड़े हैं जिसे आपको पहचानना होगा।''

''रसिया जी मर गए ?'' मैं लगभग चीखा फिर झेंप मिटाते हुए इंस्पेक्टर की ओर देखकर बोला, ''हम उन्हें प्यार से रसिया जी कहते थे।''

उस दिन मिसेज़ आर्या भी आर्या के साथ वॉक कर हमारे साथ बैठी थीं। उसने तुरत अन्य औरतों को फ़ोन किया। क्षणभर में वंदना, मिसेज़ शर्मा, मिसेज़ सुशील एवं कॉलानी की अन्य औरतें तथा बच्चे वहाँ आ गए। कॉलोनी में सन्नाटा छा गया।

सन्नाटा चीरते हुए इंस्पेक्टर ने पुनः निवेदन किया, आपको कपड़े तो पहचानने

होंगे। तभी सभी औरतें विशेषतः मिसेज़ आर्या तेज़ी से चलकर वहाँ आई। रसिया जी की मृत्यु की ख़बर सुनकर सबके चेहरे लटक गए।

इंस्पेक्टर ने सबसे पहले पतलून निकाला। सभी चुप खड़े थे। अब कपड़ों का किसे क्या पता ? तभी मानों बिजली कौंधी। अधीर, बौखलाई मिसेज़ आर्या इंस्पेक्टर के समीप आकर बोली, ''हाँ, यह उन्हीं की पतलून है। उनकी पतलून का साइज़ अड़तीस इंच है। उन्हें काले रंग का एडमिन कंपनी का पतलून बहुत पसंद था। यह उन्हीं का है।'' मिसेज़ आर्या बोलते हुए ज़रा नहीं अटकी।

इंस्पेक्टर ने स्टिकर देखकर कहा, ''आपने ठीक पहचाना। यह 38 साइज़ का एडमिन कंपनी का ही पतलून है।''

आर्या ने हम सब की ओर देखा एवं आँखें नीची कर ली।

इंस्पेक्टर ने अब कमीज़ बाहर निकाला, सफेद कमीज़ खून से सना था, दुर्घटना के कारण यहाँ-वहाँ से फट भी गया था।

''यह भी गौरव जी का ही कमीज़ है। वे अधिकतर ब्लिस कंपनी का व्हाइट शर्ट पहनते थे। आप देखिए ! उनका साइज़ एक्सेल है।'' मिसेज़ आर्या में इतना साहस जाने कहाँ से आ गया।

''आपने सही फ़रमाया। यह उसी कंपनी का एक्सेल साइज़ कमीज़ है।'' कहते हुए उसने चश्मा नीचे कर मिसेज़ आर्या की ओर देखा। उसकी उठी हुई पुतलियाँ मानों किसी रहस्य में सेंध लगा रही थी।

अब उसने बनियान निकाला।

''यह आधी बाहों वाला बनियान भी उन्हीं का है। वे कमीज़ के नीचे यही पहनते थे। इसे पहनकर बेडमिंटन भी खेलते थे। उनका साइज़ 36 एवं ब्रांड सेंडो था। यह उनका फेवरेट ब्रांड था।'' मिसेज़ आर्या की पीड़ा,अधीरता एवं अकुलाहट देखते बनती थी।

इंस्पेक्टर ने बनियान के ऊपर की ओर देख हाँ के अंदाज़ में चेहरा ऊपर से नीचे की ओर हिलाया।

अब इंस्पेक्टर ने सकुचाते हुए आख़िरी कपड़ा पहचान के लिए निकाला।

''यह भी उन्हीं का अंडरवियर है। उन्हें क्लासिक कंपनी के वीशेप अंडरवियर बहुत पसंद थे। आप देखिए, उनका साइज़ अड़तीस होगा।'' मिसेज़ आर्या बेझिझक कहे जा रही थी।

''हाँ, यह अड़तीस साइज़ का क्लासिक अंडरवियर है।'' इंस्पेक्टर ने देखकर पुष्टि की एवं पंचनामा मिसेज़ आर्या की ओर दस्तख़त के लिए बढ़ाया। बेहिचक, बिना किसी की ओर देखे मिसेज़ आर्या ने उस पर दस्तख़त कर दिए। इसके बाद जाने उसे क्या हुआ, वह वहीं घुटनों के बल बैठ गई एवं फूट-फूट कर रोने लगी। अन्य औरतें चुपचाप उसके समीप आईं एवं कंधे पर हाथ रख उसे ढाढस देने लगी।

अब कहने-सुनने-समझने को क्या बचा था ?

आर्या पास ही खड़ा था। उसे काठ मार गया। काटो तो खून नहीं। बीवी ने मानों स्वयं उसके पंचनामे पर दस्तख़त कर उसी के मुँह पर चस्पा कर दिया था। चमाट मार कर तो उसने अनेक बार बीवी के गाल लाल किए लेकिन आज उसका चेहरा, बिना चमाट खाए, ताँबे के तपते बर्तन की तरह लाल हो रहा था।

साँझ गहराने लगी थी।

पेड़ों पर बैठे पक्षी यकायक इस तरह चुप हो गए जैसे कोई उन्हें गवाही के लिए न बुला ले।

दूर लाल हुआ सूरज अस्ताचल में डूब रहा था। इंस्पेक्टर ने कपड़े गठरी में बाँधे एवं अन्य पुलिस वालों के साथ जीप में बैठकर चला गया।

* * *

इंगलिश रोज़

अरुण सब्बरवाल

अरुण सब्बरवाल
2, Russettings Westfield Park,
Hatch End, Pinner. HA5 4JF
United Kingdom
मोबाइल- +44-7557944220
ईमेल- sab_arun@hotmail.co.uk

वह आज भी खड़ी है..... वक्त जैसे थम गया है.... दस साल कैसे बीत जाते हैं.... इतने वर्ष...... वही गाँव......वही नगर..... वही लोग.... यहाँ तक कि फूल और पत्तियाँ तक नहीं बदले। टूलिप्स, सफेद डेज़ी, लाल और पीला गुलाब वापस उसकी तरफ ठीक वैसे ही देखते हैं जैसे उसकी निगाह को पहचानते हों।

चशैयर काऊंटी के एक गाँव तक सिमट कर रह गई है उसकी ज़िंदगी। अपनी आराम कुर्सी पर बैठ वह उन फूलों का पूरा जीवन अपनी आँखों से जी लेती है। बसंत से पतझड़ तक पूरी यात्रा.... हर ऋतु के साथ उसके चेहरे के भाव भी बदल जाते हैं.... कभी मुस्कुराहट तो कभी उदासी। अचानक घंटी की आवाज़ सुनते ही वह उचक कर दरवाज़े की ओर भागती है। सामने नीली आँखों तथा भूरे घुँघराले बालों वाला बालक खड़ा है.... एक देसी चेहरा देख कर वह घबराया फिर हाथ आगे बढ़ाता बोला, ''आई एम शॉन..... आपके गार्डन में मेरी गेंद गिरी है। क्या मैं ले सकता हूँ.... ?''

''ऑफ़कोर्स.... अन्दर आओ....'' गार्डन में एक नहीं छह गेंदे पड़ी थीं। वह थैंक्स कह कर जाने ही वाला था कि विधि की ममता ने उसे रोक कर पूछ ही लिया... ''कोक पियोगे...?''

एकाएक उसकी आँखें डबडबा जाती हैं। वर्षों का जमा दर्द उसकी आँखों से बहने लगता है। वह खिड़की से टकटकी लगाए उसे देखती रही। उसके आँसुओं की धारा चेहरे से होते हुए उसके आँचल को भिगाने लगी। सोचते-सोचते वह अपने जीवन के विकृत पन्नों के अँधेरों में डूब गई.... जब उसकी सास शरद जैसे बेटे को जन्म देने के अहम् की जय और कैंसर से जूझती उसकी पत्नी की पराजय का उत्सव मना रही थी। जिसने अभी-अभी पैदा होते ही अपना बेटा खोया था। उसके राम जैसे बेटे शरद ने अपनी कैंसर से लड़ती पत्नी को प्यार और सहानुभूति के दो शब्दों के स्थान पर अपमान में उसका निजी समान सौंपते हुए कहा था... ''अब तुम मेरे लिए। व्यर्थ हो........''

''व्यर्थ....'' भला एक इंसान व्यर्थ कैसे हो सकता है ? पत्थरों की भाँति लगे थे वे कठोर शब्द उसे दिल पर... तिलमिला उठी थी वह.... इस गहरी चोट पर... एक चिंगारी

लग गई थी उसके तन-मन पर। यह घात उसके शरीर पर नहीं उसकी आत्मा पर लगा था। वही पत्नी जो कैंसर होने से पहले उनके मन में लालसा और आकर्षण के ज्वार पैदा करती थी, जिसका रुतबा था, पढ़ी-लिखी थी, आज उसे ही एक छाती न होने पर व्यर्थ कह कर कूड़े में फेंक दिया गया है।

उसे शरद के इस व्यवहार पर विश्वास नहीं हुआ। सोचने लगी ऐसा तो वह कभी न था। उसे शरद के व्यक्तित्व में से कोई शख़्स अन्दर-बाहर होता नज़र आ रहा था। उसकी ''माँ'' जिसका आतंक, होल्ड और कंट्रोल घर के सभी सदस्यों पर था। विशेष रूप से शरद पर। उसकी माँ जितनी भी ग़लत बात करे वह चुप ही रहता और उसकी माँ उसकी चुप्पी का अर्थ अपने ही हक में ले लेती। शरद यह नहीं जानता कि मौखिक शब्दों की भी ज़िम्मेदारी होती है। उस दिन भी वही हुआ... वही चुप्पी..... अपमान बोध की चुभन... विधि के मन.... आत्मा को बींधे जा रही थी। अपने जीवन साथी के प्रति उसके मन में विरक्ति पैदा हो गई थी... घृणा जम गई थी, किंतु यही सोच कर उसके मन को संयमित रखा और समझाया कि जीवन समय से आगे निकलने का नाम है न कि ठहरी पहाड़ी। बेशक विधि का जीवन की सुन्दरता और अच्छाई से भरोसा उठ गया था, फिर भी वह न रोई... न गिड़गिड़ाई.... न ही टूटी। सभी संभावनाओं के बावजूद उसकी चेतना, आत्मस्वाभिमान धीरे-धीरे अपना स्थान ग्रहण करने लगे, जो अस्वीकरण की भावना से कहीं दब सा गया था। घर वाले उस पर तलाक लेने का दबाव डालने लगे। पल भर को उसके मन में आया भी कि वह तलाक न दे कर उम्र भर उसे लटकाती रहे..... फिर सोचा- 'ऐसा करने से उसमें और मुझमें अन्तर ही क्या रह जाएगा। बदले की भावना से ठहरा पानी बन कर रह जाऊँ। ज़िंदगी आगे बढ़ने का नाम है.... और उसे तो आगे बढ़ना है नदी की भाँति।'

बेटे का शोक मनाने के बाद वह बाहर आने-जाने लगी। अपने जीवन को समेटने का प्रयास करने लगी। प्रयास कभी खाली नहीं जाता, शीघ्र ही उसे दिल्ली के नामी कॉलेज में प्रोफ़ेसर की नौकरी मिल गई। अपने क्षेत्र में पारंगत होने के कारण सभी सहकर्मियों में वह बहुत लोकप्रिय हो गई।

जवान, लम्बी पतली खूबसूरत विधि जहाँ से गुज़रती लोगों की गंदी नज़रों से बच न पाती। औरत जब सुन्दर, प्रतिभाशाली और अकेली हो तो हर पुरुष उसे अपनी धरोहर समझने लगता है। लोगों की ऐसी सोच से वह तंग आ चुकी थी। एक दिन उसके भीतर से आवाज़ आई- 'विधि.... तुम अगर अपनी ढाल नहीं बनोगी तो समाज के भेड़िये तुम्हारा दिल और शरीर दोनों नोच डालेंगे। अकेलेपन की लम्बी गुफा का कोई छोर नहीं है। और देर मत करो।' इस बात को ध्यान में रखते हुए वह अपने भाइयों की बात मानने को तैयार हो गई, जो उस पर कई वर्षों से दूसरी शादी का दबाव डाल रहे थे। एक दो जगह रिश्ते की बात भी चलाई उसके भाइयों ने, किंतु कहीं बड़े बच्चों के स्वार्थ के कारण या फिर एक छाती न होने के कारण बात कहीं बन न पाई। लोगों की ऐसी मनोवृत्ति को देख कर उसकी बड़ी बहन ने कुछ समय के लिए उसे लन्दन बुला लिया। लन्दन से लौटते वक़्त उसकी मुलाकत उसके साथ बैठे जॉन से हुई। बातों-बातों में उसने बताया कि रिटायरमैन्ट के बाद वह भारत घूमने जा रहा है, जहाँ उसका बालपन गुज़रा था। उसके पिता ब्रिटिश आर्मी में थे। दस वर्ष पहले उसकी पत्नी का देहान्त हो गया था। तीनों बच्चे शादी-शुदा हैं। अब उसके पास समय ही समय है। भारत से उसका आत्मीय संबंध है। मरने से पहले वह अपना जन्म स्थान देखना चाहता है, यह उसकी हार्दिक इच्छा है। बातों-बातों में आठ घंटे का सफ़र न जाने कैसे बीत गया। एक दूसरे से विदा लेने से पहले दोनों ने अपना-अपना पता और टेलीफ़ोन नम्बर का आदान-प्रदान किया।

''विधि, मैं भारत घूमना चाहता हूँ, अगर किसी गाइड का प्रबन्ध हो जाए तो आभारी होऊँगा।'' जॉन ने निवेदन से कहा।

''भाइयों से पूछ कर फ़ोन कर दूँगी।'' विधि से आश्वासन देते हुए कहा। दूसरे दिन अचानक जॉन सीधे विधि के घर पहुँच गए। छह फुट लम्बी देह, कायदे से पहनी गई विदेशी वेशभूषा, काला ब्लेज़र विधि ने भाइयों से उसका परिचय कराते हुए कहा.....

''भैया... यह हैं जॉन, जिन्हें गाइड की ज़रूरत है।''

''गाइड....? नहीं.... गाइड तो कोई नहीं है ध्यान में....।''

''विधि.... तुम क्यों नहीं चल पड़ती....?'' जॉन ने सुझाव देते हुए कहा। प्रश्न सोचने वाला था, विधि सोच में पड़ गई। इतने में छोटा भाई नवीन बोला, ''हाँ....हाँ.... हर्ज ही क्या है... वैसे भी रिटायर्ड है। बूढ़ा है... क्या कर लेगा ?''

''थैंक्स सन्नी.... यस.... यस... यस वंडरफुल आइडिया.... विधि से बुद्धिमान गाईड कहाँ मिल सकता है।'' जॉन ने उचक कर कहा।

छह सप्ताह दक्षिण के सभी मंदिरों के दर्शनों के पश्चात् दोनों दिल्ली पहुँचे। एक सप्ताह पश्चात् जॉन की वापसी थी। दोनों की अक्सर फ़ोन या टैक्स्ट पर बात हो जाती। अगर किसी कारणवश विधि जॉन को फ़ोन न कर पाती, तो वह अधीर हो उठता। वह विधि को चाहने लगा था। उसकी बहुमुखी प्रतिभा पर जॉन मर मिटा था। विधि गुणवान, स्वाभिमानी, साहसी और खरा सोना थी।

इधर विधि जॉन के रंगीले, सजीले, ज़िंदादिल व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुई पर उसकी उम्र का सोच कर चुप हो जाती। जॉन पैंसठ पार कर चुका था और विधि ने अभी तीस ही पूरे किए थे। लन्दन लौटने से पहले एक दिन अचानक जॉन ने खाने के पश्चात् सैर करते वक्त पूरे बाज़ार में विधि को रोक कर अपने मन की बात कह डाली- ''विधि, जब से तुम्हें मिला हूँ मेरा चैन खो गया है, न जाने तुम में ऐसी कौन सी मोहिनी शाक्ति है कि मैं इस उम्र में बरबरा तुम्हारी और खिंचा आया हूँ...'' उसने वहीं घुटनों के बल बैठ कर प्रस्ताव रखते हुए कहा- ''विधि.... क्या तुम मुझसे शादी करोगी...?''

विधि स्तब्ध निःशब्द सी रह गई। वह तो उसने पहले सोचा भी न था। उसने एक ही साँस में कह दिया, ''नहीं....नहीं.... वह नहीं हो सकता। हम दोनों एक दूसरे के बारे में जानते ही कितना.....? तुम जानते भी हो.... क्या कह रहे हो...? मैं... मैं किसी को भी संपूर्ण वैवाहिक सुख नहीं दे सकती।'' इतना कह कर वह चुप हो गई, उसकी आँखों से टप-टप आँसू बहने लगे।

जॉन कहाँ पीछे हटने वाला था। बार-बार पूछता ही रहा, ''क्या बात है?'' हारकर विधि ने एक ही साँस में कह दिया- ''कैंसर के कारण मेरा एक वक्ष स्थल नहीं है... और तुम उम्र में मेरे पिता के बराबर हो...।''

''ब...स... इतनी सी बात है मेरी जान। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। तुम्हारे संग जीवन बिताना चाहता हूँ... मैंने अपनी प्यारी पत्नी को तो कैंसर के कारण छोड़ा नहीं। अगर आज वह मेरे साथ नहीं है.... वह भगवान् की मर्ज़ी है....।''

विधि चुप थी। सोच में थी कि- ''जो ख़याल हमें छू कर भी नहीं गुज़रता, वो पल में सामने आ जाता है।''

''कोई जल्दी नहीं है.... यू टेक योर टाइम...।'' जॉन ने परिस्थिति को भाँपते हुए कहा।

एक सप्ताह पश्चात् जॉन तो चला गया किंतु उसके दुर्लभ प्रश्न ने विधि को दुविधा में डाल दिया। मन में उठते भाँति-भाँति के प्रश्नों से जूझती रही, जिनका उसके पास उत्तर न था। कभी कागज़ पर लकीरें खींच कर काटने लगती...कभी गुलदस्ते से फूल ले कर उसी पंखुड़ियों को तोड़-तोड़ सवालों के उत्तर ढूँढ़ती तो ... और कभी खुद से प्रश्न करने लगती- 'कब तक रहोगी भाई-भाभियों की छत्र छाया में....? क्या समाज तुम्हें चैन से जीने देगा? तलाकशुदा की तख्ती के साथ...? कौन होगा तेरे दुख सुख का साथी...? क्या होगा तेरा अस्तित्व...? अगर मान भी जाती है तो क्या उत्तर देगी, जब लोग पूछेंगे.... इतने बूढ़े से शादी की है कोई और नहीं मिला क्या...?' इन्हीं उलझनों में समय निकलता गया। समय थोड़े ही ठहर पाया है किसी के लिए...?

जॉन को गए करीब एक वर्ष बीत गया। दोनों की अक्सर फ़ोन पर, स्काईप पर बात हो जाती थी एक दोस्त की तरह।

कॉलेज में भी विधि सदा खोई-खोई रहती। एक दिन उसने अपनी सहेली रेणु से जॉन की बात की.. ''विधि, बात तो गंभीर है किंतु ग़ौर करने को है। भारतीय पुरुषों की प्रवृत्ति तो तू जान ही चुकी है। अगर यहाँ कोई शादी को तैयार भी हो गया तो उम्र भर उसके एहसान के नीचे दबी रहेगी... जॉन तुझे मन से चाहता है। उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया है... अपना ले उसे... हटा दे जीवन से यह तलाकशुदा की तख्ती और आगे बढ़... खुशियों ने तुझे आमंत्रण दिया है... ठुकरा मत... औरत को भी तो हक़ है तकदीर बदलने का। बदल दे अपने जीवन की दिशा और दशा...।'' रेणु ने उसे समझाते हुए कहो। ''धर्म, सोच, संस्कार, सभ्यता कुछ भी तो नहीं है एक जैसा हमारा.... ऊपर से उसकी उम्र.... फिर इतनी दूर....?''

''प्रेम.... उम्र, धर्म, भाषा, रंग और जाति सभी दीवारों को लाँघने की शक्ति रखता है मेरी जान.... प्यार में दूरियाँ भी नज़दीकियाँ बन जाती है। देर मत कर....।''

''किंतु मैंने तो उसे 'ना' कर दी थी... अब किस मुँह से....?''

''वह तू मुझ पर छोड़ दे.... उसका ई-मेल का पता दे मुझे।'' रेणु ने शरारत से कहा।

रेणु से मन की बात करके विधि की शंकाओं और द्वंद्वों की पुष्टि हो गई। उसे भविष्य झिलमिलाता हुआ दिखाई देने लगा। उसका मन इच्छाओं के उड़न खटोले पर बैठ कर बादलों के संग उड़ने लगा।

''चल उठ... लेक्चर का समय हो गया है। बड़ी जल्दी खो गई जॉन के ख़यालों में........।'' रेणु ने छेड़ते हुए कहा।

अगले ही दिन रेणु ने जॉन को ई-मेल डाला।

डियर जॉन

विधि का दोस्त हूँ। विधि ने आपके शादी के प्रस्ताव के बारे में बताया। क्या वह प्रस्ताव अभी तक मान्य है कि नहीं...? अगर मान्य है तो आप उस प्रस्ताव को विधि के बड़े भाई के सामने रखिए तो ठीक रहेगा। मैं, विधि की ही इजाज़त से यह पत्र लिख रही हूँ।

धन्यवाद

विधि की सहेली

रेणु चोपड़ा

ईमेल देखते ही जॉन खुशी से पागल हो गया। तुरन्त ही फ़्लाइट ले कर वह दिल्ली पहुँचा। उसने विधि के बड़े भाई को होटल में बुलाकर वह ईमेल दिखाते हुए विधि का हाथ माँगा।

''मैं तुम्हें घर में सबसे बात करके फ़ोन करूँगा।'' विधि के भाई ने कहा।

शाम को विधि जब घर पहुँची, बैठक में सारा परिवार उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। अजय ने जॉन द्वारा भेजा प्रस्ताव सामने रखा। सभी हैरान थे... छोटा भाई सन्नी तैश में आकर बोला, ''इतने बड़े से... दिमाग़ खराब हो गया है, विधि की उम्र के तो उसके बच्चे होंगे... अंग्रेज़ों का कोई भरोसा नहीं....।'' सभी घर वाले इस बात से हक्का-बक्का थे।

''तुमने क्या सोचा है विधि?'' बड़े भाई ने पूछा।

''मुझे कोई एतराज़ नहीं...।'' विधि ने कहा।

''होश में तो हो दीदी... क्या सचमुच सठिए से शादी करेगी...?'' सन्नी भुनभुनाते हुए बोला।

अजय ने जॉन को घर बुलाया और कहा... ''शादी तय करने से पहले हमारी कुछ शर्त है... शादी हिन्दू रीति रिवाज़ों से होगी... उसके लिए तुम्हें हिन्दू बनना होगा.... हिन्दू नाम रखना होगा... विवाह के तुरंत बाद विधि को साथ ले जाना होगा।''

उसे सब शर्त मंजूर थी। वह उत्तेजना में... ''आई विल..... आई विल'' कहता नाचने लगा। पुरुष चहेती स्त्री को पाने का हर संभव प्रयास करता है, उसमें साम, दण्ड, भेद, भाव सब जायज़ है।

अच्छा सा मुहूर्त निकाल कर दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ। किशोरावस्था की तरह विधि के हृदय की डाली पर उमंगों के फूल अंकुरित होने लगे।

विवाह के एक महीने पश्चात् दोनों अपने घर लन्दन पहुँचे। अंग्रेज़ी रिवाज के अनुसार जॉन ने विधि को गोद में उठा कर घर की दहलीज़ पार की और बड़े प्यार से बोला- ''विधि, मैं तुम्हारा तुम्हारे घर में स्वागत करता हूँ....।'' उसकी आत्मीयता देख विधि की आँखों से आँसू बहने लगे। अंदर घुसते ही उसने देखा अकेले रहते हुए भी जॉन ने घर बड़ी तरतीब और अच्छे से सजा रखा था। घर में सभी सुविधाएँ थीं.... जैसे कपड़े धोने की मशीन, ड्रायर.... डिश वाशर (बर्तन धोने की मशीन) स्टोव और ओवन। कॉटेज के पीछे एक छोटा सा गार्डन था जो जॉन का प्राइड एण्ड जॉए था।

पहली ही रात को जॉन ने विधि को अपने प्यार का अनमोल उपहार देते हुए कहा- ''विधि, मैं तुम्हें क्रूर संसार के कोलाहल से दूर, दुनिया के कटाक्षों से हटा कर अपने हृदय में रखने के लिए हूँ। तुमको मिलने के बाद तुम्हारी मुस्कान और चिपरिचित अदा ही तो मुझे चुम्बक की तरह बार-बार खींचती रही है और मरते दम तक खींचती रहेगी। मैं तुम्हें इतना प्यार दूँगा कि तुम अपने अतीत को भूल जाओगी।'' और जॉन ने उसे भीग कर गले से लगा लिया। ऐसे प्रेम का एहसास उसे आज पहली बार हुआ था। धीरे-धीरे वह जान पाई कि जॉन केवल गोरा-चिट्टा, ऊँचे क़द का ही नहीं, वह रोमांटिक, ज़िदादिल और मस्त इंसान भी है जो बात-बात में किसी को भी अपना बनाने का हुनर जानता है। उसका हृदय जीवन की आकांक्षाओं से धड़क उठा। जॉन ने उसे इतना मान और प्यार दिया कि उसकी सभी शंकाओं की पुष्टि हो गई। वह उसे मन से चाहने लगी थी। दोनों बेहद खुश थे। वीक एंड में जॉन के तीनों बच्चों ने खुली बाँहों से विधि का स्वागत किया और अपने पिता के विवाह पर एक भव्य पार्टी दी।

विधि अपने फ़ैसले से प्रसन्न थी। अब उसका घर-परिवार था। असीम प्यार करने वाला पति। जॉन ने घर की बागडोर उसी के हाथ में थमा दी। उसे प्यार करना सिखाया। उसका आत्मविश्वास जगाया। उसे कॉलेज में पोस्ट ग्रेजुएट भी करवा दिया; क्योंकि भीतर से वह जानता था कि उसके जाने के बाद विधि अपने समय का सदुपयोग कर सकेगी। बिना इंगलिश ट्रेनिंग के उसे कोई नौकरी नहीं मिलने वाली थी।

गर्मियों का मौसम था। चारों ओर सतरंगी फूल लहलहा रहे थे। बाहर बच्चे खेल रहे थे। दोपहर के खाने के पश्चात् दोनों कुर्सी बाहर डाल कर धूप का आनन्द लेने लगे। बच्चों को देखते ही विधि की ममता उमड़ने लगी। जॉन की पैनी नज़रों से यह बात छिपी नहीं। उसने पूछ ही लिया, ''विधि हमारा बच्चा चाहिए .... मैंने पता कर लिया है। हो सकता है, पूरे नौ महीने डॉक्टर की निगरानी में रह कर। मैं तैयार हूँ, हमारे पूर्व पश्चिम के इन्फ़्यूज़न के लिए।''

''नहीं... नहीं... हमारे हैं तो सही ..... वो तीन और उनके बच्चे। मैंने तो जीवन के सभी अनुभवों को भोगा है। माँ बन कर भी अब नानी-दादी होने का सुख भोग रही हूँ।'' विधि ने हँसते हुए कहा।

''मैं तो समझता था तुम्हें मेरी निशानी चाहिए...।'' उसने मुस्कराते हुए कहा।

''ठीक है, अगर बच्चा नहीं तो एक सुझाव दे सकता हूँ। बच्चों से कहेंगे हमारे बाद मेरे नाम का एक इंगलिश रोज़ (लाल गुलाब) का फूल और तुम्हारे नाम का (पीला गुलाब) इंडियन समर लगा दें, ताकि मरने के बाद भी हम एक दूसरे को देखते रहें।'' इतना कह कर जॉन ने प्यार से उसके गालों पर एक चुम्बन रख दिया।

विधि के होठों पर मुस्कुराहट, आँखों से खुशी के आँसू बह निकले और वह प्यार की पूरी कोशिशें लिए जॉन के आगोश में लिपट गई। जॉन उसकी छोटी से छोटी हर ज़रूरत का ध्यान रखता। धीरे-धीरे उसने विधि के पूरे जीवन को अपने प्यार के आँचल से ढँक लिया। जहाँ उस पर कठोर धूप चमकती, वहाँ वह नीले आकाश की परछाईं बन कर छा जाता। सामाजिक बैठकों में उसे अदब और शिष्टाचार से संबोधित करता। उसे जी.... जी करते उसकी ज़ुबान न थकती। कुछ ही वर्षों में जॉन ने उसे आधी दुनिया की सैर करा दी थी। यहाँ तक कि मन्दिर, गुरुद्वारे, आर्य समाज सभी धार्मिक स्थानों पर भी वह उसे खुशी-खुशी ले जाता। अब विधि के जीवन में सुख ही सुख थे।

समय हँसी-खुशी बीतता गया। इधर कई महीनों से जॉन थोड़ा सुस्त था। विधि चिंतित थी कि कहाँ गई इसकी चंचलता, चपलता! यह कभी टिक कर न बैठने वाला चुपचाप कैसे बैठा रह सकता है ? डॉक्टर के पास जाने को कहो तो कह देता...''मेरा शरीर है.... मैं जानता हूँ क्या करना है!'' भीतर से खुद भी चिंतित था। हार कर विधि से चोरी डॉक्टर के पास गया। अनेकों टेस्ट हुए। डॉक्टर ने जो बताया उसका मन उसे मानने को तैयार न था। वह जीना चाहता था। उसे विधि की चिंता होने लगी। उसने डॉक्टर से निवेदन किया कि वह नहीं चाहता कि उसकी यह बीमारी उसकी और उसकी पत्नी की खुशी के आड़े आए। जानता हूँ समय कम है। अब पत्नी के लिए वह सब कुछ करना चाहता है जो अभी तक नहीं कर पाया। समय आने पर वह खुद उसे बता देगा।

एक दिन अचानक वर्ल्डक्रूज़ के टिकट विधि के हाथ में थमाते हुए बोला- ''यह लो हमारी शादी की दसवीं साल-गिरह का तोहफा।'' उसकी जी हुजूरी ही नहीं ख़त्म होती थी।

वर्ल्डक्रूज़ से लौटने के पश्चात् दोनों ने शादी की दसवीं वर्ष-गाँठ बड़ी धूम-धाम से मनाई। घर के रजिस्ट्री के कागज़ और सभी एफडीज़ उसने विधि के नाम कर उसे तोहफे में दी। उस रात वह बहुत अशांत था। उसे बार-बार उल्टियाँ और चक्कर आते रहे। उसे अस्पताल ले जाया गया। जॉन की दशा दिन व दिन बिगड़ती गई। कैंसर पूरे शरीर में फैल चुका था। अब कुछ ही समय की बात थी। कैंसर शब्द सुन कर सभी भौंचक्के से रह गए। डॉक्टर ने बताया- ''तुम्हारे डैड जाने से पहले तुम्हारी माँ को उम्र भर की खुशियाँ देना चाहते थे।''

बच्चे तो घर आ गए पर विधि नाराज़ सी बैठी रही। जॉन ने उसका हाथ पकड़ कर उसे प्यार से समझाया- ''जो समय मेरे पास रह गया था मैं उसे बरबाद नहीं करना चाहता था। भोगना चाहता था तुम्हारे साथ। तुमने ही तो मुझे जीना सिखाया है। अब मैं जीवन से रिश्ता तोड़ सकता हूँ। जाना तो एक दिन सभी को है।''

कुछ ही दिनों पश्चात् अपनी शादी की ग्यारहवीं वर्षगाँठ से पहले ही वह चल बसा।

फ्यूनरल के बाद जॉन की इच्छा के अनुसार उसकी अस्थियाँ उसके गार्डन में बिखेर दी गईं। उसके बेटे ने एक इंगलिश रोज़ और एक इंडियन समर साथ-साथ गार्डन में लगा दिए। इस सदमे को सहना कठिन था। विधि को लगा मानों किसी ने उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए हों। वह फिर अकेली रह गई।

एक दिन उसके भीतर से एक आवाज़ सिहर उठी- ''उठ विधि.... सँभाल खुद को, तेरे पास उसका प्यार है, स्मृतियाँ हैं। वह तुझे क्वॉन्टिटी ना सही क्वॉलिटी ऑफ़ लाइफ तो दे कर गया है।''

धीरे-धीरे वह सँभलने लगी। जॉन के बच्चों के सहयोग और प्यार ने उसे फिर खड़ा कर दिया। कॉलेज में उसे नौकरी मिल गई। बाकी समय गार्डन की देख-भाल

करती। इंगलिश रोज़ और इडियन समर की छँटाई करने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ती। उसके लिए वह माली को बुला लेती। गार्डन जॉन की जान थी। प्यार था। निशानी थी। एक दिन भी न ऐसा जाता जब वह अपने पौधों को न सहलाती। अक्सर उनसे बातें करती। बर्फ हो या कोहरा पड़े, कड़कती सर्दी में वह अपने फ्रेंच डोर के भीतर से ही पौधों को निहराती जो जॉन ने लगाए थे। उदासी में इंगलिश रोज़ से शिकवे और शिकायतें भी करती... ''देखो तो अपने लगाए परिवार में लहलहा रहे हो और मैं....? नहीं नहीं शिकायत नहीं कर रही.... मुझे याद है जिस दिन आप मुझे घर लाए थे आपने कहा था वह मेरा परिवार है, मरने के बाद भी इससे मुझे अलग मत करना। मेरी राख मेरे पौधों में बिखेर देना।''

यही सोचते-सोचते अँधेरा छाने लगा। उसने घड़ी देखी, अभी शाम के पाँच ही बजे थे। मरियल सी धूप भी चोरी-चोरी दीवारों में खिसकती जा रही थी। वह जानती थी यह गर्मियों के जाने और पतझड़ के आने का संदेसा था। वह आँख मूँद कर बिछे रंग-बिरंगे पत्तों की मुरमुराहट का आनन्द ले रही थी।

अचानक तेज़ हवा के वेग से पत्ते उड़ने लगे। हवा के झोंके से एक सूखा पत्ता उलटता-पलटता उसके आँचल में आ अटका। पल भर को उसे लगा कोई छू कर कह रहा हो.... ''उदास क्यों होती हो... मैं यही हूँ..... तुम्हारे चारों ओर,..... देखो वही हूँ, जहाँ फूल खिलते है..... क्यों खिलते है, यह मैं यही जानता.... बस इतना ज़रूर जानता हूँ.... फूल खिलता है, झर जाता है क्यों? यह कोई नहीं जानता। बस इतना जानता हूँ इंगलिश रोज़ जिसके लिए खिलता है इसी के लिए झर जाता है। खिले फूल की सार्थकता और झरे फूल की व्यथा एक को ही अर्पित है...।''

उस दिन वह झरते फूलों को तब तक निहारती रही, जब तक अँधेरे के कारण उसे दिखाई देना बंद नहीं हो गया। पल भर को उसे लगा मानों जॉन पल्लू पकड़ कर कह रहा हो.. ''मी टू....तुम्हारी शरारत की आदत अभी गई नहीं इंगलिश रोज़....'' उसने मुस्कुराते हुए कहा।

***

लघु कथा

अपने-अपने रास्ते

सुरेश सौरभ

बहुत देर से टीवी पर कार्टून देख रहे, ऊधम काट रहे, अपने बेटे राहुल और बेटी रीमा को मैंने डाँटकर कहा- 'जाओ कुछ पढ़ो जाकर, लाकडॉउन में सरकार ने तुम्हारे स्कूल बंद कराए हैं, घर की पढ़ाई नहीं।'

दोनों ने बस्ता उठाया, पढ़ने वाले कमरे में चले गए।

मैं बरामदे में बैठा अख़बार बाँच रहा था। तभी राहुल मेरे पास आया और बेहद असमंजस में बोला- 'पापा फूट डालो राज करो का मतलब क्या होता है? बहुत देर से इसका मतलब खोज-खोज कर परेशान हो रहा हूँ, पर किताब में मिल नहीं रहा।'

मैंने कहा- 'आओ मेरे साथ अभी इसका मतलब बताता हूँ।'

उसका हाथ पकड़ कर उसी टीवी वाले कमरे में ले गया, जहाँ थोड़ी देर पहले वे ऊधम काट रहे थे। मैंने टीवी आन किया। सबसे तेज़ चलने वाले समाचार चैनलों में से एक चैनल को खोल दिया।

'इसे देखो, समझ जाओगे फूट डालो राज करो का मतलब।'

उस चैनल पर एक डिबेट के कार्यक्रम में, किसी मुद्दे को लेकर हिन्दू-मुस्लिम के मसले पर बहुत ज़ोरदार बहस छिड़ी थी। मैं वहाँ से बाहर आकर बरामदे में पुनः अख़बार पढ़ने लगा।

करीब आध-पौन घंटे बाद राहुल मेरे पास दबे-दबे कदमों से आया और बड़ी गंभीरता से बोला-'समझ गया पापा।'

मैं अख़बार में डूबा था, अचानक उसके सवाल, पर छूटते ही मुँह से निकल पड़ा- 'क्या..क्या क्या.. समझे बेटा।'

'यही कि हम ग़रीब क्यों है?'

'क्या मतलब समझा नहीं!'

'मतलब यही,कि अगर आप ने भी फूट डालो राज करो वाली नीति अपनाई होती, तो आज आप भी तमाम पैसों वाले नेता होते और मुझे सरकारी स्कूल में न पढ़ा कर, बढ़िया वाले प्राइवेट स्कूल वाले में पढ़ा रहे होते।'

मैं अपने बेटे का मुँह, हैरत से ताक रहा था, सोच रहा था, जिस बात को एक बालक आधे-पौन घंटे में समझ गया, उस बात को हमारे देश के पढ़े-लिखे और जागरूक लोग पता नहीं कब समझ पाएँगे।

***

सुरेश सौरभ, निर्मल नगर, लखीमपुर, खीरी, 262701, उत्तरप्रदेश
मोबाइल- 7376236066, ईमेल- sureshsaurabhlmp@gmail.com

मुझे नहीं मालूम

गोविंद उपाध्याय

गोविंद उपाध्याय
FT-211, अरमापुर इस्टेट, कानपुर
-208009, उत्तरप्रदेश
मोबाइल- 09651670106
ईमेल-govindupadhya478@gmail.com

मुझे नहीं मालूम था कि वह अचानक आ जाएगा। उसकी आँखें मुझे सशंकित सी देख रही थी। उसे यही लग रहा था कि मैं उस पर ग़ुस्सा करूँगा और धक्के मारकर बाहर निकाल दूँगा। वैसे उसकी आशंका ग़लत नहीं थी। यदि कुछ वर्ष पहले मिलता तो शायद मैं ऐसा ही करता। उसे गालियाँ देता और घर में तो कदापि नहीं घुसने देता। यातनाओं की कोई सीमा नहीं होती है। लेकिन शरीर को उसके सहन करने की सीमा होती है। चाहे वह मानसिक हो या शारीरिक। एक बिंदु पर आकर सब बिखरने लगता है। इतना बिखर जाता है कि उसे वापस समेटना मुश्किल हो जाता है। शायद मेरे साथ भी ऐसा ही होता। लेकिन तब साक्षी मेरे जीवन में संजीवनी जैसे आ गई और मैं बिखरने से बच गया।

दस साल बीत गए थे। वह अब पैंसठ पार कर चुका था। अचानक उसके चेहरे पर ढेर सारी झुर्रियाँ उग आई थी। दस साल में ही दयनीयता की वह सारी हदें पार कर चुका था। वह सोफे पर आँख बंद किए हुए बैठा था। कि मैं दस साल पहले दोनों के बीच की खाई को पार करके शुरूआत करूँ। साक्षी तभी कमरे में आ गई।

कुछ तो बोलना था,''साक्षी, रजनीश बवेजा ...। मेरे एक्स बॉस ...। जब मैं ब्यॉलर बनाने वाली कंपनी में था।''

साक्षी चौंकी...। उसने साक्षी को सिर उठाकर देखा और मुस्कराने का प्रयास किया। साक्षी ने पूरी शालीनता से अपने दोनों हाथों को जोड़कर अभिवादन किया। उसने सिर हिलाया,''कैसे हो बच्चे..?''

मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि वह किससे पूछ रहा है ? मुझसे या साक्षी से । तभी साक्षी ने सिर हिलाते हुए कहा,''ठीक हूँ अंकल...। आप कैसे है ?''

उत्तर में वह सिर्फ हँसने का प्रयास भर कर पाया। साक्षी किचन में चली गई। एक बार फिर हम शब्दविहीन होने लगे। मैंने खँखार कर गला साफ किया, ''मेरा पता कैसे मिला?''

वह बिना देखे ही बोला,''तुम्हारे दोस्त निभास घोष से...।''

फिर उसने अचानक सिर उठाकर मेरी तरफ देखा, ''सॉरी दीपेन...। मैं अपने को रोक नहीं सका। मैं एक कारखाने में आया था। आने-जाने का एअर टिकट और रहने के लिए बढ़िया होटल ...। दो दिन का फिफ्टीन थाउज़ेंड...। ऊपर से दवे साहब का रिक्वेस्ट था।''

अब वह केंचुल छोड़कर अपने पुराने फार्म में आ रहा था। धूर्त और लालची...। सिद्धार्थ

दवे उस कंपनी का एम डी था। जिस नौकरी को मैं एक दशक पहले छोड़ चुका था। शायद मैं ग़लत कह गया था। मुझसे जबरदस्ती रिज़ाइन कराया गया था। यही रजनीश बवेजा, सिद्धार्थ दवे के ऑफ़िस में बैठा था। दवे उसे घूरते हुए बोला था, ''तुम्हारा कृत्य अक्षम्य है। मैं चाहता तो तुम्हें पुलिस को भी दे सकता था और नौकरी से डिस्चार्ज कर सकता था। लेकिन शुक्र मनाओ कि बवेजा साहब के कहने पर ऐसा नहीं कर रहा हूँ। रिज़ाइन दो और जाओ... । अनुशासनहीनता की इस कंपनी में कोई जगह नहीं है।''

तभी साक्षी कमरे में आ गई। उसके हाथ में नाश्ते की ट्रे थी। उसके पीछे मेरा सात वर्षीय बेटा था। एक अजनबी को ड्राइंगरूम में बैठा देखकर हिचकिचाया और वापस जाने के लिए मुड़ा। मैंने उसे आवाज़ दी, ''तुषार, इधर आओ और ग्रांड पा को विश करो।''

साक्षी ने मेज़ पर प्लेटें लगा दिया। बवेजा साक्षी से बात कर रहा था,''बेटे, मैं आपसे पहली बार मिल रहा हूँ। तुम्हारे पति दीपेन मेरे साथ काम कर चुके हैं। आज तुम लोग को देखकर मन खुश हो गया।''

''शुक्रिया अंकल नाश्ता करिए।'' साक्षी हाथ जोड़ते हुए बोली। तुषार मेरे पास आकर बैठ गया था। उसके हाथ में रूबिक्स क्यूब था। वह उसमें व्यस्त हो गया। बवेजा मेरी तरफ देखते हुए बोला,''दीपेन! मैं पहले वाशरूम जाना चाहता हूँ।'' मैंने ड्राइंग रूम के दाहिने कोने की तरफ इशारा किया। वह उठा और उस तरफ चल दिए। साक्षी मेरे कान के पास फुसफुसाई,''यह वही है न.. ।''

मैंने 'हाँ' में सिर हिलाया। साक्षी के चेहरे पर असमंजस के भाव थे।

वह नाश्ते के समय भी बात करते रहे। ज़्यादा अपने दोनों डॉक्टर बेटों के बारे में... । सामने बैठे इस आदमी से मुझे बेहद घृणा थी। इस आदमी ने मुझे इस कदर उजाड़ा था कि अपने आप से घृणा होने लगी थी। मैं अवसाद से घिर गया था। इस अवसाद में ही मैं कई बार अपने जीवन को ही समाप्त करने के बारे में सोचने लगा था। तब शशि ने कहा था, ''भाई साहब प्यार करना गुनाह थोड़े ही है। आपने प्यार किया...आप उसे जीवन का सहयात्री बनाना चाहते थे। मैं मानती हूँ आप असफल हो गए। मान लें, आप जीवन के बुरे वक्त गुज़र रहे हैं। लेकिन कुछ भी अच्छा-बुरा करने से पहले, इस बात का ध्यान रखिएगा कि आपकी एक छोटी बहन है। जिसका इस दुनिया में आपके सिवा कोई नहीं है। और यह समाज भेड़ियों से भरा है।''

शशि का संकेत वह समझ रहा था। फिलहाल आर्थिक समस्या नहीं थी। पापा, हम दोनों के लिए ठीक-ठाक संपति छोड़ गए थे। छह वर्ष पहले गॉल ब्लैडर के कैंसर से उनकी मृत्यु हुई थी। यह अजीब संयोग था कि ठीक चार साल बाद अम्मा भी इसी बीमारी से चली गईं थी। बस हम दोनों भाई-बहन ही बचे थे। शशि मुझसे तीन साल छोटी थी।

अचानक किसी बात पर बवेजा के हँसने के स्वर से चौंका। वह साक्षी से बातों में उलझा था। बवेजा किसी को भी अपने शब्दों से प्रभावित कर सकता है। मैं खुद उससे प्रभावित था। यहाँ तक कि उसे बड़ा भाई मानने लगा था। उसकी पत्नी को हार्ट की समस्या थी। तब बड़ा लड़का दिल्ली में डॉक्टरी की पढ़ाई कर रहा था। उसका आख़िरी साल था। छोटा बेटा पूना के एक डेंटल कॉलेज में था। पहले तो मुझे भी नहीं मालूम था कि बवेजा इतना पैसा कहाँ से लाता है! कैसे अपने बेटों के महँगे शिक्षा का खर्च उठा रहा है ?

फिर बवेजा ने ही मुझे एक दिन बताया था, ''दीपेन, मेरे फादर-इन-ला का बरेली में बनारसी साड़ियों का शो रूम था। सिविल लाइंस में शानदार कोठी थी। मेरी पत्नी अरुणा उनकी इकलौती बेटी थी। वह सारी संपत्ति अरुणा को मिली। आज वही धन अब हमारे बच्चों के काम आ रहा है। मैं मिला था अरुणा से । वह चार या सवा चार फीट की साँवली सी गोल-मटोल औरत थी। उसके नितम्ब और स्तन दोनों ही शरीर के हिसाब से बड़े थे। जिन्होंने उसके शरीर के अनुपात को बिगाड़ दिया था। बवेजा, गोरा-चिट्टा, साढ़े पाँच फुट का भूरी आँखों वाला... एक आकर्षक व्यक्तित्व का मालिक था। दुर्भाग्य से उसके दोनों बेटे भी अपनी माँ की लंबाई और रंग पा गए थे। मुझे नहीं लगता कि दोनों बेटों में से कोई भी पाँच फीट से ज़्यादा होगा।

अरुणा को देखने के बाद यही लगता है कि बवेजा ने पैसे के लालच में उससे शादी की थी। बवेजा पैसे के लिए कुछ भी कर सकता था। मैकेनिकल इंजीनियरिंग में डिप्लोमा किया था। कई घाटों का पानी पीने के बाद, वह ब्वायलर कंपनी में उत्पादन अधिकारी के रूप में आया था। जहाँ नौकरी की तलाश में मैं भी पहुँच गया था। मेरा इंटरव्यू रजनीश बवेजा ने ही लिया था। मैं इंटरव्यू में सफल रहा। मुझे नौकरी मिल गई। मैं प्रोडक्शन शॉप का सुपरवाइज़र था। मुझे लेकर चार सुपरवाइज़र थे। तीनों मुझसे उम्र में बड़े थे। वे शादी-शुदा और घर गृहस्थी वाले थे। दो शिफ्ट में काम होता था, सात से चार। दूसरा शिफ़्ट बारह से नौ। इसमें एक घण्टे का लंच भी होता था।

मैं रजनीश बवेजा से बहुत प्रभावित था। वह आठ बजे आ जाता था। फिर आठ बजे तक वह शॉप में एक जगह से दूसरी जगह दौड़ता रहता था। उसका ऑफ़िस एअर कंडीशन था। जहाँ वह पूरे बारह घंटे में मात्र तीन घंटे ही बैठता होगा।

बवेजा भी मुझे बहुत पसंद करता था। मैं देखता कि वह कभी-कभी पूरा दिन बिना खाए-पीए ही निकाल देता। कभी कारखाने के कैंटीन से खाना मँगवाता। कभी कोई शॉप का वर्कर टिफिन शेयर करने के लिए आमंत्रित कर देता तो वह उसके साथ भी नि:संकोच बैठकर खा लेता।

फिर एक दिन बवेजा ही बड़े उदास मन से बताया,''दीपेन, क्या करूँ। पत्नी का स्वास्थ्य ऐसा है कि कुछ बना नहीं सकती। खाना बनाने वाली जब तक आती, मैं ऑफिस आ जाता हूँ। बस यार ऐसे ही ज़िंदगी चल रही हैं। तुम तो जानते ही हो, दोनों बेटे बाहर हैं। डॉक्टरी की पढ़ाई चल रही है। बहुत खर्चीली पढ़ाई है। सोचता हूँ, कुछ दिनों की ही बात है। जैसे ही उनकी पढ़ाई ख़त्म होगी। मैं बहुत बड़े बोझ से मुक्ति पा जाऊँगा।''

रजनीश बवेजा धीरे-धीरे मेरे करीब आता जा रहा था। मुझे उसमें अपने परिवार के बुज़ुर्ग जैसा एहसास होता। वह हमेशा आदर्श की बातें करता। जैसा घर के बड़े बुज़ुर्ग करते हैं। हम दोनों भाई-बहन को तब यही लगा था कि एक बार फिर हमारे

सिर पर हाथ रखने वाला कोई मिल गया है। शशि शुरू में बवेजा से चिढ़ती, ''भाई जी यह चापलूस टाइप का आदमी लगता है। एक घंटे में दस मिनट देश भक्ति की बातें करता है, उसके बाद पैसे का हिसाब-किताब शुरू कर देता है। और जब उससे फुर्सत पाता है, तो अपने बेटों की तारीफ़ शुरू कर देता। जैसे दुनिया में सिर्फ उसी ने बेटे पैदा किए हैं।''

मैं हँस दिया था, ''शशि, उसने इस धन को पाने के लिए बहुत बड़ी कुर्बानी दी है। फिर भी बेचारा उसका उपभोग कहाँ कर पाया है। फिर जिन बच्चों की तारीफ़ में उसकी जुबान नहीं थकती, उन्हें देखो तो और मायूसी होती है।''

बड़ा बेटा बवेजा की ही तरह होशियार था। उसने पहले प्रयास में मेडिकल प्रवेश परीक्षा पास कर लिया था। छोटा बेटा ज़रूर पढ़ने में औसत था। पिछले तीन वर्ष जब कोचिंग के बावजूद मेडिकल के प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो पाया तो बवेजा ने एक प्राइवेट डेंटल कॉलेज में उसका दाखिला करा दिया। असल में पैसे की ज़्यादा खपत छोटे डॉक्टर साहब पर ही था। बवेजा का जमा धन धीरे-धीरे कपूर जैसे उड़ने लगा था। जिसके कारण कभी-कभी विचलित भी दिखता था।

शशि कुछ विशेष बनाती तो हँसते हुए कहती,''भाई साहब, बवेजा अंकल के लिए भी रख देती हूँ। उन्हें भी खिला दीजिएगा। आपको बहुत पुण्य मिलेगा।'' शुरू में बवेजा के साथ लंच शेयर करता तो खाने के बाद गद्‌गद् हो जाता और कृतज्ञता दर्शाते हुए बोलता,''शशि बिटिया को मेरी तरफ से आशीष बोलना। एक लंबे समय बाद ऐसा अमृत भोजन मिला है।''

लेकिन समय के साथ उसके व्यवहार में ज़्यादा अपनत्व आने लगा था। अब वह बिना किसी हिचकिचाहट के बोलता, ''दीपेन आज मैं तुम्हारे साथ लंच करूँगा।''

तब मुझे बवेजा का व्यवहार अपनों जैसा लगता। मुझे अपना लंच उसके साथ शेयर करके खुशी ही होती थी। सब कुछ ठीक चल रहा था। बवेजा हम दोनों भाई-बहन के लिए आदरणीय था। जब कभी शशि से मिलता तो उसके पाक कला की तारीफ़ करता और शशि उसकी बात सुनकर खुश हो जाती थी। ज़ाहिर है अगले दिन के लंच में बवेजा की मनपसंद चीज़ होती।

सच तो यह था कि वह हम दोनों भाई-बहन की कमज़ोरी को जान गया था। जिसका वह बखूबी इस्तेमाल कर रहा था। यही तो बवेजा की ख़ासियत थी।

वह इस समय भी साक्षी को शब्दों की चासनी से भिगो रहा था और साक्षी मुग्ध भाव से उसकी बात सुन रही थी। जबकि साक्षी को मेरे और रजनीश बवेजा के बीच की कड़वाहट की सारी कहानी मालूम थी। यह भी मालूम है कि इसी कमीने आदमी के कारण उसका पति गहरे अवसाद में डूब गया था।

आज बवेजा को सामने बैठा देखकर बार-बार मैं अतीत में भटकने लगा था।

बवेजा का बड़ा बेटा डॉक्टर बन गया था। अब वह पी जी की तैयारी कर रहा था। बवेजा उसकी शादी के लिए लड़की देखने लगा था। अमेरिका और इंग्लैंड मे बसे बिरादरी के लोगों से संपर्क बनाने लगा। वह बेटे की शादी के लिए लंबी लड़की चाहता था, जिससे आगे के जनरेशन में सुधार हो सके। गज़ब का आत्मविश्वास था बवेजा के पास। लेकिन सफलता नहीं मिल पा रही थी।

बवेजा और हमारे बीच की दीवार रूबीना मुखर्जी थी। वह सात फीट दो इंच की दूध में मिली हल्दी के रंगों वाली औरत थी। उसके पति की सड़क दुर्घटना में मृत्यु हो चुकी थी। उसका एक पाँच वर्ष का बेटा था। हो सकता है, वह मुझसे दो-तीन वर्ष बड़ी हो। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें और कानों में शहद घोलती आवाज़....। आज इतने वर्षों बाद भी रूबीना के बारे में सोचते ही नशा छाने लगता है। इतना सब कुछ होने के बाद भी मैं कभी उससे घृणा नहीं कर पाया। मुझे लगता कि कुछ तो उसकी मजबूरी रही होगी। वैसे मैंने भी जो हरकत की थी, वह बहुत निंदनीय थी। लेकिन ऐसी परिस्थिति तक पहुँचाने वाला बवेजा ही था।

वह बवेजा के ऑफ़िस की देखभाल के लिए भरती हुई थी। ऑफ़िस अटेंडेंट थी वह। रूबीना मेरे पास आती। इतना कि मेरी नाक उसकी देह गंध महसूस कर सके और फिर उसकी आवाज़ मेरे कानों तक पहुँचती, ''दीपेन बाबू... बवेजा सर ने याद किया है। वह शॉप फ्लोर पर हैं ...।''

उसके शब्द मेरे कानों में पड़ता और मैं एक अजीब तरह के नशे में डूबने-उतरने लगता। तब मुझे नहीं मालूम था कि मैं धीरे-धीरे उसके प्यार में डूबता जा रहा हूँ। फुरसत के हर पल पर वह मेरे मस्तिष्क में न चाहते हुए उथल-पुथल मचाने चली आती।

सच तो यह था कि रूबीना मुखर्जी से मैं प्यार करने लगा था। मुझे वह बहादुर औरत लगती जो विषम परिस्थितियों में भी संघर्ष कर रही थी। रूबीना धीरे-धीरे मेरी भावनाओं को समझने लगी थी। वह बिंदी नहीं लगाती थी। उसके हाथों में शंख की एक-एक चूड़ी होती थी। वह हल्के रंग के कपड़े पहनती थी। उसके चेहरे पर एक अजीब तरह की उदासी स्थायी रूप से चिपकी रहती थी। मैंने ही कहा था, ''रूबीना .. ! यदि आप अन्यथा न लें तो एक बात कहूँ ?''

उसने मेरी तरफ सशंकित भाव से देखा। मैं कुछ हिचकिचाते हुए बोला, ''आप माथे पर बिंदी लगाया करें प्लीज़ ।''

उसके होंठो पर एक मुस्कराहट रेंग गई। उसने मेरी आँखों में झाँका। शायद वह कुछ खोज रही थी। मैं बहुत देर तक उससे आँखें नहीं मिला सका।

लेकिन मेरे लिए यह सुखद आश्चर्य था। दूसरे दिन से रूबीना मुखर्जी के माथे पर सुर्ख लाल रंग की पाँच मिलीमीटर के व्यास की बिंदी ने स्थायी रूप से अपना स्थान बना लिया था। इस छोटी सी बिंदी ने रूबीना के चेहरे की उदासी पोंछ दी थी। मुझे यह बिंदी रूबीना के अंदर अपने लिए अंकुरित होते हुए प्यार की मुहर भी लगती।

अब फुरसत के हर क्षण में रूबीना चुपके से मस्तिष्क के किसी कोने से निकलकर मेरी आँखों के सामने आ जाती और मैं कल्पना के झूले पर बैठकर पींगे लेनी शुरू कर देता। शशि मेरे अंदर आते इस परिवर्तन को बहुत जल्दी भाँप गई, ''क्या बात है भाई साहब, आजकल आप कुछ खोए-खोए से रहते हैं। सब ठीक तो है न।''

मैं उसे भला क्या जवाब देता ? कुछ भी तो स्पष्ट नहीं था। रूबीना क्या वह सब महसूस कर रही है, जैसा कि उसके लिए मैं करता हूँ ? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए मैं बेचैन था।

बवेजा पुराना घाघ था। रूबीना के प्रति मेरी आसक्ति को वह समझने लगा था। उसने आजकल लोगों से लंच शेयर करना भी बंद कर दिया था। बीच में एक-दो बार मैंने भी लंच का ऑफ़र दिया तो टाल गया, ''थैंक यू दीपेन। आप लो मैं मैनेज कर लूँगा।''

मुझे आश्चर्य हुआ कि बवेजा जैसे भुक्खड़ आदमी ने मना कैसे कर दिया! लेकिन यह बात मुझे थोड़ी देर में समझ में आई। बवेजा साहब के लिए लंच अब रूबीना मुखर्जी ला रही थी। मुझे किसी ने बताया नहीं था। बल्कि मैंने खुद अपनी आँखों से देखा था। शशि ने गाजर का हलवा भेजा था बवेजा के लिए। मैं जब लंच के लिए बैठा तो मुझे याद आया। डिब्बा लेकर बवेजा के ऑफ़िस पहुँचा तो चकित रह गया। बवेजा की मेज़ पर प्लेट रखी थी और रूबीना अपने लंच बाक्स से निकाल कर उसे सर्व कर रही थी। बवेजा मुझे देखकर झेंप गया। मेरे लिए यह अप्रत्याशित था। लेकिन बवेजा तुरंत सँभल गया, ''यार दीपेन तुम कब मैनर्स सिखोगे। ओवर ऑल मैं तुम्हारा बास हूँ। इजाज़त लेकर अंदर आना चाहिए था।''

बवेजा की भाषा में एक अजीब सी चिढ़ थी। रूबीना के चेहरे पर कोई भाव नहीं था। मैं 'सारी' कहकर फौरन निकल आया। आकर अपने ऑफ़िस में बैठा तो पता नहीं कैसे मेरे आँखों के कोर गीले हो गए। मेरी भूख मर चुकी थी। रूबीना एक झटके में मुझसे दूर हो गई थी। मैं उस दिन पहली बार नज़ाकत बार में अकेले बैठा था। बैठे-बैठे चार पैग पी गया था। नशा मुझ पर हावी होने लगा था। मैं आज लड़खड़ा रहा था। एक हारा हुआ आशिक़ था मैं। 'ये दुनिया अगर मिल जाय तो क्या है ?' जैसी हालत हो गई थी। शशि को मेरी इस दशा पर आश्चर्य हो रहा था। लेकिन उसने कुछ बोला नहीं। मैं बिस्तर पर गिरा और सो गया।

सुबह सिर काफी भारी था। शशि सिर्फ इतना ही बोली,''भाई साहब आप बिगड़ रहे हैं। मेरे कंट्रोल में नहीं रह गए हैं। अब आपको भाभी ही वश में रखेंगी। मेरी एक सहेली है, उसकी माँ की तरफ से आपके लिए प्रपोज़ल है। कहिए तो बात करें।''

मैंने उसकी तरफ घूरकर देखा। हालाँकि कल वाली घटना के लिए मेरे मन में ग्लानि थी। फिर भी मैं उसे खीझकर बोला, ''एक ही चीज़ बार-बार बतानी होगी। पहले तेरी शादी, उसके बाद।''

शॉप में घुसते ही रूबीना टकरा गई। मुझे देखकर मुस्कराई, ''गुड मार्निंग दीपेन बाबू आप कैसे हैं ? बवेजा साहब ने आपको याद किया है।''

उसकी मुस्कुराहट ने मेरे अंदर के सारे गिले-शिकवे धो डाले। मैं सैकेंड शिफ्ट में था। बवेजा के ऑफ़िस में घुसा तो वह अपनी पत्नी को किसी बात पर हड़का रहा था। उसका मूड ठीक नहीं था। मुझे देखते ही उसके माथे की त्योरी चढ़ गईं, ''क्यों दीपेन आजकल तुम्हारा दिमाग़ कहाँ रहता है। भगनानी वाले ब्यॉलर में कितने गेज की चद्दर लगवा रहे हो। अबे वह शुगर मिल का काम है। ऐसे ही करोगे तो कैसे चलेगा। दवे साहब काफी भड़के हुए हैं।''

मैं समझ गया था। रजनीश बवेजा रूबीना मुखर्जी के सामने मेरी औक़ात बता रहा था। ऐसे समय में रूबीना के चेहरे पर एक अजीब सी गंभीरता चिपकी रहती। यह समझ पाना मुश्किल था कि वह मेरे इस हालात को इंज्वाय कर रही है या फिर दुखी है।

मुझे रूबीना कभी बेवफ़ा लगती तो कभी बेचारी। मैं अजीब मानसिक दौर से गुज़र रहा था। खोया-खोया सा। मुझे लगता रूबीना मुझसे दूर होती जा रही है और बवेजा एक शिकारी की तरह उसका शिकार कर रहा था। मैं बवेजा के इस रूप को हज़म नहीं कर पा रहा था। उसे मैं अपना बड़ा भाई और गार्जीयन समझता था। वही व्यक्ति मेरी दुनिया उजाड़ रहा था। मैं रोज़ पीने लगा था। जिसका असर मेरे स्वास्थ पर भी पड़ने लगा था।

अब बवेजा हमेशा मुझे डाँटने के बहाने खोजा करता था। ख़ासतौर से जब रूबीना मेरे सामने होती। उस दिन बवेजा नहीं आया था। वह अपनी पत्नी को दिखाने डॉक्टर के पास गया था। मैं ऑफ़िस मे अकेला बैठा था। अचानक रूबीना मेरे सामने थी। मैं चौंका। कई दिनों बाद वह मेरे इतने नज़दीक थी। उसने मुझे देखकर मुस्कराने का प्रयास किया, ''कैसे हैं दीपेन बाबू ? आप बहुत पीने लगे हैं। यह अच्छी बात नहीं है। आप अच्छे आदमी हो। थोड़ा सेंटी भी। ज़माना जलेबी जैसा है। मीठा और घुमावदार, इतना घुमावदार कि उसके ओर-छोर का कोई पता नहीं है। जो उसके मिठास में फँसा, उसका जीवन उलझता चला जाता है। अपने को सँभालिए दीपेन।'' अचानक उसकी आवाज़ भारी हो गई थी।

मैं कुछ बोलता, उसके पहले वह मेरा हाथ थपथपाकर झटके से मुड़ी और बवेजा के केबिन में चली गई। यह रूबीना मुखर्जी का पहला स्पर्श था। सर्द और आत्मीय। रूबीना मुझे और उलझाकर गई थी। मैं काफी देर तक उसकी बातों का मतलब समझने का प्रयास करता रहा। लेकिन असफल रहा।

वह अब बड़ी सी बिंदी लगाने लगी। भौंहें तराशी हुई होती। होंठो पर हल्के रंगों की लिपिस्टिक होती। उसके कपड़े भी नए डिज़ाइन के होते। सचमुच रूबीना मुखर्जी बदल गई थी।

मैंने एक हफ्ते शराब की एक बूँद नहीं पी। लेकिन उस दिन केबिन में बवेजा की हरकत ने मुझे फिर से झकझोर दिया। बवेजा के हाथ में रूबीना का हाथ था और वह रूबीना के बहुत पास था। इतना पास कि मुझे देखते ही दोनों चौंक गए और छिटक कर दूर खड़े हो गए। मैं उलटे पाँव लौट आया। पीछे से रजनीश बवेजा आवाज़ देता रहा, ''अरे दीपेन सुनो..सुनो दीपेन।''

मुझे कुछ नहीं सुनना था। मैं कंपनी से बाहर आ गया। मेरी बाइक सर्विसिंग में थी। मैंने रिक्शा पकड़ा और नज़ाकत बार पहुँच गया। अभी बार खाली थी। मैंने वहाँ तीन पैग ही पिए। मेरी जेब में बहुत पैसा नहीं था। मैं पैदल ही कंपनी वाले रास्ते पर था। नशा मेरे दिमाग़ की सोचने की क्षमता को नष्ट कर चुका था। बस यही इच्छा थी कि रजनीश बवेजा मिल जाए और मैं उसे इतना मारूँ कि वह रूबीना मुखर्जी के साये से भी घबराने लगे। लेकिन होना तो कुछ और था। कंपनी की जनरल शिफ्ट छूटी थी। रूबीना आटो के इंतज़ार में खड़ी थी। मुझे देखकर चौंकी। फिर सामान्य होने का प्रयास किया, ''अरे दीपेन बाबू आप ।''

लेकिन मेरी हालत देखकर घबरा गई। वह आगे बढ़ना चाहती थी। मैंने उसका हाथ

पकड़ लिया, ''कहाँ जा रही हो रूबीना । मैं तुमसे बेपनाह मुहब्बत करता हूँ। मैं तुम्हें अपना जीवन साथी बनाना चाहता हूँ। बवेजा, सिर्फ तुम्हारा इस्तेमाल कर रहा है। वह घटिया आदमी है।''

रूबीना मेरा हाथ झिटक कर आगे बढ़ गई। मैं चिल्लाता रह गया, ''रूबीना प्लीज़ मेरी बात सुनो। मैं तुम्हारे बिना नहीं रह पाऊँगा। मैं मर जाऊँगा, रूबीना, रूबीना, रूबी।''

कंपनी से छूटे हुए लोग एक शराबी का ड्रामा देख रहे थे। रूबीना जा चुकी थी। मेरे आँखों से आँसू बह रहे थे। जिसे पोंछने का भी होश नहीं था मुझे में ।

कंपनी का एक गार्ड था सुशील थापा। मेरी इस दशा को देखकर, उसे दया आ गई और वह मुझे घर तक पहुँचा आया। शशि मेरी हालत को देखकर रुआँसी हो गई। उसे समझ नहीं आ रहा था कि उसका सीधा-सादा भाई शराबी कैसे होता जा रहा है ?

सुबह, जब मैं होश में आया तब पता चला कि मैं नशे में एक बहुत गंदा कांड कर चुका था। मेरी हिम्मत नहीं हो पा रही थी कि काम पर जाऊँ। दोपहर में रूबीना का फ़ोन आया था। फ़ोन शशि ने उठाया था। रूबीना ने उसे सारा क़िस्सा सुना दिया। शशि धैर्य से उसकी बात सुनती रही। फिर बहुत ही विनम्रता से बोली, ''आपको बहुत-बहुत आभार मैडम । भाई साहब को समझा दूँगी। दुबारा आपको शिकायत का मौका नहीं मिलेगा।''

मैं शशि की बात को ख़ामोशी से सुन रहा था। बात समाप्त होने के बाद, वह मुझे देखकर मुस्कराई, ''सॉरी भाई साहब वह मेरी भाभी नहीं बनना चाहती है। उसे भूल जाइए।''

मुझे शशि की आदत मालूम थी। वह मेरे तनाव को समझ रही थी। जिसे और बढ़ाना नहीं चाहती थी।

मैं सारे दिन तनाव में रहा और यह निश्चय कर लिया कि जीवन में फिर कभी शराब नहीं पीनी है। रूबीना की भी मेरे कारण बहुत रुसवाई हो गई। वह भी तनाव में होगी। बवेजा का क्या ? उसे मेरे और रूबीना जैसे तमाम मिल जाएँगे।

मैं सात दिन बाद काम पर लौटा। मुझे लग रहा था कि सभी आँखें मुझे विचित्र ढंग से घूर रही हैं। मैं रूबीना से माफी माँगना चाहता था। बवेजा के केबिन में वह अकेली थी। मुझे देखते ही चौंककर खड़ी हो गई, ''प्लीज़ आप जाइए। मुझे आपसे ऐसी उम्मीद नहीं थी। आपने मुझे यूँ ही बदनाम कर दिया। प्लीज़।'' उसकी आँखें डबडबा गई थीं। मैं कुछ बोल ही नहीं पाया। रूबीना से यह मेरी अंतिम मुलाकत थी।

आधे घंटे बाद ही मैं सिद्धार्थ दवे के ऑफ़िस में खड़ा था। रजनीश बवेजा तो खामोश रहा। हाँ! उसके शब्दों को दवे चबाचबा कर बोल रहा था।

सिद्धार्थ दवे के ऑफ़िस से लौटते हुए मेरे पैर लड़खड़ा रहे थे। एक हफ्ते पूर्व रूबीना के साथ किए गए दुर्व्यवहार का अपराध बोध और गहरा हो गया था। मेरा तो सब कुछ समाप्त गया था। नौकरी और प्यार। अब जीवन बोझ लगने लगा था। शशि न होती तो शायद मैंने इस जीवन को समाप्त कर दिया होता।

फिर मुझे नई नौकरी मिल गई और मैं मुंबई आ गया। शशि के लिए एक अच्छा सा रिश्ता मिल गया था। शशि को भी लड़का पसंद था। लेकिन उसने साफ-साफ शब्दों में कहा,''जब तक आप मेरे लिए भाभी नहीं लाते हैं। मैं आपको छोड़कर कहीं नहीं जाने वाली हूँ। मेरी बात मान लीजिए साक्षी बहुत सुलझी हुई लड़की है। आप जैसे भावुक आदमी को सँभाल लेगी और मैं निश्चिंत हो जाऊँगी।''

साक्षी मेरे जीवन में आ गई। वह सेंट्रल स्कूल में अध्यापिका थी। उसका ट्रांसफर भी मुंबई में हो गया। शशि ने सही कहा था। उसने मेरे अतीत के घावों को बहुत जल्दी भर दिया था। हम दोनों एक खुशहाल जीवन जी रहे थे। अचानक दस वर्ष बाद रजनीश बवेजा ने इस प्रकार आकर पुराने घावों को कुरेद दिया था। मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि उसे क्या जवाब दूँ। साक्षी सब कुछ जानते हुए भी उसकी बातों को इतना महत्त्व दे रही थी। बवेजा नाश्ता कर चुका था। काम वाली बाई बर्तन समेट कर जा चुकी थी। तुषार मेरी बगल में बैठा रूबिक्स क्यूब में उलझा हुआ था। बवेजा अपने अमेरिका में बसे बेटे की कहानी बता रहा था। सचमुच उसने अपने पाँच फुटे बड़े लड़के को लंबी एन आर आई लड़की से ब्याहने में सफल रहा था।

बवेजा अब जाना चाहता था। उसकी दो बजे की फ़्लाइट थी। साक्षी ने अनुरोध किया, ''अंकल लंच करके जाइएगा।''

''नहीं बेटे ब्रेक फास्ट ही बहुत तगड़ा हो गया है। लंच और डिनर अगली बार के लिए ड्यू रहा। घर देख तो लिया ही हूँ।'' बवेजा हँसते हुए उठने वाला ही था कि साक्षी अचानक गंभीर हो गई। हाथ जोड़ते हुए बोली, ''अंकल आप दुबारा यहाँ नहीं आइएगा। दीपेन के जीवन में आप की याद ही दुखद है। मैं नहीं चाहती कि उस घटना को यह पुन: याद करें। अगली बार आपको बैठने के लिए भी नहीं कहूँगी, नमस्ते।''

साक्षी, तुषार को लेकर दूसरे कमरे में चली गई थी। मुझे साक्षी का यह व्यवहार हतप्रभ करने वाला लेकिन अच्छा लगा।

बवेजा को भी ऐसी उम्मीद नहीं थी। उसका चेहरा अचानक स्याह पड़ गया और देखते ही देखते फिर उस पर बेचारगी के भाव चस्पा हो गया था। वह सिर झुकाए कुछ देर तक बैठा रहा। फिर मेरी तरफ देखते हुए बोला, ''सारी दीपेन, तुम्हारी पत्नी सही है। मुझे तुम्हारे पास नहीं आना चाहिए था। अब मैं चलूँगा। मेरे लिए कैब बुला दो।'' उसकी आवाज़ भारी थी। अचानक कमरा उदास हो चुका था। मैंने कैब बुक कर दिया। थोड़ी देर में ही कैब वाले का फ़ोन आ गया। मैं बवेजा को सड़क तक छोड़ने आया। चलते-चलते अचानक यूँ ही पूछ बैठा, ''सर रूबीना मुखर्जी कहाँ है ?''

उसने मेरी तरफ देखा। उसे मुझसे ऐसे सवाल की आशा नहीं थी। वह कुछ देर खामोश सोचता रहा। फिर गहरी साँस लेकर बोला, ''तुम्हारे उस कांड से उसकी बहुत बदनामी हो गई थी। उसने कुछ दिनों बाद जॉब छोड़ दिया था। ज़िंदगी में इतनी समस्याएँ हैं, किस किसका हिसाब रखा जाए?''

मुझे लगा वह झूठ बोल रहा है। बवेजा को झूठ बोलने में महारत हासिल थी। शायद बवेजा को भी लग रहा था कि मुझे उसकी बात पर विश्वास नहीं हो रहा था। कैब में बैठने से पहले, वह मेरे कंधे पर हाथ रखकर बोला, ''दीपेन मेरा यकीन करो मुझे नहीं मालूम।''

***

शहर

मनोज शर्मा

मनोज शर्मा
सी 73, बादली एक्स्टेंशन, दिल्ली 110042
मोबाइल- 9868310402
ईमेल- mannufeb22@gmail.com

जाड़े में शाम जल्दी हो जाती है और फिर करीब छह बजे ही घना अँधेरा होने लगता है। हालाँकि शहरों में लोग, सड़कें, गाड़ियाँ और कामकाज देर शाम तक चलते दौड़ते रहते हैं। मुनिरका जैसे भीड़भाड़ भरे क्षेत्र में साढ़े छह बजे की शाम भी दिन की तरह उजली थी। हैलोजन लाइट्स की सफेद रोशनी हर ओर बिखरी थी। मैंने सिगरेट को सुलगाया लंबा कश खींचते हुए माचिस को कुर्ते की जेब रखकर सड़क पर सामने की ओर चल पड़ा। एक बुज़ुर्ग जिनका यहाँ कोई परिचय नहीं था और था भी तो बस इतना कि वो एक बुज़ुर्ग हैं

जो बढ़ती उम्र के चलते अक्सर काफ़ी बातें नाम, पता आदि भूल ही जाते हैं। सड़क के दाहिने बने अपार्टमेंट्स में बने हुए एक एक फ्लैट को बड़े ध्यान से देखते आगे बढ़ रहे थे जैसे उन्हें पहचाने की कोशिश कर रहे हों। चेहरे पर उत्सुकता और परेशानी में आँखों पर से चश्मा बार-बार उतारने चढ़ाने का क्रम चल रहा था। अपार्टमेंट्स में बने हर फ्लैट्स की बुनावट एक जैसी थी। नीचे से शीर्ष तक कतारों में एक जैसे काफी फ्लैट्स थे। अपार्टमैंट के लंबे गेट पर दो दरबान खड़े थे; जो आने जाने वालों पर पूरी निष्ठा से नज़र रखते थे। बुज़ुर्ग आदमी को यहाँ आज से पहले कभी नहीं देखा था। मैंने सिगरेट की राख झटकते हुए गुलाटी को आवाज़ दी वो गुलमोहर अपार्टमेंट के पास ही खड़ा था, वो मेरी आवाज़ सुनते ही मेरे साथ-साथ हो लिया और हम लोग रोज़ की तरह जिम की ओर बढ़ गए।

इस बुज़ुर्ग व्यक्ति को कोई नहीं जानता यहाँ; क्योंकि यह आज ही दस बजे गाँव से शहर अपने भतीजे के यहाँ आए थे। उम्र करीब सत्तर वर्ष, सिर के आधे बाल उड़ चुके हैं, सफेद कुर्ता-पायजामा, मेंहदी रंग की जर्सी पर एक भूरी चादर और आँखों पर काला चश्मा, दाएँ हाथ में पारदर्शी लिफाफे में दो एक किलो सेबों को थामें वह चार साढ़े चार शाम को टहलने निकले थे। शहर में लोगों की कोई पहचान तो है नहीं, चूँकि उसका भतीजा अभी दफ़्तर से लौटा नहीं था। अब बहू-बच्चे के साथ भी कितनी देर बतियाया जाए। दिन में खा पीकर सो भी लिए पर लंबा दिन कैसे बीते? सो फल, सब्ज़ी लेने के उद्देश्य से वो भतीजे

के फ्लैट्स से एक डेढ़ मील दूर निकल लिए। फल सब्ज़ी तो शहर से ख़ैर ले ली पर अब वो रास्ता भटक गए हैं। गाँव में तो कोई राह भटक जाए या किसी का ठिकाना पूछ ले तो उसे न केवल यथास्थान तक पहुँचाया जाता है बल्कि शर्बत, चाय आदि भी पीए बिना एक कदम भी नहीं टिक सकता पर यहाँ शहर में ऐसा कहाँ ! यहाँ तो एक हाथ को दूसरा हाथ नहीं जानता केवल नंबर प्लेट, फ्लैट नंबर और अपार्टमेंट् के नाम से ही ढूँढ़ा जा सकता है।

सुबह तो बहू रेलवे स्टेशन से ले आई थी पर अब! कैसे लौटा जाए ?और बुढ़ापे में भूलने की बीमारी अलग! चेहरा उद्विग्नता भरा! हालाँकि जब यह घर से निकले थे तब कितनी ही बार फ्लैट नंबर व अपार्टमैंट नेम बताया था, पर अब उन्हें कुछ याद नहीं और बहू को भी ऐसा आभास न होगा कि ऐसा भी हो सकता है। एक बूढ़ा चेहरा जो उम्र के साथ क्षीण होता जाता है अक्सर गाँव में तो दिनचर्या दो चार सगे संबंधियों या अपनी उम्र के लोगों के संग जैसे-तैसे कट जाती है पर शहर में तो बुज़ुर्ग होना अभिशाप के समान है। यहाँ दो एक कमरे के फ़्लैट में ही ज़िंदगी निकल जाती है। यहाँ कोई किसी को नहीं जानता शायद स्वयं को भी नहीं। इसलिए अक्सर बच्चे या बूढ़े राह भटक जाते हैं पर यह तो यहाँ आम बात है! बुज़ुर्ग चलते-चलते हाँफ रहे हैं दम फूल चुका है। थोड़ा चलते हैं फिर रुककर आशा से पीले फ्लैट्स को निहारने लग जाते हैं।

बुज़ुर्ग व्यक्ति का नाम दीनानाथ है उन्होंने अपनी जेब से अपना परिचय पत्र निकाला और उसे काँपते हाथों से देखते रहे। उनकी देह काँप रही थी और चेहरे पर गहरी हताशा आ चुकी थी। उनका हलक सूख गया था। वे चलते-चलते अब थक कर काँप रहे हैं। ठंडे मौसम में ठंडी हवा से सारा शहर ठिठक रहा है। तीन युवा कॉलेज में पढ़ने वाले बच्चे जो उनके पोता-पोती की उम्र के होंगे; जिनमें एक लड़की थी जो नाटी थी पर दोनों लड़के लंबे थे। दीनानाथ एक तख्त पर बैठे इधर-उधर देख रहे थे। उन बच्चों को करीब से गुज़रते देख उन्हें बुलाने के लिए हाथ से इशारा किया। लड़का-लड़की पूर्ववत् किसी बात में व्यस्त थे। तेज़ हँसी व चेहरों पर तीव्र अट्हास था, पर उनमें से एक लड़के ने उस ओर देखा और चौंक कर बोला कहो दादू! क्या हुआ!

बूढ़े व्यक्ति ने हाथ में पकड़े अपने परिचय पत्र को उसके हाथों में थमाते हुए कहा- 'बेटा मुझे पीले फ्लैट में जाना है! क्या तुम जानते हो?' चेहरे पर निराशा और गहरी वितृष्णा से उस लड़के की ओर वो देखते रहे पीला फ्लैट ?

'मतलब! आप क्या कह रहे हैं?' बात को ज़ोर देकर दोहराने लगा 'क्या मतलब?'

अब तक दूसरा लड़का और लड़की भी वहाँ आ गए थे। तेज़ हँसी की फुहारों को समेटते लड़की ने पहले से मौजूद लड़के से पूछा 'क्या हुआ?'

बूढ़े व्यक्ति को उपेक्षित भाव से देखते हुए, 'कौन हैं ये बूढ़े अंकल? क्या तुम इन्हें जानते हो?' चेहरे पर उभरी हँसी को होठों पर समटते हुए धीरे-धीरे लड़के के कान में कुछ फुसफुसाने लगी। बुज़ुर्ग अब उस लड़की की ओर ताकता रहा।

पहला लड़का पहले हँसकर पर फिर गंभीरता से उन दोनों को समझाता हुआ बोला 'पता नहीं ये क्या पीले फ्लैट पीले फ्लैट कर रहे हैं, मुझे तो कुछ समझ नहीं आ रहा?' बूढ़ा व्यक्ति अभी भी बेचारगी से उन तीनों के मुँह ताकता रहा!

'चलो यार लेट हो रहे है?' लड़की पहले लड़के का हाथ खींचते हुए बोली जैसे उसने उनकी तरफ बिल्कुल ध्यान तक न दिया हो।

दूसरा लड़का भी! 'हाँ हाँ यार चलो कल भी लेट हो गए थे टयूशन पर!' बूढ़ा पहले लड़के की आँखों में देखता हुआ कुछ बोला, उसके शब्द टूट रहे थे वो घबराकर बोल भी नहीं पा रहा था। वो हताश से आँखों से ऊँची बिल्डिंग में खड़े फ्लैट्स की कतारों की ओर देखते हुए बारीकी से बताने की चेष्टा करता रहा पर एक दूसरे का हाथ खींचते वो तीनों वहाँ से लौट गए। बूढ़ा पल भर तख्त पर निराश होकर बैठा रहा पर फिर खड़ा होकर दाईं ओर के फ्लैट्स में झाँकने लगा पर सभी फ्लैट्स को एक समान पाकर वो पुनः पुराने क्रम से उन्हें देखता व पहचानने की कोशिश करता।

सड़क के दोनों ओर हलचल थी, हर चेहरा नया पर भीड़ में कहीं खोया हुआ। शहर में कोई किसी को नहीं और यदि जानता भी है तो अपने मतलब से वरना हर आदमी अपनी ज़िंदगी में ही मस्त है। बूढ़ा व्यक्ति अपने आयताकार चेहरे पर उँगलियाँ फेरता एक बार फिर सड़क की ओर आगे बढ़ने लगता है। अभी दस पाँच कदम ही चला कि वहीं ठिठक गया उसे लगा कि उसे पेशाब करना है। वो यहाँ वहाँ देखता है सड़क के दोनों ओर पर उसे कहीं कोई निर्जन स्थान नहीं दिखता, जहाँ पेशाब किया जा सके। सड़क से करीब पचास कदम दूर एक गाड़ी खड़ी मिली है, उसे ख़याल आता है कि गाड़ी की ओट में वो मूत सकता है। वो पायजामे का नाड़ा बाँध रहा था तभी गाड़ी के पास से अपार्टमेंट्स की कुछ महिलाएँ बतियाते हुए निकल रही थीं। तेज़-तर्रार आधुनिक रंग रूप में रंगी और कृत्रिम सुंदरता का आवरण ढाँपे वे गाड़ी की ओर बढ़ीं। गाड़ी के दरवाज़े को खोलते हुए सहसा बूढ़े को वहाँ देखकर उसे हिकारत भरी नज़रों से देखते हुए बोली -'तुझे शर्म नहीं आती कम से कम अपनी उम्र का तो लिहाज़ कर ? बुड्ढे !'

बूढ़ा व्यक्ति नज़रें झुकाए खड़ा रहा बिल्कुल अपराधी की सी मुद्रा में!

एक औरत ने दूसरी औरत के स्वर में स्वर मिलाते हुए कहा- 'यह वही चोर है जो गाड़ी की बैटरी चुराता है।' उसके शब्दों में वही टच था, जैसे कुशल चित्रकार के ब्रश के स्ट्रोक चित्र निखरते जाते हैं, उसी की सी पूर्णतः कन्फर्म !

'मैं तो कहती हूँ, हो न हो यही है वो बैटरी चोर!'

एक अन्य स्त्री जैसे उसे उस बात से कोई सरोकार न हो चलो यार इनका तो यही काम है डेली का..... गुस्से से पहली और दूसरी स्त्री को गाड़ी की ओर ठेलते हुए और पूरा वाक्य पूरा किए बिना गाड़ी में बैठ जाती हैं। गाड़ी चले जाने के पश्चात् वो बुज़ुर्ग रोती आँखों को पोंछता हुआ आगे बढ़ने लगा। सड़क पर उजली लाइट में उसका प्रतिबिंब गहरा और घना होता जा रहा था जो उसके संग-संग आगे घिसट रहा था।

समय बीतता जा रहा है पर शहर में आए हर अजनबी अपने-अपने घरों में घुसने लगे हैं। शहर के पास का ये इलाक़ा आधुनिक सुख सुविधाओं साज सज्जाओं से लबरेज़ था। नए किस्म के पार्क और उसमें आधुनिक

किस्म के झूले और वहाँ से निकलते युवक-युवतियाँ अपनी यौन वासनाओं की पिपासा मिटाकर निकलते जोड़े। पर यह तो यहाँ का रोज़ का ही काम है इसमें नया कुछ भी तो नहीं! ये तो नई तरह की ज़िंदगी है, जो शहर में सभी को भाती है।

मैं और गुलाटी करीब डेढ़ घंटे के पश्चात् उसी तरफ से लौट रहे थे, जहाँ वह बुज़ुर्ग व्यक्ति भटक रहा था। मैंने उस बूढ़े थके चेहरे की वेदना को भाँपते हुए उनसे पूछना चाहा फिर उनके करीब पहुँचकर उससे पूछा, 'बाऊजी आप कौन है? और कहाँ जाना है आपको!' वे बेसुध-सा सामने खड़े रहे। मैंने फिर ज़ोर देकर पूछा, 'आप कहाँ रहते है बाऊजी?' मेरी बात को इस बार उन्होंने जैसे ग़ौर से सुना हो। मेरी आँखों में झाँकते हुए उनकी आँखें फिर रो पड़ीं। वो सिसक पड़े उनका गला रुँध गया था। स्वर टूट रहे थे। मैंने अपार्टमेंट के सामने दरबान से कुर्सी लेकर उनको बिठाया। थोड़ा पानी पिलाया और पूछा- 'आप ठीक तो हैं!'

वे चुपचाप मुझे देखते रहे और मैं उन्हें! पर वे बुरी तरह सहमे थे जैसे किसी शरीफ आदमी को अपराधी बनाकर जेल में बिठा कर पूछताछ की जा रही हो। गुलाटी को लौटना था उसने पहले मेरी उँगलियाँ दबोचीं और फिर मेरे कंधे को सहलाते हुए वहाँ से चला गया। पास खड़े दरबान ने मेरी ओर देखकर कहा, 'ये बाबा यहाँ भटक गए हैं। मैं तो इन्हें दो घंटे से देख रहा हूँ पर कोई इनकी नहीं सुन रहा!' उसने अपने कानों में छोटी उँगली को डालकर तेज़ी से हिलाई, पर बोलता रहा। बूढ़ा व्यक्ति बारी-बारी से मुझे और उस दरबान को देखता रहा। मैंने हल्के लहज़े में एक बार उनसे फिर पूछा- 'आपको कहाँ जाना है? मुझे बताइए मैं आपको वहाँ पहुँचा देता हूँ !'

गेट पर लंबी गाड़ी रुकी। दरबान उस ओर बढ़ गया। मैंने कुर्सी पर बैठे बूढ़े व्यक्ति की हथेली को दबाते हुए उन्हें आश्वस्त किया कि वो घबराएँ नहीं। उन्होंने सिसकते हुए अपना परिचय पत्र मेरे हाथों में रख दिया और कहा कि उनका भतीजा शशिभूषण यहीं किसी अपार्टमेंट के किसी फ्लैट में रहता है पर अब उन्हें कुछ याद नहीं और इतना कहते हुए उनकी आँखें फिर भर आईं।

गेट के किनारे यद्यपि दूधिया रोशनी थी पर फिर भी दीनानाथ की दुनिया में घना अँधेरा आ चुका था। सहसा मेरा फ़ोन बजा। मैंने पतलून की जेब से निकालते हुए उसे देखा। सरला का फ़ोन था। मैंने हलो! कहा पर मेरी नज़रें कुर्सी पर बैठे बुज़ुर्ग पर थीं, जो मुझे किसी दार्शनिक की भाँति अनवरत देखे जा रहे थे। मैने सरला को बताया कि घर पहुँचने में थोड़ी देर लगेगी। सरला के साथ थोड़ी ज़िरह हुई, 'तुम भी न बेकार के पचड़ों में खुद से फँसते हो! छोड़ो चले जाएँगे कहीं भी हमारी बला से! हमें क्या!' सरला की आवाज़ फ़ोन पर गूँज रही थी। मैं उन बुज़ुर्ग से थोड़ा दूर हटते सरला को समझाने लगा। 'सरला प्लीज़ ट्राई टू अंडर स्टैंड! प्लीज़! प्लीज़ !! बताता हूँ! घर आकर पर फ़ोन पर नहीं बता सकता!' मेरे शब्दों में गहराई थी। दाँत पीसता हुआ मैं लगभग चीख रहा था। पर आवाज़ में कड़ापन बिल्कुल न था। कुर्सी पर बैठी बूढ़ी निस्तब्ध आँखें दूर तैरती रोशनी में उम्मीदें ढूँढ़ रही थीं। मैंने फ़ोन को पतलून में रखना चाहा पर तभी मुझे ख़याल आया मुझे गुलाटी को फ़ोन लगाना चाहिए। मैंने कुछ सोचा और फिर गुलाटी को फ़ोन लगाया। फ़ोन की घंटी दूसरी तरफ जा रही थी। बड़े गेट से लंबी गाड़ी जा चुकी थी। दरबान रजिस्टर में ऐंट्री कर रहा था। सहसा उसे कुछ याद आया और उस बुज़ुर्ग की तरफ देखकर ज़ोर से पूछने लगा- 'बाबूजी! चाय पीओगे?' उसने बुज़ुर्ग के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही दूसरी दिशा में दो उँगलियों से वी का निशान बनाकर हाथ हवा में लहरा दिया। रजिस्टर में पैन दबाते हुए वो कुर्सी पर बैठे बूढ़े व्यक्ति के पास आ गया पर दूसरा दरबान अभी भी गेट पर मुस्तैदी से खड़ा रहा।

गुलाटी से फ़ोन पर बात करते हुए मैंने कहा, 'हाँ जल्दी करो! गाड़ी लेकर आओ। जल्दी! हाँ हाँ बताता हूँ भाई! और हाँ सक्सैना साहब को भी लेते आना!' जल्दी करो बहुत अर्जेंट है। चाय की केतली और दो गिलास लिए हुए एक मरियल सा लड़का वहाँ पहुँचा। बूढ़ा आदमी चाय पीते हुए खूब सोचता रहा और उसने चादर को समेटते हुए जेब से अपने भोपाल के घर का पता निकाला और बोला बेटा तुम्हारी बहुत मेहरबानी होगी यदि तुम मुझे भोपाल की बस में बिठा दो। मैं वापिस ही लौट जाऊँगा। चाय पीते हुए उसने अपने भतीजे के बारे में बताया कि वो यहाँ किसी कंपनी में जुनियर क्लर्क है, पर उसका फ़ोन नंबर पता आदि वहीं घर से लाए हुए बैग में छूट गया।

मैंने दो एक बार उनसे पूछा, क्यों न आपके भतीजे के फ्लैट्स को तलाशा जाए पर वो बुज़ुर्ग चाय का अंतिम घूँट पीते हुए हाथ जोड़कर घर पर ही जाने की विनती करने लगे। अब उनके चेहरे पर से निराशा पहले से कम हो चुकी थी।

दरबान ने चाय के गिलास को खिड़की में अंदर की ओर सरकाते हुए बाएँ खंभे की लाइट को देखने लगा और दूसरे दरबान के कानों में कुछ खुसफुसाने लगा।

गुलाटी ने फ़ोन पर बात करते हुए सक्सेना जी को साथ बिठाए, जो अपार्टमेंट के सैक्रेट्री भी हैं, गाड़ी को मेरे सामने रोका। गुलाटी ने गाड़ी को गेट के पास लगाकर खड़ी की। सक्सेना जी भी गाड़ी से बाहर आ चुके थे। मैंने दोनों को बुज़ुर्ग व्यक्ति के बारे में बताया। हम तीनों के हिलते होंठ और गहरे हावों-भावों को बूढ़ा आदमी हतप्रभ होकर देख रहा था। गेट का दरबान अब तक उस बुज़ुर्ग से परिचित हो चुका था पर जैसे ही कोई गाड़ी स्कूटर आदि गेट पर आता वो गेट पर लपक जाता।

दो सिगरेट जलाकर मैंने एक गुलाटी की ओर बढ़ा दिया। सक्सैना जी सिगरेट नहीं पीते इसलिए वो खड़े-खड़े धुएँ के घेरों को देखते रहे। गुलाटी ने दो उँगलियों से चुटकी बजाते हुए राख को नीचे गिरा दिया और सिगरेट को होठों के दाहिनी छोर पर रख लिया, जैसे ही होठों ने साँस अंदर खींचा, सलेटी धुआँ हवा में लहरा गया। बूढ़े व्यक्ति की तरफ आते हुए गुलाटी ने बूढ़े आदमी से पूछा- 'चचा खाना खाओगे ना! बहुत रात हो गई है, भूख लग गई होगी!' गुलाटी की भारी आवाज़ में खनक थी। सक्सेना जी उम्र में ज़्यादा बड़े नहीं थे पर उनके चेहरे पर गहरा आत्मविश्वास था। किसी ज्ञानी की भाँति बुज़ुर्ग व्यक्ति से बातें करने लगे।

'बाबा आप रात को कहाँ जाओगे! कहीं

और भटक जाओगे। मेरे ख़याल से आपके भतीजे को तलाश लेते हैं या फिर आज रात आप मेरे यहाँ रुक जाइए, सुबह-सुबह आपको भोपाल की बस में बिठा देंगे!' बुज़ुर्ग आदमी सक्सेना की हर बात को बड़ी तल्लीनता से सुन रहे थे, पर वो जल्द से जल्द भोपाल लौटने का मन बना चुके थे। वह बड़ी मासूमियत से सक्सेना जी के सामने हाथ जोड़कर बस में अभी बिठाने की प्रार्थना करने लगा। गुलाटी ने सिगरेट को नीचे गिराकर उसे जूते से रगड़ दिया। सिगरेट का धुआँ कुछ देर हवा में बहता रहा, फिर जल्दी ही ज़र्रे बुझने लगे और धुएँ का भी अंत हो गया। 'अच्छा चचा बताओ, क्या खाओगे?' गुलाटी ने पास आकर पूछा पर बूढ़े ने दाएँ-बाएँ देखते हुए भूख न होने की पुष्टि की। तीनों लोग एक दूसरे को देखने लगे। घड़ी में देखा अभी सवा नौ बजे हैं। गुलाटी से कन्फर्म करते हुए मैंने उन दोनों को कहा- 'भोपाल की बस सवा दस बजे निकलती है और करीब सुबह पौने छह बजे वहाँ पहुँचा देती है। बाबू जी पक्का जाओगे क्या?'

भोपाल के प्रस्थान की बात सुनते ही बूढ़े आदमी की आँखें खिल गईं, जैसे सब कुछ ठीक हो गया हो। वह तुरंत कुर्सी से उठ गया और चादर को हवा में फैला कर फिर से ओढ़ने लगा। दरबान ने बीच में रखी कुर्सी को एक ओर सरका दिया और रजिस्टर में किसी एन्ट्री को चैक करने लगा। मैं और सक्सेना गाड़ी में आगे बैठ गए। सक्सेना जी ने पिछली सीट पर बुज़ुर्ग व्यक्ति को बिठा दिया और सीट पर सेब का लिफाफा रख दिया। बुज़ुर्ग ने इशारे से दरबान को करीब बुलाया और सेब से भरा थैला उसको थमा दिया और कहा बेटा इसे तुम रख लो! तुम लोगों ने मेरी खूब सेवा की है। मैं आप सभी को जीते जी याद रखूँगा। बूढ़े व्यक्ति की आँखें भरी थीं। दरबान ने आतुर नेत्रों से देखा और दो एक बार ना-ना करते सामान रख लिया।

गाड़ी गेट से बाहर निकल कर सड़क की ओर बढ़ गई। सक्सेना जी और दरबान दौड़ती गाड़ी को देखते रहे। कुछ ही देर में गाड़ी सड़क से ओझल होती गई। पर देर तक दोनों के हाथ हवा में लहराते रहे।

***

दोहे

औरत नदिया नेह की

जय चक्रवर्ती

औरत नदिया नेह की, युग-युग से गतिमान
उसके अंतस की व्यथा, कौन सका है जान
***

मिला रूप लावण्य का, नारी को आशीष
इस दर पर आकर झुके, बड़े बड़ों के शीश
***

ज्यों गर्मी में छाँव है, ज्यों जाड़े में धूप
वैसे ही इस सृष्टि में, नारी का प्रारूप
***

धागा-सुई सदृश्य हैं, औरत के जज़्बात
पल-पल तुरपाई करे, रिश्तों की दिन-रात
***

औरत ने पग-पग जिए, दुख के कठिन सवाल
औरत सब कुछ जानती क्या पिंजरा क्या जाल
***

पुलिस, कचहरी, नौकरी, गाँव, गली, बाज़ार
औरत सबकी आँख में, एक अदद अख़बार
***

जुमले, फिकरे, फब्तियाँ, छेड़छाड़, तकरार
औरत को डसते रहे, पग-पग साँप हज़ार
***

पैरों घुँघरू बाँधकर, गया बेरहम मर्द
औरत दोहराती रही, महफ़िल-महफ़िल दर्द
***

फिसले किसी ढलान पर, जब औरत के पाँव
रहा तमाशा देखता, गुपचुप सारा गाँव
***

औरत ने अन्याय को, जब-जब किया कुबूल
औरत पर भारी पड़ी, औरत की यह भूल
***

औरत ने जब थाम ली, हाथों में बंदूक
सब की सब गुर्राहटें, हुईं अचानक मूक
***

औरत के सम्मुख झुकी, तलवारों की धार
वक़्त पड़ा तो बन गई, औरत खुद तलवार
***

अपने हक़ का युद्ध खुद, लड़ने को प्रतिबद्ध
जीवन के कुरुक्षेत्र में, अब औरत सन्नद्ध
***

नारी! तुम्हें पुकारता, समय तुम्हारा मीत
निकलो पिंजरा तोड़कर, रचो मुक्ति के गीत
***

रचो स्वयं का व्याकरण, भाषा, शब्द, विचार
करो स्वयं ही स्वयं का, निर्मित अब संसार
***

तोड़ेगी नारी स्वयं, शोषण के नख-दंत
सदियों के संताप का, हम देखेंगे अंत
***

जय चक्रवर्ती, एम.1/149, जवाहर विहार,रायबरेली-229010, उत्तरप्रदेश
मोबाइल: 9839665691
ईमेल: jai.chakrawarti@gmail.com

भाषांतर

घर जलाकर

लेखकः इब्ने कमल
अनुवादः देवी नागरानी

इब्ने कमल
36-3 फ्लोर, लेन नं. 2, जोहरी फार्म, नूर नगर, जामिया नगर,
नई दिल्ली- 110025
मोबाइल- 09891455448
ईमेल- ibnekanwal@yahoo.com

देवी नागरानी
2814 Plaza Drive Woodbridge
NJ 07095,SA
मोबाइल- 201-63-8485
ईमेल- dnangrani@gmail.com

बस्ती में हाहाकार मची हुई थी। आग फैलती चली जा रही थी, आसमान धुँए से भर गया था। आग पर काबू पाने की कोशिश के बावजूद आग काबू से बाहर थी। औरतें सर पीट-पीटकर चीख रहीं थी। बच्चे ख़ौफ़ से चिल्ला रहे थे और मर्द आग बुझाने की कोशिश में लगे हुए थे। पास और दूर, ऊँचे-ऊँचे पक्के मकानों के आवासी तमाशाई बने धुँए और तपिश से बचने के लिए अपने घरों की खिड़कियाँ, दरवाज़े बंद कर रहे थे। शहर के बीच में रामलीला ग्राउंड के नज़दीक करीब-करीब 500 झुग्गियों की यह बस्ती न जाने कब से आबाद थी और किस तरह आबाद हो गई थी, किसी को याद नहीं था, लेकिन अक्सर लोग उसे शहर की खूबसूरती पर बदनुमा दाग़ कहा करते थे, जबकि झुग्गियों में रहने वाले उन्हीं हाथों से शहर की गंदगी साफ़ करते थे। उन्हीं के दम से आलीशान घरों में चमक-दमक कायम थी। यहाँ के रहने वालों का गंदापन गायब हो गया था।

शायद सबसे पहले यहाँ एक छोटी सी झोंपड़ी थी। फिर एक और... एक और, फिर एक मुकम्मल बस्ती। छोटी सी इस बस्ती में सब कुछ था, बिजली हर जगह मौजूद थी। छोटे बड़े ब्लैक एंड व्हाइट टी.वी भी इन झुग्गियों में हर वक़्त चलते रहते थे। गंदे-गंदे बच्चे, नालियों में गंदा और सड़ा हुआ पानी, कूड़े के ढेर, मक्खी, मच्छर, कुत्ते सब कुछ था। वे सब उसके आदी थे। यहाँ मज़हब, वतन का बँटवारा न था। हर संप्रदाय के लोग इंसानियत के रिश्ते में बँधे हुए थे। दुख-सुख में एक-दूसरे के साथी, मौत पर सब एक साथ शोक मनाते और खुशी में सब एक साथ मस्त व ख़ुशी से झूमते गाते। शहर के विस्तार में उनकी मौजूदगी सियासी पनाह के सबब भी थी। हर नेता उन्हें वोट बैंक समझता था, सियासी जलसों में भीड़ बढ़ाने और नारे लगाने के लिए उन्हें लोगों की ज़रूरत पड़ती थी। कई बार उस बस्ती को हटाने की कोशिश की गई; लेकिन हर बार कोई न कोई उनकी मदद के लिए आ जाता।

लेकिन अचानक आग लगने से सारा मंज़र बदल गया, आग एक झुग्गी से शुरू हुई थी और देखते-देखते गर्मी और हवा की शिद्दत के कारण पूरी बस्ती उसकी लपेट में आ गई। उसकी वजह यह भी थी कि झुग्गियों में जलने का सामान मौजूद था- फूँस, सूखी लकड़ियाँ, प्लास्टिक, टायर और कैरोसिन। आग जहन्नुम का मंज़र दर्शा रही थी। फायर ब्रिगेड की गाड़ियाँ आते-आते सब कुछ ख़त्म हो गया। अजीब भागम-दौड़ी का आलम था। जलते हुए शोलों से लोग कभी खुद को निकालते, कभी सामान निकालने की कोशिश करते, कोई अपने बच्चों को झुग्गी से बाहर धकेल रहे थे, तो कोई बूढ़े माँ-बाप उठाकर आग के शोलों से दूर ले जा रहा था। चारों तरफ एक कोहराम मचा हुआ था।

तमाशाइयों की भी एक भीड़ इकट्ठी हो गई थी। अख़बारों की रिपोर्टर और टी. वी के कैमरे से उस ख़ौफ़नाक मंज़र की तसवीरें खींची जा रहीं थी। मुसलसल कई घंटों की जद्दोजहद के बाद जब आग पर काबू पाया गया तो लोग अपनी जली हुई झुग्गियों की सुलगती हुई राख से अपने खोए हुए संबंधियों और सामान को ढूँढ़ने के लिए पहुँचे। लेकिन वहाँ कुछ नहीं था, सिवाए जले हुए सामान और लाशों के कुछ नहीं मिला। किशोर की बूढ़ी माँ जो कमज़ोरी की वजह से भाग नहीं पाई जल गई थी। रामू काका का छोटा बेटा जल गया। वह अपनी बीवी के साथ अपनी बड़ी बेटी के दहेज को बचाने में लगा रहा। लगभग दस लोगों की मौत आग में जलने से हो गई। बहुत से लोग झुलस कर अस्पतालों में पहुँचाए गए। शोले दब गए थे लेकिन राख से धुआँ उठ रहा था। तमाशाइयों की एक अच्छी-ख़ासी भीड़ इकट्ठी हो गई थी। लोगों मदद भी कर रहे थे और बातें भी हो रहीं थी। समाज के ठेकेदारों और सियासी लोगों का आना-जाना शुरू हो गया था।

सरकार ने मरने वालों को एक-एक लाख और ज़ख्मियों को पचास हज़ार देने का ऐलान किया। आग लगने के कारण की पूछताछ के लिए कमिशन बिठाया गया। जबकि सब जानते थे कि आग सबसे पहले बरपा की झुग्गी में स्टोव फटने से लगी थी, लेकिन सब अपनी-अपनी राय पेश कर रहे थे- ''ये सब ज़मीन खाली करने का चक्कर है, यह ज़मीन सेठ दौलत राम की है। सुना है उसने इसे जसल बिल्डर के हाथ बेची है।''

''मैंने तो सुना है कि इसमें कोई राजनैतिक चाल है, इलेक्शन होने वाला है।''

''आग लगाकर मदद करके हर पार्टी हमदर्दी और वोट हासिल करने की कोशिश करेगी।''

''कारण कुछ भी हो लेकिन मरने वाले अपने खानदान को लखपति बना गए।''

''हाँ भाई किशोर की माँ तो मरे बराबर ही थी, चल फिर भी नहीं सकती थी और दीनू का बाप भी अपाहिज था।''

''अरे मियाँ एक लाख रुपया कभी देखा भी नहीं होगा। यह तो मरा हाथी सवा लाख वाली बात हो गई।''

बहुतों को इस बात का अफ़सोस था कि उनके घर का कोई सदस्य जल क्यों नहीं गया! दामाद अपनी सासों के न जलने, और बेटे अपने बूढ़े माँ-बाप के बचने पर अफ़सोस कर रहे थे।

''बुढ़िया मर जाती तो घर में खुशहाली आ जाती।''

''ऐ यार, मेरा बुड्ढा आग देखकर लौंडों की तरह झुग्गी से बाहर भागा, वैसे उठकर पानी भी नहीं पीता था।''

इस हादसे पर कई दिन तक मेला सा लगा रहा। दूर-दूर से तमाशाई जली हुई बस्ती को देखने आ रहे थे। खोमचेवाले भी वहाँ पहुँचे हुए थे, कोई छोले-पूरी बेच रहा था, कोई आइसक्रीम का ठेला लिए खड़ा था, कहीं भुट्टे भुने जा रहे थे, कोई पान-बीड़ी सिगरेट बेचने में व्यस्त था। वह गंदी झुग्गियों वाली बस्ती आग लगने से सबके लिए प्रकाश बिंदु बन गई थी। बड़े-बड़े लोग, बड़ी बड़ी गाड़ियाँ वहाँ आ कर रुक रहीं थी। असीम उदारता का दिखावा करते हुए बेघर लोगों की सूची के अनुसार ज़रूरी सामान मौजूद कर रहे थे। उसमें मदद का ज़ज़्बा कम और उसके बदले ख़ुदा के यहाँ से दस लाख लेने का लालच ज़्यादा था। दो तीन दिन में इतना घरेलू सामान और खाना जमा हो गया, जितना उन ग़रीबों ने पूरी ज़िंदगी नहीं देखा था। पहले से अच्छे कपड़े उनके बदन पर थे। पहले से अच्छा खाना बगैर किसी मेहनत के मिल रहा था। ज़िंदगी की यह बदली शक्ल देखकर वे शोलों की तपिश भूल गए। फिर झुग्गियाँ बन गईं, ज़िंदगी उसी रफ़्तार से चलने लगी। वक्त गुज़रता गया। आहिस्ता-आहिस्ता ज़िंदगी की वही गंदगी, बदबूदार और लाचार शक्ल फिर उभर आई। अभाव और बेचारगी का अहसास फिर उस बस्ती में लौट आया। सबकी वक़्ती हमदर्दियाँ ख़त्म हो गईं। फिर वह बस्ती शहर का बदनुमा दाग कहलाई जाने लगी। चूल्हे फिर ठंडे हो गए, बदन पर फिर फटे पुराने कपड़े नज़र आने लगे। सब कुछ पहले जैसा हो गया। नज्जू ने बड़ी हसरत भरी आवाज़ में अपनी माँ से पूछा- ''माँ हमारी झुग्गियों में फिर कब आग लगेगी?''

***

लघु कथा

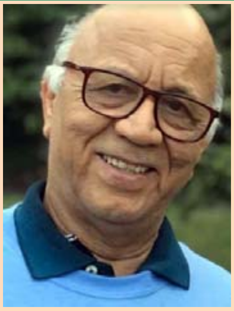

बोन्साई

सुभाष चंद्र लखेड़ा

अमीर घर में जन्मे विक्रम ने बचपन से ही प्रचुरता में रहना सीख लिया था। पब्लिक स्कूल से महँगी शिक्षा ग्रहण करने के बाद उसने अमेरिका की एक यूनिवर्सिटी से एमबीए की डिग्री हासिल की। तत्पश्चात्, वह एक मल्टीनेशनल कंपनी में नियुक्त होकर सफलता के पायदान चढ़ता गया। आख़िर, दुनिया के सभी ऐशोआराम भोगने के बाद वह उम्र के उस पड़ाव पर आ पहुँचा जहाँ इंसान अकेले में यदाकदा अपनी बीती ज़िंदगी के बारे में सोचने लगता है।

ऐसे ही किसी एक दिन न जाने उसे क्यों अपने उस मित्र अनुपम से मिलने का ख़याल आया जिससे बिछड़े हुए लगभग चालीस वर्ष बीत चुके थे। जब वह अनुपम से मिला तो पता चला कि अनुपम और उसकी पत्नी पिछले तीस वर्षों से 'राहत' नामक एक ऐसी संस्था चला रहे हैं जो अनाथ बच्चों को आत्मनिर्भर बनाती है। इस संस्था के लिए अनुपम ने अपनी नौकरी भी छोड़ दी थी। विक्रम को पता चला कि अभी तक अनुपम और उसकी पत्नी द्वारा स्थापित यह संस्था पचास हज़ार अनाथ बच्चों को सफलता के मुकाम तक पहुँचा चुकी है। अनुपम से मिलने के बाद विक्रम खुद को बोन्साई और अनुपम तथा उसकी पत्नी को वट वृक्षों के रूप में देखने लगा। वह सोचने लगा, ''बड़ा हुआ तो क्या हुआ,जैसे पेड़ खजूर। पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर''

***

सुभाष चंद्र लखेड़ा, सी-180, सिद्धार्थ कुंज,सेक्टर-7, प्लाट नंबर-17, द्वारका, नई दिल्ली-110075

ईमेल- subhash.surendra@gmail.com

ध्रुवीय भालुओं का राजा

नेटिव अमेरिकन लोक कथा

एल. फ्रैंक बऊम के ''अमेरिकन फेअरि टेल'' संग्रह में 1901 में प्रकाशित।

अनुवाद: नीलाक्षी फुकन

नीलाक्षी फुकन
549 Pilot Hill Drive, Morrisville, NC 27560 SA
मोबाइल- 919-949-1618
ईमेल- nphukan@ncsu.edu

अगम्य ध्रुवीय हिमखंड और वहाँ बसे सफ़ेद भालुओं की कहानियाँ हमेशा से बेहद आकर्षण की केंद्र रही हैं। इन्हीं ध्रुवीय देशों के हिमखंडों के बीच एक सुनसान गुफा में ध्रुवीय भालुओं का राजा रहता था, जो काफ़ी बूढ़ा और विशालकाय था। जो भी उसे जानता था यही कहता था कि राजा हमेशा उन सभी के प्रति समझदार और मैत्रीपूर्ण भाव रखता था। उसका भव्य मोटा शरीर घने और लम्बे, सफ़ेद बालों से ढँका रहता था, जो आधी रात के सूरज की किरणों के नीचे चाँदी की तरह चमकता था। उसके पंजे बेहद मज़बूत और नुकीले थे, जिससे वह चिकनी बर्फ या घाँस पर सुरक्षित रूप से चल सकता था। मछलियों और सीलों को आसानी से फाड़ सकता था, जिसे खाकर वह अपना जीवन निर्वाह करता था। जब भी भालू राजा सीलों के पास जाया करता था, तो सारे सील डर के मारे उससे बचने की कोशिश करते; लेकिन समुद्री गल पक्षी, जो श्वेत और भूरे रंगों में मिलते हैं, उन्हें बहुत प्यार करते थे। क्योंकि भालू राजा हमेशा अपनी खाई हुई मछलियों के अवशेषों को उनके खाने के लिए छोड़ दिया करता था, जो ये सारे पक्षी बड़े चाव से निग़लते थे। अक्सर वहाँ बसे ध्रुवीय भालुओं के झुंड राजा से अनेक विषयों पर विचार-विमर्ष करने तथा सलाह-मशवरा लेने के लिए आते थे लेकिन वे सारे हमेशा बड़ी सावधानी और समझदारी के साथ भालू-राजा की गुफा के सामने स्थित शिकार के मैदान से दूर रहते थे ताकि ऐसा न हो कि वह किसी कारणवश राजा की कार्य में हस्तक्षेप कर बैठें और उसके ग़ुस्से को बेवजह बढ़ावा दें।

इन्हीं अगम्य ध्रुवीय हिमखंडों तक कभी-कभार भेड़ियों का झुंड भी आ जाता था और वे भेड़िये आपस में हमेशा फुसफुसाते थे कि ध्रुवीय भालुओं का राजा या तो एक बहुत बड़ा मायावी है, नहीं तो किसी जादुई शक्ति या शक्तिशाली परी के संरक्षण में है। तभी तो अब तक कोई भी पार्थिव जीव उसका कोई नुकसान नहीं कर पाया है। नहीं तो शीतनिद्रा के समय, साल भर के खाद्य पदार्थों को संरक्षित किये बिना ही दिन-ब-दिन और साल-दर-साल उसकी आकृति में इतनी बढ़ोतरी कैसे हो सकती है ?

एक दिन राजा हिमखंडों के बीच स्थित अपनी सुनसान गुफा से बाहर निकलकर आया तो उसने गर्मियों की ऊष्णता से और बर्फ के स्थानांतरण से तथा गलने से उत्पन्न पानी की स्रोत से गुज़रती हुई एक नाव देखी, जिसमें कई पुरुष बैठे हुए थे। भालू राजा ने इस तरह के

जीवों को पहले कभी नहीं देखा था, और वह उत्सुकतावश नाव की ओर बढ़ने लगा। एक अजीब गंध उसकी नाक में लगी और सूँघने के लिए काफ़ी इच्छुक हुआ। सोचने लगा कि वह किस तरह से इस गंध को स्वीकार करे। क्या उन्हें दोस्त समझे या दुश्मन? क्या उसे भोजन और माँस समझकर खाया जाए? जब भालू-राजा पानी के किनारे पर आया तो उसने देखा कि नाव में बैठा हुआ एक आदमी अचानक खड़ा हुआ और एक तार के यंत्र के सहारे उसने ज़ोर से एक ''धम'' की आवाज़ निकाली ! ध्रुवीय भालू को झटका लगा; अचानक उसका दिमाग सुन्न हो गया; धीरे-धीरे विचारों ने उसका साथ छोड़ दिया। शरीर का प्रत्येक महत्त्वपूर्ण अंग हिल गया और शरीर के निचले हिस्से शिथिल हो गए। अकस्मात् उसका शरीर सख्त बर्फ पर धड़ाम से गिर पड़ा।

एक समय के लिए बस उसे इतना ही याद था। जब उसकी आँखें खुलीं तो उसने अपने विशालकाय बदन के हर एक इंच पर भयंकर दर्द महसूस किया; क्योंकि वह आदमी जिसको उसने नाव पर बैठा हुआ देखा था, उसकी खाल के एक बड़े हिस्से को, शानदार सफेद बालों सहित बड़े पैमाने पर काटकर अपने साथ किसी दूर-दराज़ के जहाज़ में ले गया। जब वह कई घंटों तक नीचे बर्फ़ पर पड़ा रहा तो उसके शरीर के ऊपर उसके ही अपने दोस्त समुद्री गल पक्षी यही सोचकर हज़ारों परिक्रमा लगातार लगा रहे थे कि उसका दयालु दोस्त वास्तव में जीवित नहीं रहा और अब उसकी निर्जीव देह गल पक्षियों के खाद्य पदार्थ की शृंखला में शामिल हो गई है। लेकिन जैसे ही उन्होंने उसे अपने सिर को उठाते और बदन को काँपते व कराहते हुए देखा तो उन्हें पता चल गया कि वह अभी भी जीवित है। उनमें से एक ने अपने साथियों से कहा ''भेड़िये सही थे। यह राजा तो एक महान् मायावी निकला, यहाँ तक कि मनुष्य भी उसे नहीं मार सके। लेकिन वह मानसिक रूप से रोगग्रस्त हो जाएगा अगर उसे अपने शरीर को सम्पूर्णतः ढँकने का साधन न प्राप्त हुआ तो। आओ, हम सब मिलकर उसकी दयालुता के कर्ज़ को चुकाएँ और क्यों न हम प्रत्येक पक्षी अपने पंखों में से एक-एक पंख निकालकर उपहार के रूप में भालू-राजा पर न्योछावर करें।''

इस सुन्दर विचार को सुनकर गल पक्षियों को काफ़ी प्रसन्नता हुई। एक के बाद एक करके सारे पक्षियों ने चोंच के बल से अपने पंखों के नीचे में से सबसे कोमल पंख को काट निकाला, और, नीचे उड़ते हुए, उन्हें ध्रुवीय भालू-राजा के शरीर पर धीरे से रख दिया। उसके बाद वे सब एक ही आवाज़ में बोल उठे ''साहसी मित्र ! हमारे पंख आपके घने बालों की तरह मुलायम और सुंदर हैं। वे आपको ठंडी हवाओं से बचाएँगे और सोते समय गर्म महसूस कराएँगे। हौसला रखिए, और अपनी ज़िंदगी को फिर से खुशनुमा बनाइए!''

आहिस्ता-आहिस्ता ध्रुवीय भालू-राजा ने महसूस किया कि उसके दुख-दर्द को सहन करने की क्षमता यकायक बढ़ गई है, मानों उसने पुनर्जन्म प्राप्त किया हो। वह ज़िंदगी को एक नए सिरे से मज़बूत बनाने लग जाता है। उसकी खुरदरी खाल में भी गल पक्षियों से भेंट में मिले भूरे रंग के पंख निरन्तर बढ़ते गए जैसे मानों पक्षियों के शरीर पर बढ़ रहे हों और उसके विशालकाय शरीर को पूरे तरीके से ढकने लगे जैसा कि उसके अपने बालों ने किया हो। वैसे भालू-राजा के ज़्यादातर बाल शुद्ध सफेद रंग के थे, लेकिन गल पक्षियों के निःस्वार्थ दान की बदौलत धीरे-धीरे भालू राजा के रंग-रूप तथा आकृति में एक अनोखी रौनक झलकने लगी। उस गर्मी के बाकी के दिनों, आने वाली सर्दियों के छह महीनों की कँपकँपी ठंडी रातों में भालू राजा ने कभी-कभार ही अपनी बर्फीली गुफा को छोड़ा था और वह भी केवल भोजन के लिए, मछली या सील पकड़ने हेतु। हालाँकि उसने अपनी विराट् आकृति को पंखों द्वारा ढँकने के प्रयास में कोई शर्म महसूस नहीं की थी, फिर भी यह अभी तक उसके लिए काफ़ी विचित्र था, और वह जानबूझकर अपने आपको दूसरे भालू, भाई-बंधुओं से दूर रखने का प्रयास करने लगा। भालुओं के सामाजिक मेल-मिलाप से परहेज़ करता रहा। इन सामाजिक दूरियों के अवधि के दौरान, उसने उन मनुष्यों के बारे में सोचा, जिन्होंने उसे गहरा नुकसान पहुँचाया था। जिस तरह उन्होंने ''धमाकेदार'' आवाज़ निकालकर उसे बेहोश कर दिया था और उसके बालों को खालों सहित निकाल ले गए थे, उसको अविरत याद करने लगा। उसने फ़ैसला किया कि आने वाले दिनों में ऐसे भयंकर जीवों से दूर रहना ही बेहतर होगा। इस प्रकार, उसने अपने ज्ञान-भंडार में अपनी आपबीती यादों को सँजोकर रखा और एक लंबी आह भरी।

जब चाँद आसमान से कहीं दूर जाकर गिरा और सूर्य इंद्रधनुष के भव्य चित्रों के साथ हिमखंडों को टिमटिमाने के लिए उदय हुआ तो भालू राजा के गुफा में एक दिन दो ध्रुवीय भालू आ पहुँचे ताकि वे बसंत से ग्रीष्म ऋतु में पाए जानेवाले खाद्य पदार्थों और ग्रीष्म से पतझड़ ऋतु तक के शिकार के दिनों में आज़माई गई पुरातन शिकार संबंधी भिन्न प्रणालियों तथा सफल तरीकों पर चर्चा कर सकें और इस संबंध में भालू-राजा के सलाह-मशवरे को सुन पाए। लेकिन जब उन्होंने राजा के विशाल शरीर को बालों के बजाय पंखों से ढँका हुआ देखा तो वे एकाएक हँस पड़े, और एक ने कटाक्ष की भावना से कहा ''हमारे शक्तिशाली राजा पक्षी बन गए हैं ! पंखों वाले ध्रुवीय भालू के बारे में किसी ने कभी पहले सुना है ?''

भालू-राजा तब अत्यंत क्रोधित हुआ। बादलों की गरज के समान ऊँची आवाज़ में गुर्राता हुआ वह आगे बढ़ा, लेकिन आलीशान चलन के साथ। उसके राक्षसी पंजे के एक प्रहार ने उस उपहास करनेवाले भालू को ज़मीन पर पटक दिया और वह बेजान वहाँ गिर पड़ा। दूसरा भालू चुपचाप वहाँ से भागकर अपने साथी-संबंधियों के पास पहुँचा और तब जा कर लंबी साँस तानी। वहाँ से उसने राजा के अजीब रूप और विचित्र व्यवहार की खबर विस्तार पूर्वक सब में फैला दी। परिणामस्वरूप, बर्फ के एक व्यापक क्षेत्र पर सभी ध्रुवीय भालुओं की एक बैठक आयोजित की गई, जहाँ उन्होंने गंभीरता से उन उल्लेखनीय परिवर्तनों पर बातचीत की जो उनके राजा पर आया था।

''वास्तव में, अब वे भालू नहीं रहे,'' एक ने कहा; ''न ही उन्हें सम्पूर्णतः एक पक्षी कहा जा सकता है। मूलतः वे आधे पक्षी और आधे भालू हैं, पंखों वाले भालू और इसलिए हमारे राजा बने रहने के लिए अयोग्य हैं।''

''तो उनकी जगह कौन लेगा ?'' दूसरे ने पूछा। ''वह जो पक्षी रूपी भालू से लड़ सकता है और उनसे जीत हासिल कर सकता है,'' भालू समूह के एक वृद्ध सदस्य ने जवाब दिया। ''केवल सबसे मज़बूत और शक्तिशाली भालू ही हमारी प्रजाति पर राज करने के लिए योग्य होगा।''

लम्बे समय तक वहाँ ख़ामोशी छाई हुई थी, सन्नाटा फैला हुआ था। फिर अचानक एक ऊँची आवाज़ ने सबकी तंद्रा दूर की और सब ने देखा कि एक वृहत्काय भालू, जिसका नाम ''वूफ़'' था, सामने चला आया है। उसने प्रचंड आवाज़ में कहा ''मैं उससे लड़ूँगा; मैं हमारी प्रजाति की सबसे बड़ी गर्जन में गुर्राऊँगा और मैं ही ध्रुवीय भालुओं का एकमात्र बादशाह बन के अब सबको सँभालूँगा।''

वूफ़ की आकृति और साहस को देखकर अन्य भालुओं ने सहमति जताई और एक दूत के ज़रिए पंखोंवाले भालू राजा को संदेश भेजा गया कि वे वृहत्काय भालू, वूफ़ से लड़कर और उन्हें परास्त कर अपना सार्वभौमत्व प्रतिपन्न करें। खोया हुआ सम्मान और अधिपत्य पुन: प्रति स्थापित करके दिखाएँ। वरना, ख़ुशी-ख़ुशी अपनी संप्रभुता त्याग करें।

''रंग-बिरंगे पंखों सहित भालू!'' दूत ने साथ में जोड़ा, ''सही मायने में बिल्कुल भी भालू कहने लायक नहीं है। राजा जिनकी आज्ञा हमें हमेशा माननी चाहिए, वे भी आकार-प्रकार, व्यवहार तथा रंग-रूप में भी बाकी भालुओं की तरह दिखना चाहिए। पंखों वाला भालू, हमारी प्रजाति के नाम पर अवश्य ही एक कलंक होगा।''

भालू-राजा ने कहा, ''मैं पंख लगाता हूँ, पंख पहनता हूँ, क्योंकि मुझे उससे आत्मसंतुष्टि मिलती है। क्या मैं एक महान् जादूगर या मायावी नहीं हूँ ? लेकिन फिर भी, मैं लड़ूँगा, और अपना स्वामित्व प्रतिपन्न करके दिखाऊँगा। मुझे चुनौती देनेवाले भालू ने अगर मुझे परास्त किया तो वह मेरे स्थान पर राजा बन जाएगा। मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं होगी।''

भालू राजा के दिल को काफी ठेस पहुँची और फिर अपने दोस्त, गल पक्षियों से जाकर मिला, जो अभी भी मृत भालू के शरीर से दावत का मज़ा ले रहे थे, और उन्हें

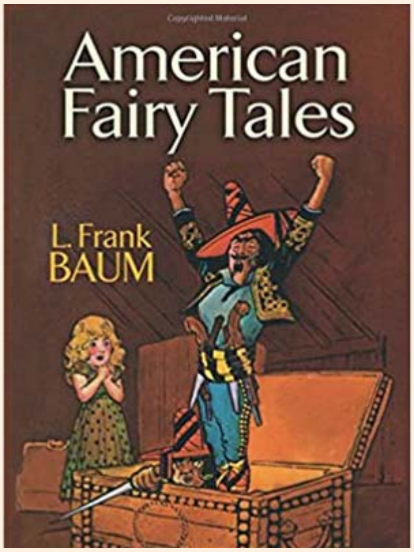

धीरे से अपनी आने वाली लड़ाई के बारे में बताया। ''नि: संदेह, मैं जीतूँगा,'' उसने गंभीरता से कहा। ''फिर भी, मुझे ऐसा लगता है कि मेरे वंशज तथा मेरे प्रजातिगण युक्तिपूर्ण बात भी कर रहे हैं। उनके जैसा आचरण करनेवाला व दिखने वाला कोई बाल वाला भालू-राजा ही प्रजा से अपने आज्ञाकारिता की उम्मीद रख सकता है।''

गल पक्षी की रानी ने कहा, ''मैं कल एक गरुड़ से मिली, जिसने मनुष्यों से भरे एक बड़े शहर से पलायन किया था और उस गरुड़ ने बताया कि उसने एक विशाल-काय ध्रुवीय भालू की खाल देखी थी जो सड़क के किनारे लुढ़की हुई किसी एक गाड़ी के पीछे की सीट पर लटकी हुई थी। मुझे ऐसा लगता है कि वह खाल आपकी ही रही होगी, और अगर आपकी इच्छा हो तो मैं अपने सौ गल पक्षियों को वापस लाने के लिए शहर भेज सकती हूँ।''

''उन्हें जाने दो!'' संक्षिप्तता से भालू-राजा ने उत्तर दिया।

जल्द ही सौ गल पक्षिओं को दक्षिण दिशा की ओर तेज़ी से उड़ते हुए दिखाई दिया। तीन दिनों तक, वे सीधे तीर की तरह उड़ते रहे, जब तक कि वे कुछ बिखरे हुए घरों, गाँवों और शहरों की सीमाओं के अंदर नहीं आए। फिर उनकी तलाश शुरू हुई। सारे गल पक्षी काफी बहादुर, चालाक तथा अत्यंत बुद्धिमान थे। चौथे दिन, वे एक विशाल महानगर जा पहुँचे और सड़कों पर तब तक मँडराते रहे जब तक उन्हें एक गाड़ी के पीछे की सीट पर फेंकी गई एक शानदार सफेद भालू की खाल दिखाई न दी। फिर उन्होंने एक साथ सहसा नीचे की तरफ़ झपट्टा मारा और जैसे ही अपनी चोंच के ज़रिए खाल को ज़ब्त किया, वे तुरंत उड़कर नीले आसमान में अदृश्य हो गए।

आख़िरकार, उन्हें देर हो गई। राजा के अस्तित्व की पहचान स्थापित करानेवाली शानदार लड़ाई सातवें दिन को थी, और उन्हें उस समय तक ध्रुवीय हिमखंडों तक पहुँचने के लिए बिजली की रफ़्तार से उड़ना चाहिए था। इसी बीच पंखोंवाले भालू-राजा ने अपनी लड़ाई की तैयारी शुरू कर दी। बर्फ के छोटे-छोटे टुकड़ों में अपने पंजों को घुसाकर अपने नाख़ूनों को तेज़ कर लिया। फिर एक सील पकड़कर अपने ख़ूँख़ार पीले दाँतों के बीच रखा। एक ही झटके में हड्डियों को कुरेद कर अपने दाँतों का परीक्षण किया। उधर गल पक्षी की रानी ने अपने अनुचरों को भालू राजा के पंखों की सजावट के लिए भेजा ताकि वे उसके शरीर में मुलायम तरीके से बैठ पाए। हर दिन सारे गल पक्षी दक्षिण दिशा के आसमान की तरफ़ उत्तेजित दृष्टि से नज़र डालते रहे, उन सौ गल पक्षियों की तलाश में जो राजा की खाल को वापस लाने गए थे, व्याकुल रहे। अंत में, वह सातवें दिन आया, और उस क्षेत्र के सारे ध्रुवीय भालू-राजा की गुफा के आसपास एकत्रित हुए। उनमें से था अहंकारी ''वूफ़'', जो अपनी सफलता पर अत्यंत ही दृढ़ और आश्वस्त था।

''जब मैं उस पर अपने पंजों से आक्रमण करूँगा तो भालू- पक्षी के सारे कोमल पंख तेज़ी से उड़ जाएँगे, बिखर कर गिरेंगे!'' आकर ही उसने अपनी बड़ाई करनी शुरू कर दी; और यह सुनकर दूसरे सारे भालू हँस पड़े जिससे उसका हौसला दोगुना ज़्यादा हो गया। भालू-राजा को अपनी जनता का उसकी खाल पर श्रद्धा न होने से निराशा हुई, लेकिन इसके बावजूद उसने वीरता के साथ लड़ने का संकल्प किया। वह अपनी प्राकृतिक और महिमामंडित राजसी रूप के साथ अपनी गुफा के मुख्य द्वार से निकलकर अपने अधीनस्थों के समक्ष प्रकट हुआ। जैसे ही उसने अपने दुश्मन का सामना किया, तो उसने एक ऐसी भयानक और दिल दहलाने वाली आवाज़ में गुर्राया कि वूफ़ का कमज़ोर दिल पल-भर के लिए धड़कना बंद हो गया था। उसे एहसास होने

लगा कि उसकी प्रजाति के वयोवृद्ध तथा बुद्धिमान और पराक्रमी भालू-राजा के विपरीत लड़ाई करना कोई हँसी-मज़ाक की बात नहीं थी। अपने दुश्मन से एक या दो भारी वार का आदान-प्रदान करने के बाद, वूफ़ की हिम्मत थोड़ी सी लौट आई थी और उसने अपने विरोधी को एक गरज के साथ खत्म करने को ठान ली।

''पास आओ, भालू-पक्षी!'' वह चिल्लाया। ''नज़दीक आओ, ताकि मैं तुम्हारे पंखों को उखाड़ पाऊँ!''

इस अवज्ञा भरी चुनौती ने भालू-राजा को क्रोध से भर दिया। उसने अपने पंखों को फड़फड़ाना शुरू किया जैसा कि एक पक्षी करता है और देखते ही देखते वह अपने वास्तविक आकार से दोगुना ज़्यादा प्रतीत हो गया। फिर वह दुश्मन की तरफ़ आगे बढ़ा और उसके सिर पर अपने पंजे से एक शक्तिशाली प्रहार किया कि एक ही झटके मे वूफ़ की खोपड़ी अंडे के नाज़ुक छिलके की तरह फट गई और वह ज़मीन पर धड़ाम से गिर पड़ा। एकाएक युद्ध क्षेत्र में उपस्थित सारे भालू डर के मारे खड़े हो गए और अपने गिरे हुए योद्धा को देखकर उन्हें काफ़ी हैरानी हुई।

देखते ही देखते संपूर्ण आसमान को गहरे घने बादलों ने घेर लिया। अचानक उन्होंने देखा कि सौ गल पक्षियों का एक झुंड लयात्मक गति में नीचे उतरा और भालू-राजा के शरीर को शुद्ध सफेद बालों से ढँकी एक खाल से ढक दी, जो अँधेरे में भी चाँदी की तरह चमक रही थी और सारे उपस्थितगण उसे निहारने लगे ! उन्हें एहसास हुआ कि यह वही खाल थी जो उनके महापराक्रमी भालू-राजा के शरीर से मनुष्यगण उखाड़कर ले गए थे।

अपने पराक्रम, वीरता और बुद्धिमत्ता का प्रतिप्रादन कर भालू-राजा वहाँ अपनी सम्पूर्ण भालू प्रजाति के सम्मुख काफ़ी समय तक खड़ा रहा, वही अपनी पुरानी मर्यादा के साथ, सुप्रसिद्ध, और सुसम्मानित। उन्होंने अपने आपको ध्रुवीय हिमखंडों के सर्वश्रेष्ठ स्वामी के रूप में बरकरार रखा। फिर सबने स्वत:स्फूर्त, सर्वसम्मति के साथ अपने झबरे सिरों को झुका कर ध्रुवीय हिमखंडों के भालू-राजा को श्रद्धांजलि दी।

***

गीत

दो गीत

रामरतन अवस्थी

आसमानी छाँव

जल तरंगों पर डगरती जा रही है नाव
ज़िंदगी से भी बड़ी है आसमानी छाँव।

सोचते हो, तोड़ लाओगे, गगन-नक्षत्र
चाँदनी बिखरा सकोगे, धरा पर सर्वत्र;
पर त्रिशंकु सरिस, अधर में झूलते हो क्यों
डाल से चूका हुआ, कोई विवश कपि ज्यों
नगर पाने की ललक में छोड़ बैठे गाँव;
ज़िंदगी से भी बड़ी है, आसमानी छाँव।

मैं नहीं मैं किन्तु तुम भी तो नहीं हो तुम
आदमीयत की ठसक में गवाँ बैठे दुम
बात कड़वी है, मगर समझो इसे सच्ची
जंग लड़ने को तुम्हारी उम्र है कच्ची।
खोज पाओगे कहाँ, शरणदायी ठाँव?
ज़िंदगी से भी बड़ी है, आसमानी छाँव।

रास्ते अनगिन, मगर मंज़िल सदा से एक है
ठौर पर पहुँचे वही, जो साहसी अरु नेक है
लोग हैं कुछ मानते हैं, स्वयं को कर्त्ता,
विघ्न कैसे हर सकेंगे, विघ्न के हार्त्ता?
व्यर्थ जाएँगे तुम्हारे, शकुनि जैसे दाँव,
ज़िंदगी से भी बड़ी है, आसमानी छाँव।।

जल तरंगों पर डगरती जा रही है नाव
ज़िंदगी से भी बड़ी है आसमानी छाँव।

***

सान्ध्य-गीत

बटोही! उतरी नभ पर शाम,
साँझ का आ पहुँचा पैग़ाम।

द्रुम-दल, तृण-दल, नवल कमल-दल
सकल हुए श्री हीन,
जिमि उडुगन मुरझाये से-
दिखते हैं चन्द्र विहीन
निशा फिर व्यर्थ हुई बदनाम
बटोही! उतरी नभ पर शाम।

जीवन क्या है-मन के सपनों-
का अलबेला मेला,
जन संकुल कोलाहल में भी,
मानव खड़ा अकेला;
अजब यह सुख-दुख का संग्राम,
बटोही! उतरी नभ पर शाम।

पंचतत्व से मण्डित यह-
धरती हम सबकी माता
चौरहे पर खड़ा मुसाफ़िर
ऊँचे स्वर में गाता;
सत्य है मात्र राम का नाम,
बटोही! उतरी नभ पर शाम।

बटोही! उतरी नभ पर शाम,
साँझ का आ पहुँचा पैग़ाम।

***

रामरतन अवस्थी, से.नि. प्राचार्य
केयर पब्लिक स्कूल, ओवर ब्रिज के पास, मुख़्यार गंज, सतना, म.प्र. 485001

व्यंग्य

बारीक और मोटे व्यंग्य पर विमर्श

धर्मपाल महेंद्र जैन

धर्मपाल महेंद्र जैन
1512-17 एनडेल ड्राइव M2N2W7,
कनाडा
मोबाइल- + 416 225 2415
ईमेल- dharmtoronto@gmail.com

आज मैं एक विशेषज्ञ आलोचक से मिला। विशेषज्ञता के इस दौर में वे व्यंग्य पर विमर्श करते हैं। लेखक बिरादरी जिस शाब्दिक मारपीट को व्यंग्य कहती है, वे उस पर नुक्ता-चीनी करते हैं और वहाँ से वे सिद्धांत प्रतिपादित करते हैं। आलोचना करो और सिद्धांत प्रतिपादित नहीं करो तो आलोचना शास्त्रीय नहीं होती, अकादमिक नहीं होती और सम्मान लायक तो होती ही नहीं। ऐसे में आलोचक को सतर्क रहकर शास्त्रीय विमर्श करना होता है। आज बलि का बकरा मैं था। आलोचक जी ने मुझे लपेट लिया।

बोले, ''तुम बहुत बारीक व्यंग्य लिखते हो। ऐसे महीन व्यंग्य कर्म का नोटिस लेना बहुत कठिन होता है। हम हों या पाठक, सब स्पीड-रीडिंग करते हैं। वाक्य को बीच में से पकड़ते हैं और दूसरे वाक्य पर कूद जाते हैं। दूसरे वाक्य में किसी सपाट जगह कूद गए तो वहाँ से सीधे अगले पैरेग्राफ पर जंप मार जाते हैं। तुम समझ रहे हो न, समकालीन लेखन कैसे पढ़ा जाता है?''

मैं क्या जवाब देता, पढ़ने के मामले में मैं निपट अनाड़ी ठहरा। मैं एक-एक शब्द क्रमश: पढ़ता हूँ, नुक्ते पढ़ता हूँ, अनुस्वार पढ़ता हूँ, कॉमा पढ़ता हूँ, तब कहीं पूर्ण विराम आता है। पैरेग्राफ पूरा करते-करते उबासी आने लगती है। पेज पूरा हो जाए बस इसी प्रत्याशा में झपकी लेते-लेते भी साधनारत रहता हूँ। मैंने अपनी पठन विधि उन्हें बताई तो वे बहुत हँसे।

बोले- ''तुम वैसे आदिमकालीन पाठक हो, जब महीने में एक-दो किताबें पढ़नी होती थीं। इस काल में हर सुबह-शाम एक किताब पढ़नी होती है, उस पर लिखना होता है और तमाम तरह के ट्रैफिक नियमों का पालन करते हुए नौकरी पर जाना होता है, वहाँ पहुँच कर

सोशल मीडिया पर हिसाब-किताब चुकाना होता है। जिस तरह तुम पढ़ते हो उस तरह अब अनपढ़ लोग पढ़ते हैं।''

उनके मूल्यांकन से मुझे बड़ा धक्का लगा। धिक्कार सहन करके लेखक मौन रहे तभी सार्थक विमर्श संभव है।

मैंने उन्हें याद दिलाई, आप बारीक व्यंग्य की बात कर रहे थे, तो वे जोश में आ गए और बोले, ''हाँ तुम्हारा व्यंग्य बारीक है। क्रिया को विशेषण बना देने से या विपक्ष को दंगाइयों की उपमा दे देने से कोई व्यंग्य बनता है क्या? हम जब एक पैरेग्राफ से सीधे दूसरे पैरेग्राफ पर जंप लगाते हैं तो ऐसी बारीक बातें दिखती ही नहीं है। उदाहरण के लिए तुमने लिखा, भीड़ ने मार-मार कर उसकी ही नहीं लोकतंत्र की आत्मा की भी हत्या कर दी। तुम्हें स्पष्ट रूप से ऐसे लिखना चाहिए था कि सब राष्ट्रवादी मिलकर भीड़ बन गए। उन्होंने देशद्रोही के कपड़े फाड़ दिए और उसे नंगा कर दिया। आदमी नंगा हो तो उसकी संस्कृति, उसके संस्कार, उसकी भाषा, उसकी आस्था, सब एक ही जगह पर साफ-साफ दिखती हैं। भीड़ को संशय नहीं था पर यह हमारी सभ्यता का प्रश्न था। इसलिए उन्होंने चाकुओं से गोद-गोद कर उसकी आत्मा निकाली। वह आत्मा नहीं थी, रूह थी। रूह को जय बोलना भी नहीं आता था। इसलिए उन्होंने उसकी भी हत्या कर दी। इतने विस्तार से समझा कर लिखोगे तो कहीं तो व्यंग्य पकड़ में आ ही जाएगा। समझे कि नहीं?''

मैंने साफ-साफ कहा, जी समझ गया, तो वे और समझाने लगे। ''व्यंग्य को मोटा होना चाहिए। मेरे इस उदाहरण में शब्दों के प्रयोग देखो- राष्ट्रवादी, देशद्रोही, नंगा, चाकू, रूह जैसे शब्द वाक्य में पिरोए गए हों तो पाठक का ध्यान फटाक से पकड़ते हैं और पाठक को भावनात्मक रूप से अपने साथ बहा ले जाते हैं।''

मैं उनकी विवेचना से नतमस्तक हो गया तो वे बोले- ''व्यंग्य बिल्कुल भी छायावादी नहीं होना चाहिए कि वाक्य में लिखा कुछ और हो व उसका अर्थ कुछ और निकल रहा हो। किसी के पास इतना समझने का न तो समय है, न ही बुद्धि। इसलिए व्यंग्य को साफ-साफ कहना चाहिए, यथार्थ कहना नहीं आए तो अति-यथार्थ कह देना चाहिए। लोग मंदी-मंदी चिल्ला रहे हों तो कहना चाहिए कि हम पाँच ट्रिलियन की इकोनॉमी बना रहे हैं। मज़दूर, मजबूर हो कर पलायन कर रहे हों तुम्हें उन्हें रोक कर बीस लाख रुपयों में आए शून्यों को गिनवाना चाहिए। व्यंग्य समझ रहे हो न?''

मैं क्या कहता। साथी लोग अब राजनीति पर व्यंग्य नहीं लिखते। राष्ट्रवादी सरकार हो तो हर व्यंग्यकार को अराष्ट्रवादी की तरह देखा जाता है। राजनीति पर व्यंग्य लिखना ऐसा हो गया है जैसे पिछवाड़े की नाली की सफाई करना। सुबह सफाई करो तो शाम तक फिर से जाम लग जाता है। लोगों को पिछवाड़े से निरंतर आती बदबू स्वीकार है। बदबू न आए तो वे नया कचरा डाल कर पिछवाड़े को समृद्ध कर देते हैं। अब ऐसी राजनीति पर व्यंग्य लिखने से अच्छा है कोरोना वायरस चालीसा लिखना।

वे अपना विमर्श देने लगे, बोले ''व्यंग्य करना किसी की अप्रत्यक्ष पिटाई करने जैसा है। किसी को पीट कर आप कब तक अपने घर में सुरक्षित बैठ सकते हो, कभी तो बाहर निकलोगे। बस बाहर निकलकर सुरक्षित रहना हो तो तटस्थ रहना आना चाहिए। कोई हाय-हाय कहे तो मुट्ठी बाँधकर हाथ ऊपर उठा दो। कोई जय बोलने को कहे तो मुट्ठी वाली वही मुद्रा दोहरा दो, मुस्कुरा दो और तटस्थ देखते रहो।''

मैंने कहा - तटस्थ रहकर व्यंग्य जैसा मारक काम नहीं हो सकता। पत्नी और मित्रों पर मैंने इतने व्यंग्य लिख डाले हैं कि मैं अपना नया व्यंग्य उन पर मारूँ उसके पहले ही वे बाकी वाक्य पूरा कर देते हैं। मेरा तीर निकल ही नहीं पाता कि उसे भेद दिया जाता है। खुद पर व्यंग्य लिख-लिख कर मैंने अपनी जीवन-कथा इतनी दयनीय बना ली है कि अपने बारे में एक-दो अच्छे वाक्य बोलना अपराध-सा लगता है। सच कहूँ तो लिखने के ढेरों अर्थहीन विषय साथी लोग कबाड़े में से निकाल लाते हैं और मरम्मत करते हुए उनमें चुटकुले सजा देते हैं। मैं शालीन व्यंग्य लिखने के लिए किसी गुलाब के फूल को पकड़ता हूँ तो भी उँगली में काँटे घुस जाते हैं। बिना वैचारिक ईमानदारी के व्यंग्य लिखना सूचना प्रसारण विभाग की विज्ञप्ति लिखने जैसा है। इतना रोना रोकर कोई व्यंग्य लिख भी ले तो पाठक से उसे करुणा की ही उम्मीद करनी चाहिए किसी व्यंग्य-धार से उपजी कुलबुलाती मुस्कुराहट की नहीं।

अपनी कुंठा बता कर मैं अब थका-हारा व्यंग्यकार लग रहा था। उठने लगा तो उन्होंने पकड़ कर बैठा लिया। समझाते हुए बोले- ''मेरे कहे का बुरा मत मानना। जबसे एक नामवर विदा हुए हैं, बीस-तीस आलोचक एकदम पदोन्नति पा गए हैं। आलोचकों की माँग अचानक बढ़ गई है। लिखा तो लगभग वैसा ही जा रहा है जैसा चालीस साल पहले लिखा जा रहा था। तब के बुज़ुर्ग अब स्मृति शेष हो गए हैं और तब के युवा अब जुगाली करने में प्रवीण हो गए हैं। आज के युवाओं को साहित्य में सब कुछ साफ-साफ दिख रहा है। लेखक, लेखक रहकर किसी में प्राण भरने के लिए शॉक नहीं दे सकता पर वह आलोचक बन कर शॉक दे सकता है और सड़े अंग काट भी सकता है। आलोचना रचना के समानांतर नहीं चलती, रचना दंडवत् हो तो आलोचक लंबवत् लिखते हैं। वैसे भी आलोचकों की बात का यदि कोई बुरा मानता तो हिन्दी साहित्य की दशा और दिशा कुछ और होती। तो भाई, बारीक व्यंग्य जो है वह प्रवाह के साथ बह जाता है, कोई नोटिस नहीं ले पाता। मोटा व्यंग्य हो तो अटक जाता है, छन्नी की परत पर ही टिक जाता है और सबको उसका नोटिस लेना पड़ता है। यहाँ तक कि चुके हुए संपादक को भी मोटा व्यंग्य साफ दिखता है। अब जान लो कि हिन्दी के आठ-दस संपादक ही हैं जो चुके हुए नहीं हैं। मोटा व्यंग्य नहीं लिखो तो कितनी बड़ी जमात तुम्हें नकार देती है।'' मुझे यह नया विमर्श समझ में नहीं आ रहा था। वे शायद विमर्श के नाम पर भड़ास निकालने लगे थे।

मैंने हिम्मत जुटा कर पूछा- ''सर, चुके हुए संपादक का क्या मतलब है ज़रा बताएँ।''

वे हँसने लगे और बोले- 'तुम विदेश में रहते हो, हिन्दी की नई धारा तुम क्या जानो। राजनीति में जैसे लालू हैं, राबड़ी हैं, वैसे ही हिन्दी में.........

***

काँकेर का एक कार्य-शिविर

प्रताप सहगल

प्रताप सहगल
एफ-101, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-110027
मोबाइल- 9810638563
ईमेल- partapsehgal@gmail.com

काँकेर, आपने नाम ज़रूर सुना होगा। छत्तीसगढ़ के बस्तर ज़िले का पड़ोसी राज्य काँकेर। काँकेर छत्तीसगढ़ के दो बड़े शहरों रायपुर और जगदलपुर के बीच अपेक्षाकृत एक छोटा सा शहर। हर शहर की तरह से इस शहर के पास भी अपना इतिहास है। काँकेर महल आज भी इस बात की गवाही देता है कि काँकेर कभी एक रियासत थी। उससे भी पहले यहाँ चालुक्य वंशियों एवं काँद्रावंशिओं का शासन रहा। उससे भी पहले यह इलाक़ा हमारे पौराणिक/ऐतिहासिक दण्डकारण्य का ही हिस्सा था। काँकेर के साथ ही कंक, लोमेश, शृंगी एवं अंगिरा ऋषियों को जोड़ा जाता है। बाद में बौद्धों का प्रभाव हुआ। नक्सलवाद का प्रभाव तो हमारे सामने की ही बात है। मैंने भी काँकेर का केवल नाम ही सुना था। देखा पहली बार।

सोलह-सत्रह मई, 2017। मई, काँकेर में प्रखर दोपहरी का महीना। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा आयोजित एक बाल-शिविर में मुझे बुला लिया गया। कुछ दिन पहले ही लालित्य ललित का फ़ोन था कि मुझे और गुरचरण सिंह को काँकेर में हो रही कार्यशाला में बाल-लेखन के विशेषज्ञ के रूप में जाना है।

सुबह-सवेरे गुरचरण सिंह और मैं दिल्ली के हवाई अड्डे की ओर भागे जा रहे थे। वहाँ हमें रायपुर के लिए दिन की पहली उड़ान पकड़नी थी। नौ बजे तक हम लोग रायपुर में थे। रायपुर पहली बार आ रहा था। हवाई अड्डा दिल्ली के हवाई अड्डे की अपेक्षा बहुत छोटा है।

हम पहली मंज़िल से नीचे उतरते हैं। एक बड़ा सा हाल। हम दोनों अपना-अपना सामान लेने के लिए घूमती हुई सामान-पट्टी के सामने खड़े हैं कि ऊपर से एक हाथ हिलता हुआ दिखाई देता है। यह हाथ दिविक रमेश का था। दिविक रमेश काँकेर की कार्यशाला में अपनी भूमिका अदा करके दिल्ली लौट रहा था। कल हम दोनों का सत्र था। नीचे के बड़े हाल को दो हिस्सों में बाँट दिया गया था। एक आगमन। दूसरा प्रस्थान। हम आगमन वाले में थे और दिविक रमेश प्रस्थान में। बस हाथ हिले। मुस्कराहटों का आदान-प्रदान हुआ। हम लोग हवाई अड्डे से बाहर आ गए।

गाड़ी तेज़ी से हम दोनों को लेकर काँकेर की ओर भागी जा रही थी। धीरे-धीरे धूप

तीखी हो रही थी। बीच-बीच में ललित का फ़ोन आ जाता। कुछ हिदायतें, कुछ जानकारियाँ। हम लोग एक बजे करीब होटल पहुँच गए। ललित भी वहाँ आ गया था। हमें अलग-अलग कमरों में ठहराया गया। होटल छोटा लेकिन साफ-सुथरा था। ऐसा ही उस होटल का रेस्तराँ था। दोपहर बाद प्रत्यूष गुलेरी का सत्र था। ललित का आग्रह था कि हम दोनों भी वहीं चलें और कार्य-शिविर का कुछ जायज़ा ले लें। मन आराम करने का था। मैंने कहा तुम चलो, हम आते हैं। हम दोनों ने कुछ देर आराम किया और कार्य-शिविर में पहुँच गए।

यह काँकेर का एक स्कूल था। वैसा ही स्कूल जैसा कि छोटे शहरों में सरकारी स्कूल होता है। कुछ कमरे, कच्चा मैदान, एक बड़ा हाल। इसी हाल में कार्यशाला हो रही थी। जैसे ही हम अंदर पहुँचे, वहाँ बैठे लगभग दो-अढ़ाई सौ बच्चों ने करतल-ध्वनि से हमारा स्वागत किया। यह करतल-ध्वनि आम करतल-ध्वनियों की तरह से नहीं थी। इस करतल-ध्वनि में एक लय थी, एक सुर था, जैसे कि कोई हाथों से मधुर स्वर में गा रहा हो। ध्वनि के बाद कहते स्वागतम् और फिर ध्वनि। इस ध्वनि में संगीत का अनुशासन था, कानों को प्रिय लगने वाली गूँज थी। इस अंदाज़ में स्वागत पहले कहीं नहीं मिला। मैं प्रभावित था। मंच चढ़े। मंच के पीछे तीन-चार कूलर घनघना रहे थे लेकिन उस गरमी का मुकाबला करना उनके लिए भी मुश्किल हो रहा था।

गुलेरी अपने अनुभव बता रहे थे। कुछ-कुछ हम दोनों ने भी बोला और शेष कल पर छोड़ दिया। बच्चों के इस कार्य-शिविर में आठ साल से लेकर चौदह साल के बच्चे थे। लड़कियाँ कम, लड़के ज़्यादा। शाम भले ही ढलने लगी थी लेकिन गरमी का प्रकोप कम नहीं हो रहा था। हम लोग होटल लौट आए। होटल नैशनल हाइवे पर ही स्थित था। यह काँकेर का सबसे बड़ा बाज़ार था। दुकानों और एवं गाड़ियों की भरमार के कारण हाइवे एक छोटी सड़क में बदल गया था। हमने कुछ देर आराम किया।

अँधेरा घिर आया। रायपुर के हवाई अड्डे पर दिविक ने बता दिया था कि शाम का सामान ललित के कमरे की आलमारी में रखा है। मैं शाम का सामान अपने साथ लेकर चलता हूँ। गुरचरण सिंह सूफी है। एक कार्टूनिस्ट उदय शंकर भी आ चुका था। हम लोग ललित के कमरे में ही जुटे। आचमन किया और आचमन करते हुए अपने-अपने अंदाज़ में सबका प्रवचन भी हुआ। खाने के लिए रेस्तराँ होटल में ही था। अच्छा। साफ-सुथरा। निरामिष और सामिष दोनों तरह का भोजन उपलब्ध। बतियाते हुए खाते रहे। दिन भर के थके हुए थे इसलिए नींद भी टूट-टूटकर आती रही।

आज मेरा और गुरचरण सिंह का सत्र था। मुझे नाटक पर बोलना था। ललित ने सुपरलेटिव लगाते हुए हम दोनों का परिचय दिया। बाल नाटकों की बात करते-करते अचानक मेरे मन में कुछ कौंधा। यहाँ एक ऐसा अनुभव हुआ, जिसे मैं दर्ज करना चाहता हूँ। कौंधा कि नाटक तो वस्तुत: करने की चीज़ है। बातों से बात निकली कि अगर ऐसा है तो फिर मैं ही बच्चों से नाटक क्यों न करवाऊँ? बच्चे उत्साहित थे। मेरे सामने समस्या समय की थी। डर था कि यह बच्चे कुछ कर सकेंगे या नहीं? नाटक देखने और लिखने का अनुभव तो मेरे पास था लेकिन नाटक मंचित करवाने, निर्देशित करने का अनुभव मेरे पास नहीं था। ललित ने ही जब कहा कि आप बच्चों से कुछ करवाइए, तो कुछ देर तो मैं ठिठका रहा। गुरचरण सिंह ने भी ललित का समर्थन किया। अब मैं पूरी तरह से फँस चुका था। लेकिन मैंने इसे चुनौती को स्वीकार किया। गुरचरण सिंह ने आश्वासन दिया कि वे मेरी अनुपस्थिति में शेष बच्चों को नाटक के बारे में कुछ बताते रहेंगे। मुझे सैद्धांतिक ज्ञान और व्यवहारिक ज्ञान में से एक चुनना था। मैंने बाद वाला चुना।

दो-अढ़ाई सौ बच्चों में से कुछ ऐसे बच्चों को छाँटना, जो इतने कम समय में नाटक कर सकें, मेरे लिए पहली चुनौती थी। उन्हें ढूँढ़ना और इतने कम समय में प्रशिक्षित करना दूसरी चुनौती। मैंने सबसे पहले उन बच्चों को अलग किया तो संगीत का कोई भी वाद्य बजा सकते थे। बच्चों से मैंने पहला सवाल किया कि क्या तुम ज़ोर से चीख सकते हो। कुछ हाथ उठे। उनकी चीखें सुनीं, देखा परखा और उन्हें भी अलग किया। उसके बाद उन्हीं बच्चों को मैंने तुरंत भाव बदलने के लिए कहा जैसे कि हँसो, वे हँसे, रोओ, वे रोने लगे, गुस्सा करो, वे क्रोधित होने लगे, घूँसा मारो, वे हवा में घूँसा मारने लगे। इस तरह से अलग-अलग भाव अभिव्यक्त करने से मुझे अनुमान हो गया कि कौन बच्चा नाटक कर सकता है। वैसे तो हर बच्चा नाटक कर सकता है लेकिन मेरे पास तैयारी के लिए समय इतना कम था कि मैं सबको बारी-बारी से नहीं जाँच सकता था। इस तरह से मैंने लगभग बीस बच्चों की एक टीम छाँट ली। उनमें दो लड़कियाँ थीं, शेष सभी लड़के। कुछ छोटे, कुछ बड़े।

मैंने एक घंटे का समय माँगा। एक घंटे में नाटक करना सिखाना और मंच पर उतरना कोई खाला जी का घर है? वो भी तब, जब न मंच हो, न प्रकाश-व्यवस्था या ध्वनि की कोई व्यवस्था। न कॉस्ट्यूम, न संगीत। न मेकअप, न कोई प्राप्स। मेरे पास केवल बच्चे थे, उनके शारीरिक अवयव, उनकी आवाज़ और उनकी आवाज़ का थ्रो। रिहर्सल के लिए जगह चाहिए। सब कमरे बंद। ललित ने ही जल्दी से चौकीदार को पकड़कर एक कमरा खुलवाया। कमरे के अंदर घुसे, गर्मी का एक तेज़ भभका ही पस्त करने के लिए काफी था। कमरा गरम। बाहर पारा सैंतालीस या अड़तालीस डिग्री सेल्सियस। पानी की व्यवस्था भी नाकाफी। सोचिए कैसे तैयार होगा नाटक, वह भी केवल एक घंटे में। रंगकर्मी हिम्मत नहीं हारते। मैंने सभी बच्चों को तीन ग्रुपों में बाँटा। कुछ गतिविधियाँ। फिर सभी को एकजुट करके हाथ मिलाना, आगे से आगे संकेत देना, घूमना, पकड़ना, छोड़ना यानी लगभग पन्द्रह मिनिट मैंने उनसे वो सब करवाया, जिससे वे वार्म अप तो होते ही, साथ ही एक-दूसरे पर विश्वास करना भी सीखते। यह बच्चे आदिवासी थे लेकिन अब शहरी हो चुके थे। उनकी परंपराएँ और उनके कलात्मक कौशल उनके साथ थे। उनके इन्हीं कौशलों का मुझे इस्तेमाल करना था।

नाटक कौन सा हो? मेरे पास मेरा अपना ही एक नाटक था छू मंतर। नाटक के पहले ही दृश्य में मदारी है, जमूरा है, तमाशा है, तमाशा देखने वाले लोग हैं। शुरूआत गीत से ही होती है। फ़िर कुछ संवाद। मैंने तय

किया कि इतने कम समय में केवल पाँच-सात मिनिट का नाटक ही हो सकता है। इतना भी हो जाता तो क्या कम था। मैं अब सीधा संवादों पर आ गया। बच्चों की ब्लाकिंग की। उन्हें उनकी मूवमेंट समझाईं। संवाद और मूवमेंट साथ-साथ करने थे। समय के अभाव के कारण चुनौती गहरी थी। बच्चे रुचि ले रहे थे लेकिन अभी भी उनमें तालमेल नहीं हो पा रहा था। पूर्व-दृश्य का गीत था-

छू मंतर, छू मंतर
जंतर-मंतर कली कलंतर
जादू-टोना सभी चलंतर
छू मंतर, छू मंतर।

इसमें ध्वनि भी है और मूवमेंट की गुँजाइश भी। गाना तो है ही। भारत में बच्चे चाहे किसी भी प्रदेश के हों, मदारी और जमूरे का खेल उन्होंने अपने जीवन में कभी न कभी और कहीं न कहीं ज़रूर देखा होता है। इसलिए इन पंक्तियों के साथ उनका जुड़ाव तत्काल हो गया। उन्हें सामूहिक तौर पर घूम-घूम कर जो मूवमेंट बताई गई थी, वे गा-गाकर करने लगे। मदारी का गाना था लेकिन मैंने सभी बच्चों को इसमें शामिल कर लिया। सामूहिक ध्वनि का अपना सम्मोहन होता है। यह बात मैं उन्हें उनकी तालियाँ बजाने के अंदाज़ का उदाहरण देकर समझा चुका था। उन्होंने तेज़ी से शब्द पकड़े और लय भी। हाथ भी चलने लगे और पाँव भी। बच्चों का आत्मविश्वास जागने लगा। मुझे इसी की ज़रूरत थी। फिर कुछ संवाद। हर बच्चे की भागीदारी। कोई मदारी, कोई जमूरा शेष सक्रिय तमाशबीन।

रिहर्सल के दौरान देखता हूँ कि ललित ने भी कमरे में प्रवेश किया और जारी रिहर्सल का वीडियो बनाने लगा। आज जब उस वीडियो को देखता हूँ तो हैरानी होती है कि इतने कम समय में नाटक कैसे तैयार हो गया। हम रिहर्सल करते रहे, ललित छोटा सा वीडियो बनाकर लौट गया। हमें भोजनावकाश के बाद अपना नाटक प्रस्तुत करना था।

कुछ बच्चे अपने संवाद अभी भी याद नहीं कर पा रहे थे। बार-बार भूल जाते। एक बच्चे की स्मृति बहुत अच्छी थी। उसे अपने संवादों के साथ दूसरों के संवाद भी याद होते जा रहे थे। वह प्राम्प्ट करने लगा। मैंने उसे मना किया। इस तरह दूसरों को बैसाखी मिल जाएगी और वे अपने संवादों को याद करेंगे ही नहीं। लगभग एक घंटे की तैयारी में, जिसमें रिहर्सल भी शामिल थी, हमने सात मिनिट का नाटकांश तैयार कर लिया। जैसा भी हुआ, बच्चों को मैं विश्वास दिलाता रहा कि वे बहुत अच्छा कर रहे हैं। इतने कम समय में कोई कर नहीं सकता। उनका आत्मविश्वास बढ़ गया और वे बताई गई मूवमेंट से इतर भी कुछ मूवमेंट करने लगे। मैंने उन्हें टोका नहीं।

सब नाटक देखने की इंतज़ार में थे। श्रव्य की अपेक्षा दृश्य हमेशा अधिक रुचि कर और अधिक प्रभावशाली होता है। यह बात सब जानते हैं। बच्चे भी समझते हैं। जिस मंच पर हम लोग बैठकर अपनी बातें कह रहे थे, उसे खाली करवा लिया गया। पीछे चलते कूलर बंद कर दिया गए ताकि संवाद अंत तक सुनाई दे सकें। शुरूआत तालियों से। फिर शुरू हुआ छू मंतर। बच्चे घूम-घूम कर गाने लगे। न कोई कास्ट्यूम, न लाइट, न संगीत। जो भी था, उनकी भाव-भंगिमाएँ और आवाज़। गीत हुआ, संवाद भी हुए। और नाटक का वह हिस्सा हिट हो गया। हैरानी इस बात की नहीं थी कि नाटक हो गया, हैरानी इस बात की थी कि इतने कम समय में और बिना किन्हीं सुविधाओं के हो गया। मैं भी कोई प्रशिक्षित नाट्य-निर्देशक नहीं और न ही वे बच्चे प्रशिक्षित अभिनेता थे। लेकिन सब लोगों ने बहुत पसंद किया और चकित भी हुए। साथ ही यह बात सामने आई कि बच्चों को अगर कुछ सिखाना है तो उन्हें भाषण देने के बजाय उनसे कुछ करवाओ। व्यक्ति करके जितना सीखता है, उतना सिद्धांत पढ़कर नहीं सीखता। मेरे लिए यह एक ऐसी प्रयोगशाला साबित हुई, जिससे मुझे भी बल मिला। कहा जा सकता है कि इस तरह के प्रयास जहाँ बच्चों के मन के क्षितिज का विस्तार करते हैं, वहीं उनकी कल्पनाओं की उड़ान भरने में सहायक भी होते हैं। जहाँ तक मेरा प्रश्न है यह अनुभव मेरे जीवन का एक अलग और अद्भुत अनुभव था, जिसे मन के किसी कोने में आज भी सँजोया हुआ है। इस इंतज़ार में कि एक दिन मैं अपने नाटक का निर्देशन भी स्वयं करूँगा।

***

गीत

ज़िंदगी गीत है

बुधराम यादव

ज़िंदगी गीत है, ज़िंदगी मीत है,
ज़िंदगी जंग है हार है जीत है।

स्वयं से हर घड़ी युद्ध हम लड़ रहे
मौत को रोज़ लाखों वरण कर रहे।
लक्ष्य संकल्प साधे अडिग हम चलें,
उम्र के वक्त पल-पल क्षरण कर रहे।
धूप है कुछ कभी, तो कभी शीत है,
ज़िंदगी गीत है ज़िंदगी मीत है।

लोग फिर भी अकारण हैं अकड़े हुए,
मुक्ति के बोध की डोर पकड़े हुए।
धर्म हैं, पंथ हैं, वेद हैं, ग्रंथ हैं।
जानकर भी अजाने से जकड़े हुए।
सोच है तो सही चाल विपरीत है,
ज़िंदगी गीत है ज़िंदगी मीत है।

देह से हो परे नेह जो ना धरे
संकटों से कभी कोई वह क्यों डरे
जो लुटाते यहाँ- पाते सारा जहाँ
व्यर्थ में पाने की ज़िद वह क्यों करे।
उम्र यह बाँटने के लिए प्रीत है
ज़िंदगी गीत है ज़िंदगी मीत है

ज़िंदगी गीत है, ज़िंदगी मीत है,
ज़िंदगी जंग है हार है जीत है।

***

बुधराम यादव
'मनोरथ', एमआईजी- ए/8, चंदेला नगर,
रिंग रोड नंबर 2, बिलासपुर, छत्तीसगढ़
मोबाइल- 9755141676

संस्मरण

हरिशंकर आदेश रेगिस्तान में तृप्ति का एक घूँट

प्रेम जनमेजय

प्रेम जनमेजय
73 साक्षर अपार्टमेंट्स, ए-3 पश्चिम विहार, नई दिल्ली- 110063
मोबाइल- 9811154440
ईमेल- premjanmejai@gmail.com

यदि मुझसे कोई कहे कि एक वाक्य में अपनी विदेश प्रवास के लाभ को अभिव्यक्त करो तो मैं यह ही कहूँगा ''ऐसे अप्रतिम, विश्वसनीय, आत्मीय एवं अलभ्य दोस्तों की प्राप्ति जो मुझे भारत रहते शायद न मिलते।'' एक ऐसे ही अभिन्न मित्र के रूप में हरिशंकर आदेश नामक जीव का मेरे जीवन में प्रवेश मेरी कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों का बड़ा हिस्सा है। जब किसी मरीचिका में फँसा मन, अपनी तमाम अनथक कोशिशों के बावजूद, थककर चूर हो जाने पर, अतृप्त दृष्टि से दूर तक एक बूँद तलाश रहा हो और उसे तृप्ति का एक भरपूर घूँट मिल जाए तो जीवन जैसे सार्थक हो जाता है। कुछ ऐसा ही मुझे हरिशंकर आदेश से, जिन्हें अमेरिका, कैनेडा और कैरेबियाई देशों में फैला उनके प्रशंसकों का व्यापक जन समूह प्रोफ़ेसर आदेश, गुरुजी आदि के संबोधनों से जानता है और जिन्हें मैं ऋषिवर आदेश कहता हूँ, से प्राप्त हुआ। मेरा इस वाक्य में हो सकता है आपको अतिरेक लगे और कुछ 'अभिन्न मित्रों' को मेरे किसी स्वार्थ-साधन की भूमिका, पर आप इतनी जल्दी यदि राय न बनाएँ तो मुझपर तो कृपा होगी ही, आप स्वयं पर भी कृपा करेंगें, क्योंकि अक्सर जल्दबाज़ी में, और वह भी मित्रों के बारे में, बनाई गई राय अक्सर शर्मिंदगी उठाने का कारण बनती है। वैसे यदि आप भी, बिना किसी दुराग्रह के, इस व्यक्तित्व के पूरे इतिहास को जानने के साथ मिले हैं और एकांतिक क्षणों में आपने इसे कभी कुरेदा हो तो शायद आप मुझसे सहमत हो सकें। यह दीगर बात है कि आप इस व्यक्तित्व को कुरेदने की कोशिश करें और आपको पार्श्व में कहीं गीत सुनाई दे जाए 'जाने क्या ढूँढ़ती रहती है ये आँखें मुझमें, राख के ढेर में शोला है न चिंगारी है।'

एक सही अनुपात में ढली, विराटता के भाव को प्रकट करती गौरवर्णी देह, और चश्में के पीछे से झाँकती स्नेहिल आँखों को कभी पढ़ने का प्रयत्न कीजिए। लंबी थिरकती हुई अँगुलियों और विशाल हृदय की धड़कन के संगीत को सुनने के लिए कान लगाईये। आपके सद्भाव के आगे बिछने वाले और आपकी उपेक्षा को भी वरदान मानने वाले मनोभावों के अंदर ज़रा उतरिए तो सही। बिना किसी आदान-प्रदान की भावना से प्रेरित अपना कुछ भी

देने वाले इस व्यक्तित्व की कभी परीक्षा तो लीजिए। शायद आपको मेरे कथन में अतिश्योक्ति न लगे। मैंने इस व्यक्तित्व को लगातार, लगभग चार वर्षों तक पढ़ा है।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्ष के प्रथम माह, मकर संक्रांति, 14 जनवरी, 1999, में जब अतिथि आचार्य के रूप मैं त्रिनिदाद के लिए चला तो पहली बार एक लम्बी हवाई-यात्रा के सुखद अनुभव पाने की कल्पना से अधिक भरा हुआ था और अपनों से दूर एक अनजान देश जाने की आशंका से कम। यह मेरा पहला और संभवत: आख़िरी विदेश प्रवास था। अन्य अनेक भारत वासियों की तरह विदेश जाने का भूत बचपन से ही मुझपर सवार था। मुझे अभी भी याद है 1969 की गर्मियों की छुट्टियों की वह दोपहरी जब मैं अपने कुछ दोस्तों के साथ अपने ही एक दोस्त के यहाँ तीन किलोमीटर पैदल, यह देखने के लिए गया था कि लंदन से आए उसके मामा देखने में कैसे लगते हैं। फॉरेन का भूत हम लोगों के दिमाग में इस कदर हावी था कि हमें लगता कि विदेश से आने वाला व्यक्ति कुछ अजूबा होता है। उन दिनों सरोजिनी नगर की सब्ज़ी मार्केट में पास के चाणक्यपुरी दूतावास से आई रूसी महिलाएँ जब सब्ज़ी खरीदते दिखतीं तो आश्चर्य होता कि यह भी आम आदमी की तरह सब्ज़ी खरीद रही हैं। किसी भी गोरी चमड़ी वाले को रोता देखकर आश्चर्य होता कि, अरे यह भी रोता है। विदेशी के सामने बिछ जाने का मन करता है। यह बिछना अकारण नहीं है, बस उस कृपा दृष्टि के लिए है जो न जाने कब पड़ जाए और 'फॉरेन का चानस' बन जाए। आसमान के ऊपर उड़ने वाले हवाई जहाज़ों को तो हम लोग अक्सर अत्यधिक अतृप्त दृष्टि के साथ निहारा करते थे। सत्तर के दशक में निम्न मध्यम वर्गीय वर्ग के युवा होते किशोर के मन में जो आसमानी सपने हो सकते हैं वे मेरे मन में भी थे पर उन सपनों के शीर्ष पर हवाई यात्रा और फॉरेन का भूत था। धीरे-धीरे अपनी सीमाओं के कारण यह भूत मद्धम पड़ने लगा पर पूरी तरह से उतरा नहीं। यही कारण है कि सन् 1996 में मेरे मित्र दिविक रमेश को भारतीय सांस्कृतिक परिषद् की ओर से दक्षिणी कोरिया जाने का अवसर मिला तो मुझे लगा कि यह अवसर

जैसे मुझे ही मिला है। आसमान कुछ करीब दिखाई देने लगा। मन ने आश्वस्त किया कि इतना करीबी मित्र है तो कोई जुगाड़ बिठाकर अपने पास बुलाएगा ही पर जब मैं स्वयं विदेश गया तो अहसास हो गया कि ऐसे जुगाड़ बिठाने, गैरजुगाड़ुओं के लिए कितने कठिन होते हैं।

दिसंबर सन् 1998 की सर्द दोपहरी में जब भारतीय सांस्कृतिक परिषद् के श्री पुन्नी चंद भारद्वाज ने मेरे लिए निश्चित कर दिया कि भारत से सुदूर, सहस्त्रों मील लाँघकर, त्रिनिदाद में स्थित वेस्ट इंडीज़ विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाने जाना है तो गर्म और सर्द का एक साथ अनुभव होना मेरे लिए स्वाभाविक था। अब तक विदेश जाने की प्रक्रिया चल रही थी तो उस धारा में बहते हुए, सोचने को कुछ नहीं था परन्तु प्रक्रिया पूर्ण होते ही अब तो जाना ही होगा की निश्चित डोर में बँधते ही, अनेक किंतु, परंतु, अथवा, कैसे, क्यों भी आ जाते हैं। इस बात की प्रसन्नता थी कि मैं किसी के कंधे का इस्तेमाल करके विदेश नहीं जा रहा हूँ अपितु अपने पैरों चलकर जा रहा हूँ। अवसर पाते ही विदेश का भूत जाग गया। यह भूत अनेक सुंदर सपनों से वर्तमान को पंख देने लगा जिससे वह भविष्य में उड़ सके।

मैं वेस्ट इंडीज़ को क्रिकेट की शब्दावली में जानता था और त्रिनिदाद का नाम मैंने 1996 में होने वाले विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर 'गगनांचल' के विशेषांक की तैयारी के लिए सामग्री संकलित करते हुए कुछ जाना था। कुछ-कुछ जाना कि वहाँ 46 प्रतिशत जनसंख्या भारतीय मूल के लोगों की है, जाना कि वहाँ भारतीय संस्कृति और हिन्दी भाषा के लिए भूख है। उस देश के बारे में उत्सुकता जागी और धीरे-धीरे समय के आवरण ने उसे ढँक दिया। परन्तु तीन वर्ष बाद ही जब वहाँ जाने का अवसर मिला तो अनेक उत्सुकताओं ने प्रच्छन्न प्रश्नों से घेर लिया।

शब्द किसी भी स्थल का खाका तो खींच सकते हैं और उन शब्दों से हम किसी भी स्थल को शब्द-शिल्पी की दृष्टि से जान सकते हैं परन्तु उसे अपने अनुभव का हिस्सा तो हम उसे अनुभूत करके ही बना सकते हैं। त्रिनिदाद और टुबैगो देश में जाकर हिन्दी ही तो पढ़ानी थी और वह हिन्दी जिसे मैं पिछले 27 वर्षों से पढ़ाता रहा हूँ। एक ऐसे देश में ही तो रहना था जहाँ 46 प्रतिशत भारतीय मूल के लोग हैं। इसमें आशंका का क्या प्रश्न ! परन्तु अनेक बार जो चीज़ें सरल लगती हैं वही बहुत कठिन होती हैं। पहली बार अनुभव हुआ कि आप अपनों से जितना दूर जाते हैं उतना ही उनके करीब हो जाते हैं। पहली बार जाना कि अपने देश की मिट्टी गंध क्या होती है। मैंने अपने इस अनुभव को अपने एक लेख में लिखा भी है कि संतों का कहना है कि पहला प्यार, पहला भ्रष्टाचार, पहली रचना, पहला पति -पत्नी, अर्थात् जो भी पहला हो वह सदा याद रहता है। सन् 1999 से के आरम्भ में मेरे जीवन में बहुत कुछ पहला-पहला घट गया। यह पहला अवसर था कि मैंने हज़ारों किलोमीटर की हवाई यात्रा की और पहली बार त्रिनिदाद पहुँच गया। यह पहला अवसर था कि मैं स्वदेश, स्वजन, स्वपत्नी, स्वमित्रों आदि 'स्वों' से दूर एक लम्बे अंतराल के लिए भीड़ में भी अकेला रहने को विवश हुआ। ऐसी 'पहली' उर्वर- भूमि उपस्थित हो तो त्रिनिदाद जैसे देश से पहली नज़र में प्यार होना स्वाभाविक ही है। प्रथम- प्रेम, दृष्टि में ऐसी धुंध उत्पन्न करता है कि दूर दृष्टि धुँधला जाती है और सावन के अंधों सा व्यक्ति सब कुछ हरा ही देखता है। भारत से बाहर निकलते ही मन हिन्दी और हिंदुस्तान के लिए भावुक हो जाता है। विदेश में कोई भारतीय चेहरा दिखाई दे तो मन उसे लपककर पकड़ना चाहता है और यदि 'एतराज़' न हो तो गले भी लगाना

चाहता है। टूटी-फूटी ही सही, हिन्दी सुनने को मिल जाए तो मन गद्गद् हो जाता है। ऐसी ही भावुकता ने मेरे मन में भी जन्म ले लिया। ऐसे जन्म देने के लिए अपनी धरती बहुत उपजाऊ है। 15 जनवरी की दोपहर, त्रिनिदाद हवाई अड्डे, पियारको पर मुझे भारतीय उच्चायोग के अधिकारियों के अतिरिक्त वेस्ट इंडीज़ विश्वविद्यालय के डीन श्री विष्णुदत्त सिंह भी लेने आए थे। मैंने जब यह नाम सुना तो लगा कोई अपना मिल गया। कार में बैठा तो 'बैजू बावरा' फ़िल्म के गीत, 'तूँ गंगा की मौज मैं जमुना का धारा' ने किया। मन झूम उठा। मैंने सोचा कि यह एक भारतीय के स्वागत का त्रिनिदादीय तरीका हो सकता है, गाने का टेप लगा दिया। ऐसा भ्रम हर उस भारतीय को होता है जो पहली बार त्रिनिदाद आता है।

मैं त्रिनिदाद के हिन्दी प्रेम से गद्गद् था। मैं शाम सात बजे पहुँचा था और विश्वविद्यालय परिसर के पास एक फ्लैट में मेरे कुछ दिन ठहरने की व्यवस्था की गई थी। उस दिन रात का भोजन मैंने महात्मा गांधी सांस्कृतिक संस्थान के निदेशक राजेश श्रीवास्तव के यहाँ किया था। वह भी दिल्ली के थे और हज़ारों मील कोई अपना-सा मिल जाए और इतनी लम्बी यात्रा के बाद आपको भारतीय भोजन मिल जाए, आपकी प्यास का ध्यान रखा गया हो तो बल्ले-बल्ले होनी ही है।

रात भर नींद नही आई, भारत में दिन था और हवाई यात्रा भुक्त भोगी जिसे जेट लैग कहते हैं, मैं उससे ग्रसित था। फ़ोन की सुविधा हो और विदेश में बैठा मन बतियाने को मरा जा रहा हो तो कौन रोक सकता है। मन को बल्लियों उछलना था, उछलता रहा। पर इस उछलने पर सुबह कुछ ब्रेक लग गई। मैं भारत से कुछ संपर्क साधने के लिए त्रिनिदाद वासियों के फ़ोन नंबर ले गया था। मैंने पहला नंबर, सत महाराज का नंबर मिलाया, उनके नाम और उनकी संस्था ने भ्रम दिया कि बंदा हिन्दी तो जानता ही होगा परंतु जैसे ही मैंने हिन्दी में बात आरंभ की वहाँ से शून्य ही आया। इसके बाद मैंने श्रीमान् देवकीनंदन शर्मा को फ़ोन मिलाया तो वहाँ भी ढाक के तीन पात ही मिले। सोचा कि हिन्दी निधि के श्रीमान् चंका सीताराम तो मेरी भाषा समझेंगे ही, इसलिए फ़ोन मिलते ही हिन्दी में बोलने लगा, वहाँ भी दूसरी ओर से शून्य ही मिला। यह कहाँ फंस गए प्यारेलाल, जब ऐसे महारथियों के पास से हिन्दी गायब है तो औरों का क्या होगा ?

मुझे समझ आ गया कि यहाँ प्रेम जनमेजय को भूलकर प्रोफ़ेसर कुंद्रा के चोले को धारण करना होगा। समझ आ गया कि हिन्दी साहित्य का एक विशाल रेगिस्तान मेरे सामने मुँह बाए खड़ा है। समझ आ गया कि मैं एक खूबसूरत सुनहरी जेल में आ गया हूँ। समझ आ गया कि अपने हालात पर जितना अंदर ही अंदर रो लूँ, बाहर मुस्काराना ही है। समझ आ गया कि मुझे कर्त्तव्य के विशाल पर्वत के पीछे अपने व्यंग्यकार को कहीं छिपाना होगा।

इस बीच रवींद्र महाराज से, जिन्हें त्रिनिदादवासी रविजी के नाम से जानते हैं, मिला, तो कहीं आशा की किरण दिखाई दी और उनसे जब प्रोफ़ेसर आदेश के साहित्य और उनके योगदान की झलक मिली, तो मन इस व्यक्तित्व से मिलने को तड़पने लगा। मैंने ग़लती से अपने मिलने की इच्छा का ज़िक्र राजेश श्रीवास्तव से कर दिया। उन्होंने मुझे राजनैयिक व्यवस्था का पाठ पढ़ाते हुए, और ऐसे पाठ मैंने बाद में उनसे और अन्य राजनैयिक मित्रों से भी पढ़े, कहा -हरिशंकर आदेश भगोड़ा है।

भगोड़ा माने?

ये हज़रत आपकी तरह हिन्दी पढ़ाने त्रिनिदाद आए थे और फिर भारत लौटे नहीं। इनकी आई.सी. सी.आर. में एंट्री बैन है और आप भी आई. सी.सी.आर. के माध्यम से आए हैं अत: इनसे कोई संपर्क न रखें।

इसे कहते हैं व्यक्ति योजना बनाता है और भगवान् उसे निरस्त करता है। त्रिनिदाद में आप जैसा अजनबी बिना कार के बेकार है। वैसे तो आपकी सेवा में मैक्सी टैक्सी हैं, कृपा करके मैक्सी का अर्थ वह न निकालें जो बंता सिंह ने निकाल और पिटा। पर यह किस्सा फिर कभी। राजेश श्रीवास्तव के पास अपनी कार तो थी ही महात्मा गांधी सेंटर की कार भी थी पर उसकी इजाज़त के साथ आदेश जी से मिलना ख़तरे से खाली न था। उन दिनों वहाँ भारत के उच्चायुक्त श्री इंद्रवीर चोपड़ा थे; जिनसे अपना कोई विशेष मेल मिलाप न था। यह दीगर बात है कि बाद में जो मेल मिलाप हुआ और राजनैयिकों की धुंध से छँट कर जो संबंध बने वह दूर तक चल रहे हैं। मेरी साहित्य तृप्ति की आशा इसके बावजूद धूमिल हो गई कि मेरी पत्नी का नाम आशा है। यानी चारों ओर अँधेरा। पर अँधेरे में ही तो प्रकाश की किरण चमकती है।

मई में मेरी कार जापान से आ गई, निसान सन्नी, यानी कि मैं भी साकार हो गया।

यदि मन बेईमान हो चुका हो और आप कुछ दिन विदेश में रहकर घिस चुके हो तो बेईमानी हो ही जाती है। शक्कर शक्करखोरे को ही मिलती है। 1999 के शायद मई माह में रविजी से पता चला कि प्रो. आदेश अपने आश्रम में, जो सान जुआन में मुख्य एरांगुएज मार्ग पर, जिसे मैं अपनी सुविधा के लिए औरंगजेब मार्ग कहा करता था, आने वाले हैं। कोई बात थी जिसने मन को प्रसन्न कर दिया और जब मैं उनसे मिला तो पता चला कि मन यूँ ही प्रसन्न न हुआ था। प्रो. आदेश और भाभी निर्मल जी सीधे हृदय में प्रवेश कर गए। पहली बार त्रिनिदाद में हिन्दी साहित्य का साक्षात् दर्शन हुआ। आश्रम में हिन्दी साहित्य पुस्तकों के रूप में ही नहीं कमरों के नामकरण के रूप में भी बिखरा हुआ है। उस दिन समय ठहरा नहीं, पंख लगाकर उड़ता रहा और मैं सब कुछ भूलकर, जिसमें मेरी शाम की उच्चायोग में कक्षा भी थी, वहीं ठहरा रहा। इतना सब कुछ लिखने के बाद, लदे हुए वट वृक्ष की विनम्रता ने मुझे बाँध लिया। भाभी जी की आत्मीयता और इस देश के लिए की गई तपस्या ने नतमस्तक कर दिया। मन ने कहा कि प्यारे यदि तुमने अपने प्रेम जनमेजय को बचाना है तो यहीं बच सकता है।

सौभाग्य से जो अगले उच्चायुक्त आए, स्व. प्रो. परिमल दास, उनसे मैं पहले से परिचित था। वे लोहियाइट थे और हिन्दी के प्रति उनका अद्भुत लगाव था। अपना हर भाषण वे पहले हिन्दी में ही आरंभ करते। उनके आने से मुझे अद्भुत बल मिला और मैं आदेश जी का उच्चायोग में प्रवेश कराने में सफल हुआ। यही नहीं हिन्दी दिवस के अवसर पर त्रिनिदाद हिन्दी सेवियों के सम्मान का जो कार्यक्रम मैंने प्रांरभ करवाया,

पहले सम्मान को प्राप्त करने वाले आदेश जी ही थी। इसके पश्चात् श्री वीरेंद्र गुप्ता ने भी पूरा सम्मान दिया। उनके कार्यकाल में सन् 2002 में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन में आदेश जी की सम्मानजनक सहभागिता रही।

आदेश जी अपने देय को नहीं गिनते हैं पर दूसरे के देय को बार- बार दोहराते हैं। मैंने उन्हें अर्जुन फॉण्ट, जिसमें वे आज भी टाइप करवाते हैं, दिया था और कंप्यूटर विज्ञ जानते हैं कि इसे कहीं से भी प्राप्त किया जा सकता है परंतु अनेक बार मेरे इस देय को अहसान के रूप में मान चुके हैं।

स्व. प्रो. दास के प्रति आदेश जी के मन में अपार श्रद्धा थी। प्रो.दास का कार्यकाल बढ़ाया नहीं गया था। उनके भारत जाने का समाचार आदेश जी को मुझसे ही मिला था। उनका पत्र आया –'आपका ई मेल मिला। कविता तथा साहित्यिक गतिविधियों को जानकर प्रसन्नता हुई। मेरी बधाई स्वीकार कीजिए। यह पढ़ कर आघात लगा कि प्रो. परिमल कुमार दास का कार्यकाल सहसा उपसंहार की ओर आ पहुँचा। उनका प्रयाण त्रिनिदाद में हिन्दी और हिन्दू का बहुत बड़ा दुर्भाग्य होगा। सत्य अर्थों में प्रो. परिमल कुमार दास जैसा राजदूत पाना भारत और त्रिनिदाद दोनों का सौभाग्य था। मेरा हृदय यह कटु समाचार सुनने और सहन करने के लिए कदापि तैयार नहीं है। मैं चेष्टा करूँगा कि उनके गमन से पूर्व त्रिनिदाद पहुँच सकूँ और उनका भव्य विदाई समारोह आयोजित कर सकूँ। मैंने न जाने कितने विश्व स्तरीय कार्यक्रम मन में सोच रखे थे, जो उनके साथ परामर्श करके आयोजित करना चाहता था। विगत महात्मा कबीर सम्मेलन तथा अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी संगोष्ठी में उनके सक्रिय एवं सार्थक सहयोग ने ही इन कार्यक्रमों को सफलता के शिखर पर पहुँचने में सहायता दी। इन सम्मेलनों की विश्व व्यापी चर्चा हुई है और उनका प्रभाव भी वैश्विक स्तर पर पड़ा है। मेरे पास कितने ही पत्र आते रहते हैं, जिनमें उन सम्मेलनों की चर्चा और आगामी कार्यक्रमों में आमंत्रित करने का निवेदन अंतर्निहित रहता है। मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। उन्हें मेरा अभिवादन प्रदान कीजिए। आप अपने कार्यकाल के दिन गिनना बंद कीजिए। आप इतना अच्छा कार्य

कर रहे हैं। अत: आपकी आवश्यकता है। यह बात भारत सरकार भी जानती है।'

सन् 2001 श्री वीरेंद्र गुप्ता ने, त्रिनिदाद एवं टोबैगो के भारतीय उच्चायोग में उच्चायुक्त के रूप में आए। वीरेंद्र गुप्ता ज़मीन से जुड़े खुले सोच के व्यक्ति हैं। भारतीय विदेश सेवा के अधिकांश अधिकारियों के विपरीत उनके मन में हिन्दी के लिए विशेष सम्मान है। वे हिन्दी को तुच्छ दृष्टि से नहीं देखते हैं। त्रिनिदाद एवं टुबैगो में उनके हिन्दी के प्रचार एवं विकास के कार्यों को आज भी सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। वे दिखावे के स्थान पर कार्य के होने को प्रथमिकता देते हैं। न केवल हिन्दी भाषा अपितु हिन्दी साहित्य, विशेषकर कविता में उनकी विशेष रुचि है। साहित्य ही नहीं संगीत में भी उनकी विशेष रुचि है। अपनी इन्हीं रुचियों के कारण उन्होंने मुझे मिलने के लिए बुलाया। त्रिनिदाद में हिन्दी को कार्यों को लेकर मेरी उनसे लगभग एक घंटे बातचीत हुई। वे मेरे द्वारा अपने आवास पर 'बातचीत क्लब' का प्रति सप्ताह आयोजन से बहुत प्रभावित हुए। इस बीच उन्होंने, मिलने आए अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से प्रतीक्षा भी कराई। उन्होंने अपने पी ए को बुलाकर यह भी निर्देश दिया कि डॉ. प्रेम कुंद्रा जब भी आएँ इनसे विशेष प्रतीक्षा न करवाई जाए। हिन्दी के प्रति यह सम्मानजनक दृष्टिकोण उच्चायोग के कर्मचारियों के लिए आश्चर्य का विषय था। श्री वीरेंद्र गुप्ता के योगदान पर विस्तार से लिखने का मन है पर इस समय यह प्रसंग विषयांतर ही होगा।

त्रिनिदाद में पाँचवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन अप्रैल 1966 में हुआ था जिसमें 10 देशों के 200 प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। इस सम्मेलन के असवर पर 'गगनाचंल' ने विशेषांक निकाला था और मैं उन दिनों इसका सहयोगी संपादक था। कन्हैयालाल नंदन संपादक थे। वेस्ट इंडीज़ विश्व विद्यालय में मेरी नियुक्ति दो वर्ष के लिए हुई थी, जिसे बाद में तीन वर्ष के लिए किया गया था। मेरा मन था कि जाने से पूर्व एक अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी संगोष्ठी का आयोजन किया जाए। मैंने यह प्रस्ताव उच्चायुक्त वीरेंद्र गुप्ता के समक्ष रखा। उन्हें पसंद आया और उन्होंने इसकी विस्तृत प्रारूप बनाने का निर्देश दिया। मैंने प्रारूप तैयार किया। वीरेंद्र गुप्ता को पसंद आया और मई 2002 में इसके आयोजन की तैयारियाँ आरंभ हो गईं। वेस्ट इंडीज़ विश्व विद्यालय, हिन्दी निधि और भारतीय उच्चायोग के तत्वावधाान में अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी संगोष्ठी का आयोजन 17-19 मई 2002 को हुआ। इसमें लंदन, मॉरिशस, भारत, हंगरी, गुयाना, सूरीनाम, जमैका आदि देशों के अनेक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। भारत से तो जगदम्बी प्रसाद यादव के नेतृत्व में आया था। इस अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का उद्घाटन त्रिनिदाद और टुबैगो के प्रधाानमंत्री पैट्रिक मैनिंग ने किया था। उद्घाटन सत्र का संचालन मैंने और सिल्विया मूदी, कुबलाल सिंह ने किया था। इस आयोजन में त्रिनिदाद और टोबैगो की समस्त हिन्दी प्रेमी संस्थाओं का सहयोग मिला था। प्रो. हरिशंकर 'आदेश' ने न केवल कैरेबियाई हिन्दी अध्यापकों और विद्यार्थियों के लिए एक कार्यशाला सत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई अपितु अपने आश्रम में भारत से आए साहित्यकारों का सम्मान किया तथा एक कवि गोष्ठी का आयोजन भी किया। इस आयोजन में डॉ. नरेन्द्र कोहली, डॉ.कन्हैयालाल नंदन, प्रो. निर्मला जैन, प्रो. सूरज भान, डॉ.दिविक रमेश, डॉ. सूर्यबाला, प्रो. अशोक चक्रधर, डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण, डॉ. मधुरिमा कोहली, गिरीश पंकज आदि सम्मिलित हुए थे। उस आयोजन से आदेश जी बहुत प्रसन्न थे।

इसके पश्चात् मेरे और आदेश जी के संबंध ससीम से असीम की ओर बहने लगे। इतनी यादें जुड़ी हैं कि वे सब किताब का

विषय हैं। यहाँ तक कि मैं भारत आ गया तो उनसे संबंध और प्रगाढ़ हो गए। मेरे पिताजी की मृत्यु से लेकर 'व्यंग्य यात्रा' के प्रकाशन तक वे निरन्तर साथ रहे हैं। त्रिनिदाद से 'व्यंग्य यात्रा' के लिए मात्र निम्नलिखित शुभकामनाएँ ही नहीं भेजीं, पाँच हज़ार का ड्राफ़्ट भी भेजा और साथ में प्रार्थना की कि इसे गुप्त रखा जाए। मैं क्या करूँ गुप्त कार्यों में मेरा विश्वास नहीं।

प्रिय बंधुवर प्रेम जनमेजय ! तुम्हें नमन।
तुम्हें स्मरण करता है सदैव मेरा मन॥
मंगलमय हो 'व्यंग्य यात्रा' का आरंभ।
बने सहायक स्कंभ, न हो कदापि विष्कंभ॥
सदा सुखद हो बंधु ! पत्रिका का प्रारब्ध।
सराहनीय सफलता तुमको हो उपलब्ध॥
लगनशील हो, कहीं तुम्हारा नहीं विकल्प।
कर्मनिष्ठ हो, अत: सफल होगा संकल्प॥
लिए आत्म-विश्वास चलोगे यदि पथ पर।
पाओगे तुम विजय सदा प्रत्येक पग पर॥
छूकर पुण्य प्रगति के पावन उच्च शिखर।
जीवन में इतिहास रचोगे नव प्रियवर !
'व्यंग्य यात्रा' एक सफल पत्रिका बने।
हिन्दी-जग में नव दीपक-वर्त्तिका बने॥
एक नूतन इतिहास रचाए व्यंग्यों का।
करे प्रकाशन भावों के नव रंगों का॥
मेरी शुभकामना तुम्हारे साथ सदा।
बाधा भी हर बन जाए तुमको सुविधा॥
सेवा मेरे योग्य, सदा सूचित करना।
किसी दशा में किन्तु नहीं विस्मृत करना॥

महाकवि प्रो. हरि शंकर आदेश

बहुत कम हुआ है कि उन्होंने गद्य में मुझे लिखा। जब भी पत्र लिखा काव्यात्मक ही। एक बार मैंने भी, उनके अनुकरण में,उनको काव्यात्मक पख लिख डाला।

प्रियवर, सम्मानीय, सृजनशील
हे, ऋषि आदेश !
मिला आपका अप्रतिम स्नेहशील
प्रेममय संदेश
अतीत की स्मृतिपूर्ण अनगिन
मधु मधु लहरों संग
हृदय में है भर गई इक असीमित,
तरंगित उमंग
त्रिनिदाद करने लगा अंतस में
त्रि निनाद प्रतिपल
नहीं भूल सकता कभी आप संग
बीते क्षण, सकल
मेरे लिए आप त्रिनिनाद के
अविस्मरणीय उजले क्षण
रेगिस्तान की प्यास बुझाते,
तृप्ति के अमिय मधु कण
किया आप दोनों ने जो इस द्वीप के
लिए दे प्यार
अपना सर्वस्व परिश्रम
अनुपम अतुलनीय अपार
आने वाला पीढ़ियाँ भी नहीं पाएँगी
कभी उतार
ऋण जो काँधों पर उनके
चढ़ गया है, साधिकार
आशा को और मुझको आशा है
तथा अंध विश्वास
बना रहेगा हम सबका प्रेम बंधन
जब तक निश्वास।
आप हैं कविवर महान्
और मैं अकिंचन गद्यकार
नहीं जानता काव्य की भाषा
यह तुच्छ रचनाकार
फिर भी सहज लिख रहा हृदय के
कवित्व, बेकार
इसे कविता न माने,
यह एक प्रशंसक के उद्गार

मेरे इस पत्र का उत्तर आदेश जी ने छंदोबद्ध ही दिया-

प्रिय श्री डा. प्रेम जनमेजय को पत्रोत्तर स्वरूप-

पत्र पढ़कर उर प्रफ़ल्लित हो गया।
प्राण-खग स्मृति-उपवनों में खो गया॥
आप हैं विख्यात लेखक गद्य के।
बन गए निष्णात सर्जक पद्य के॥
सत्य पूछो, प्रेम की ही शक्ति है।
जो उगाती उरों में आसक्ति है॥
और यह आसक्ति ही पल प्राण में।
स्वयं ढल जाती पदों या गान में॥
पद्य लिख सकता हृदय जिसका विमल।
हो तथा व्यक्तित्त्व सुन्दर औ सरल॥
नाम जिसमें हो नहीं छल-छंद का।
उसे ही वरदान मिलता छन्द का॥
श्लाघ्य सुन्दर भाव की अभिव्यक्ति है।
आपके हर शब्द में ही शक्ति है॥
'प्रेम' मेरे प्रेम में कवि बन गए।
भाग्य मेरे प्रेम के हैं जग गए॥
उत्सवों में व्यस्त हूँ संस्थान के।
गीत गाता नित्य हिन्दुस्थान के॥
डॉक्टर डफु एक सुलझे व्यक्ति हैं।
कर रहे निज कार्य ले नव शक्ति हैं॥
आश्रम में है कुशल सब पूर्ववत्।
किन्तु नव निर्माण होता है सतत्॥
स्मरण करते हैं सभी जन आपको।
आपके सुन्दर स्वभाव - प्रताप को॥
है हमें आशा कि सकुशल आप है।
पूर्ववत् निश्छल अमल निष्पाप हैं॥

अपनी बात को मैं कहानीकार आदेश पर लिखे अपने शब्दों से समाप्त करना चाहूँगा। त्रिनिदाद एवं टुबैगो में संगीतज्ञ, भाषा - अध्यापक, नृत्य विशेषज्ञ एवं महाकवि की अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका के लिए विख्यात हरिशंकर आदेश से मेरा पहला परिचय भारत में एक साहित्यकार के रूप में ही हुआ था। एक ऐसा कवि जो भारत के साहित्यिक जगत् में, जहाँ रचनाकार अलग-अलग सम्प्रदायों में बंटे हुए हैं किसी खूँटे से नहीं बँधा हुआ है। अत: अधिक परिचित चेहरा नहीं है।

'गगनांचल' के संपादन कर्म के समय तथा भारत से बाहर निकलकर मैंने जाना कि विदेशों में ऐसे अनेक रचनाकार हैं जो अपनी सीमाओं के बावजूद रचनाकर्म में सक्रिय हैं, और इनकी हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए, विदेशी भाषा के अनेक दबावों के बावजूद, इन्होंने अपनी भाषा से मुँह नहीं मोड़ा है। ये रचनाकार एक मिशनरी के रूप में भी कार्य कर रहे हैं। अपनी ऊर्जा के बँटने के ख़तरे की चुनौतियों को स्वीकार करते हुए इन्होंने अविस्मरणीय समाज सेवा में स्वयं को झोंक दिया है।

त्रिनिदाद में आकर मैंने आदेश के रचनाकार रूप के अतिरिक्त इस पक्ष को भी देखा है। अपनी इस निस्वार्थ सेवा (पूर्णत: निस्वार्थपूर्ण नहीं क्योंकि बिना स्वार्थ के कर्म के लिए प्रेरित होने में असत्यता की गंध आती है) के कारण 'आदेश' अपने शिष्यों द्वारा लगभग पूजे जाते हैं।

त्रिनिदाद में रचनाकार 'आदेश' से मिलना मेरे लिए एक अलग अनुभव है जिसे मैं अपने लिए सँजो कर रखना चाहता हूँ और उसका रचनात्मक उपयोग फिर कभी करना चाहता हूँ। रचनाकार आदेश से जब भी मिलता हूँ, मेरी साहित्यिक और बौद्धिक भूख को एक तृप्ति मिलती है।

***

क़स्बों-शहरों की रौनक- फेरीवाले

शशि पाधा

बचपन में बहुत सी कहानियाँ पड़ीं थी, सुनीं थी। कुछ कहानियाँ मन-मस्तिष्क में चित्र की तरह ऐसे टँगी रहती हैं कि वे हमारे अस्तित्त्व का अटूट भाग बन जाती हैं। मैंने भी रबिन्दर नाथ टैगोर की कहानी 'काबुली वाला' पढ़ी थी, फिल्म भी देखी थी तो लगता था जैसे मैं ही मिनी हूँ और यह मेरी ही कहानी है। जानते हैं क्यूँ..?

हम जिन शहरों में पले-बढ़े हैं उन शहरों-क़स्बों का अगर आप चित्र बनाएँ तो केनवास पर बच्चे दिखाई देंगे और दिखाई देंगे खूब सारे फेरीवाले। उन चित्रों में आप देखोगे सिर पर टोकरी रखे फल वाला, हाथ में डंडे पर बंधे हुए रंग-बिरंगे गुब्बारे वाला, गले में पट्टी के साथ पेटी बाँध के चलने वाला मलाई बर्फ वाला, चना जोर गर्म वाला, चमकते हुए बाँस पर लिपटे हुए चीनी के गट्टे से नन्हें-नन्हें खिलौने बना के बेचने वाला। अब आप याद करें आपकी लिस्ट में न जाने कितने फेरीवाले होंगे। मैं अगर लिखने बैठूँ तो पूरा उपन्यास बन सकता है। हर रोज़ नई-नई स्वादिष्ट और आकर्षक चीज़ें लेकर आने वाले फेरीवालों से हमारा प्यारा सा संबंध जुड़ा हुआ था और उनका हमारे साथ। इसीलिए शायद मैं अपने आप को काबुलीवाला कहानी की मिनी ही मानती रही।

उस ज़माने में फेरीवाले हमारी ज़िंदगी का एक हिस्सा थे। गली-मुहल्ले, कूचे-बाज़ार, स्कूल-दफ़्तर हर जगह उनकी जान-पहचानी थी। और सब से महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि हर कोई उनके आने की प्रतीक्षा करता था। उनके आने से बच्चों और बूढ़ों के मुख पर मुस्कान बिखर जाती थी। बच्चों को मनचाही 'चिज्जी' या खिलौना मिलता था और बूढ़ों को दो पल बतियाने के लिए कोई साथी।

फेरीवालों की छवि का एक विशेष गुण था उनकी लच्छेदार, बुलंद आवाज़। यानी जब वे अपनी मज़ेदार आवाज़ के साथ सब को आगाह करते थे कि आओ, हम तो आ गए तो भला कौन अपने आप को रोक सकता था। हैरानी की बात यह थी कि हर फेरीवाले का आवाज़ लगाने का अपना विशिष्ट अंदाज़ होता था। कोई गा कर बुलाता था, किसी की आवाज़ गले की किसी अनोखी नस से निकलती थी। कोई कविता के अंदाज़ में बुलाता था और कोई फिल्मी गीतों की तर्ज़ पर पैरोडी के स्टाइल में अपने सौदे का गुणगान करता था। कभी-कभी वे या गाने लटके गा-गा कर लोगों को बुलाते थे या अपने शरीर से भी तरह-तरह की मुद्राएँ बनाकर लोगों को प्रभावित करते थे। वे अपने अनूठे ढंग से कभी घंटी बजा

Shashi Padha, 10804, Sunset hills Rd, Reston Virginia 20190
मोबाइल- 203-589-6668
ईमेल- shashipadha@gmail.com

कर, कभी बाँसुरी की धुन छेड़ कर अपने निजी ढंग के मीठे बोल बोलकर वस्तुओं के नाम बताते और बच्चे-बूढ़े उनकी मोहक आवाज़ की डोर से बँधे चले आते। यानी उस समय के फेरीवाले सौदागर भी होते थे, गायक भी और अभिनेता भी।

फेरीवालों की कुछ-कुछ आवाज़ें मुझे कभी नहीं भूलती। जैसे जामुन बेचने वाला- काले काले रा जामुन, देते खूब मज़ा जामुन। गन्ने की गंडेरी बेचने वाला कहता था - गुड़मिट्ठी गंडेरियाँ-दो तेरियाँ दो मेरियाँ। मूँगफली बेचने वाले का मुहावरा था -ले लो पिशावर की गरियाँ, मिट्ठे बादाम की गरियाँ। तिकोन सी टोकरी को गली के किसी स्वच्छ स्थान पर रख कर खुद एक छोटे से मूढ़े पर बैठ कर जब हमारा सर्वप्रिय खट्टे-मीठे चने बेचने वाला आवाज़ लगाता था- 'चना जोर गर्म, आओ खाओ अब किससे शर्म' तो हमारा हाल कुछ ऐसा होता था। जब तक वह कागज़ के कोण में चना और मसाले डाल कर हिला रहा होता, हम बच्चों के मुँह में स्वाद की न जाने कितनी नदियाँ बह रही होतीं।

मुझे मालूम नहीं कि भारत के दूसरे शहरों में 'मलाई बर्फ' बेचने वाला गली मोहल्लों में आता था कि नहीं किन्तु जम्मू, पंजाब और हिमाचल में तो अवश्य ही आता था। एक लकड़ी की पेटी के अंदर कम्बल जैसे हरे कपड़े में लिपटा होता था एक बर्तन। शायद उसके नीचे खूब सारी बर्फ रखी रहती थी। हरे-हरे साफ़ पत्तों पर कड़छीनुमा किसी चीज़ से जब भैया मलाई बर्फ़ की एक पतली सी तह रखता था तो पूरे शरीर में ठंड का अहसास होने लगता था। सर्दियों में मूँगफली, खजूर से भरे खोमचे वाले आते तो आवाज़ आती -कलकत्ते की खजूरें आई हैं, गाड़ी भर मँगवाई हैं। पानी के बताशे, बुड्डी के बाल, कचालू, गोलगप्पे, गुड़-रेवड़ियाँ.... अगर मैं सब चीज़ों के नाम लिखूँ तो आपके मुँह में भी पानी आ जाएगा। चलिए छोड़ देते हैं आपके लिए भी कुछ याद करने को।

इसी संदर्भ में एक बात और भी याद आती है कि एक ही फेरीवाला मौसम के अनुसार अलग-अलग चीज़ें बेचने के लिए लाता था। गर्मियों में मौसमी फल, लच्छेदार कुल्फी और सर्दियाँ आते ही मूँगफली,

रेवड़ियाँ, खजूरें अपनी टोकरी या थाल में सजा ली जाती थीं। जब भी कोई फेरीवाला किसी गली के कोने पर बैठ कर अपनी दूकान सजा लेता तो उसके आस-पास बच्चों-बूढ़ों का समूह इकट्ठा हो जाता। वो जगह सही मायने में मनोरंजन के लिए मीटिंग का अड्डा भी बन जाती।

फेरी वालों में से एक बहुत पुराना फेरी वाला मुझे अक्सर याद आता है जो बॉयोस्कोप दिखाता था। एक अजब तरह से भोंपू बजा कर वह अपने आने का एलान कर देता था। एक स्टैंड पर वह अपना लकड़ी का बक्सा सजा देता और फिर प्रतीक्षा करता था बच्चों के आने की। अगर उस दिन दादी दयावान हुई तो पैसे मिल जाते और हम बॉयोस्कोप के बक्से में आँख गड़ा कर तमाशा देखते थे। कुछ चित्र आँखों के सामने से गुज़रते जाते और बॉयोस्कोप वाला गा-गा कर उनकी कहानी सुनाता जाता- दिल्ली का कुतुबमीनार देखो, लखनऊ का मीना बाज़ार देखो.... इससे ज़्यादा मुझे याद नहीं बस वह बॉयोस्कोप वाला, बक्सा और बॉयोस्कोप वाला याद है।

मैंने बचपन में भगवती प्रसाद बाजपेयी जी की एक कहानी पढ़ी थी -'मिठाई वाला'। वह भोला वाला मिठाई वाला मुझे इतना प्रभावित कर गया कि मैंने छोटी सी उम्र में इस कहानी पर 'मोनो एक्टिंग' भी की थी। मैं कभी टोपी पहन कर टोकरी उठा कर मिठाई वाला बनती और कभी चुनरी ओढ़ कर 'रोहिणी'। आप समझ सकते हैं कि उस समय के जीवन और दिनचर्या में फेरीवालों का कितना महत्त्व और योगदान था।

इन फेरीवालों के साथ हम बच्चों का प्यारा सा संबंध भी जुड़ जाता था। वे हमें हमारे घर के नाम से जैसे मुन्नी, गुड्डी, काका, मुन्ना कह कर बुलाते थे तो लगता था कि वे हमारे परिवार का ही अंग हैं। अगर कुछ दिन कोई फेरीवाला नहीं आता तो हम बच्चे तो उसे याद करते ही थे, घर के बड़े-बूढ़े उनका हाल चाल जानने उनके घर भी चले जाते थे। वास्तव में ये फेरीवाले हमारी संस्कृति और समाज का एक अभिन्न अंग थे।

परिवर्तन एक ऐसी जादुई छड़ी है जो समय के साथ कितना कुछ बदल देती है। समय के साथ ही बदल गया लोगों का जीवन। धीरे-धीरे लोग शहर के बाहर नए नगरों में रहने आ गए। बहुत सी चीज़ें वहीं छूट गईं। इसी बदलाव में फेरीवाले भी कहीं गुम हो गए। या तो उन्होंने छोटी-मोटी दूकानें डाल लीं या रेहड़ी-गुमटियाँ। उस ज़माने में बाज़ार स्वयं हमारे गली-मोहल्ले में आता था। अब लोग बाज़ार जाते हैं। अब न वो फेरीवालों की आकर्षक आवाज़ें सुनाई पड़ती हैं और न ही थाल- टोकरी में सजी वो स्वादिष्ट चीज़ें। न बच्चों को कोई उनके प्यारे से घर के नाम से बुलाता है और न ही बच्चे मुट्ठी में पैसे दबा कर घर की खिड़की के पास खड़े होकर किसी 'काका', 'भैयाजी' की प्रतीक्षा करते हैं। जब मोबाइल से पिज़्ज़ा या फास्टफूड का ऑर्डर किया जाता है तो मुझे लगता है जैसे बच्चों का यह अधिकार उनसे छिन गया है।

अमेरिका में भी आइसक्रीम बेचने वाले घंटी बजाते हुए रेहड़ीनुमा गाड़ी में आते हैं। उनकी घंटी सुनकर बच्चे आइसक्रीम लेने दौड़ते हैं। उस घंटी की आवाज़ जब भी सुनती हूँ, बचपन के फेरीवालों की याद आ जाती है। बचपन में पहुँच जाती हूँ।

शायद मुझे अपने बचपन के उन दिनों से बहुत लगाव है। अतीत को भुलाना कठिन है और अतीत के रंगमंच के पात्रों का अचानक लुप्त हो जाना और भी दुखदाई लगता है। चलिए हम रचनाकार अपनी कहानियों, कविताओं, उपन्यासों में उन फेरीवालों को फिर से बुलाएँ ताकि हमारी नई पीढ़ी भी उनसे पहचान कर ले।

***

इलाज

डॉ. प्रियंका

नए लेखक द्वारा लिखी गई पहली कहानी का यहाँ प्रकाशन किया जाएगा। इस अंक में प्रस्तुत है डॉ. प्रियंका की पहली कहानी 'इलाज'।

डॉ. प्रियंका
सहायक प्राध्यापिका (हिन्दी-विभाग), राजकीय महाविद्यालय 'रे' काँगड़ा (हि.प्र.), 176058
मोबाइल- 88940-91086
ईमेल-priyanka9march1986@gmail.com

सब सुन रहा था मैं पर बेबस था।

होंठ कुछ बोलना चाह रहे थे, आँख कुछ इशारा करना चाहती थी पर लाख कोशिशों पर भी मैं कुछ कह नहीं पा रहा था, शरीर जो बेजान हो गया था मेरा।

डॉक्टर कह रहा था-'सॉरी, मि.आनंद। आपके पिता जी के दोनों गुर्दे ख़राब हो चुके हैं। उन्होंने काम करना छोड़ दिया है। उनके रक्त में इस वजह से इतना टॉक्सिक पदार्थ इकट्ठा हो गया है कि वह कोमा से बाहर आ ही नहीं पा रहे हैं।'

'कोमा से बाहर लाने का एक ही उपाय है-गुर्दों का प्रत्यारोपण। परन्तु इसमें लाखों के हिसाब से खर्च होगा। आप इस बारे में मन बना लीजिए फिर आगे इलाज चलेगा।'

मेरा बेटा आनंद, बहु सरिता, पोता सोनू, पोती मोनू सब के सब मेरे मृतप्राय: शरीर को देख रहे थे। सोनू पूछ रहा था- 'पापा दादा जी हमसे बात क्यों नहीं कर रहे, कुछ बोल क्यों नहीं रहे हैं उनको क्या हो गया है?' और मैं आँखें बंद किए लाचार पड़ा सब सुनता रहा।

पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठा आनंद गहरी सोच में डूबा था।

सरिता ने कहा-'अरे, आप परेशान क्यों हो रहे हो क्या सोच रहे हैं आप!'

आनंद ने कहा- 'पिता जी के इलाज के बारे में सोच रहा हूँ। लाखों में खर्च होगा। क्या करूँ, क्या न करूँ, कुछ समझ नहीं आ रहा। हज़ारों की बात होती तो, शायद।'

सरिता ने कहा-'आप परेशान मत हो। पिता जी ने अब और क्या देखना है...... सब कुछ तो देख ही लिया है। बेटे की शादी, पोते का मुँह, और क्या देखना बाकी रह गया हैऔर वैसे भी आधे से ज़्यादा उम्र तो काट ही ली है ना और क्या गारँटी है कि इलाज के बाद ये दस साल और जी पाएँगे। दिन ही कितने रह गए हैं इनके पास और ऊपर से बेकार का इतना सारा खर्च। इतनी मशक्क़त और कड़ी मेहनत से तो आपने अपनी जमा-पूँजी जोड़ी है और ऊपर से सोनू-मोनू की भी तो पढ़ाई-लिखाई करवानी है, गाड़ी और बड़ा मकान भी तो लेना है। कब तक हम उन दो कमरों में रहेंगें और वैसे भी आज या कल पिता जी ने मर तो जाना है। तो उन पर बेकार का खर्च क्यों करें।'

आनंद ने कुछ भी नहीं कहा, सुनता रहा और हूँ, हूँ करता रहा, और मैं अन्दर ही अन्दर

दर्द से कराह रहा था, टूट रहा था। उस वक्त मुझे ऐसे लगा कि मानों कुल्हाड़ी से किसी ने मेरे शरीर के दो टुकड़े कर दिए हों। ज़ोर-ज़ोर से रोना चाहता था, चीखना चाहता था, लोगों को बताना चाहता था कि देखो, मैं बेकार की चीज़ हूँ। बेटे के लिए बेकार का खर्च हूँ। उस वक्त मैं यह चाह रहा था कि धरती फट जाए और मैं भीतर समा जाऊँ।

क्यों धरती भी नहीं फटी मुझे बहुत गुस्सा भी आ रहा था, रोना भी। पर मैं तो था एक ज़िंदा लाश। सच ही कहा है किसी ने 'अँधेरे में तो अपना खुद का साया तक साथ छोड़ देता है'। आज अगर आनंद की माँ ज़िंदा होती 'तो सब कुछ बेच-बाच कर भी मेरा इलाज करवा लेती, पर।'

बीते दिनों की सारी घटनाएँ मेरे मानस पटल पर एक-एक करके अंकित होने लगी। मुझे याद आ रहा था, किस प्रकार मैंने और मीरा ने कितनी मन्नतों से आनंद को पाया था। उसका हर चाव पूरा किया था। एक-एक करके पैसा इकट्ठा करके उसे पढ़ाया-लिखाया। उसकी हर ज़िद पूरी की। मैंने दिन-रात खेतों में काम करके और मीरा ने कैसे दिन-रात सिलाई करके पैसे इकट्ठे करके आनंद को इंजीनियर का कोर्स करवाया था। उसकी हर खुशी पूरी करने के लिए अपनी ज़िंदगी होम कर दी थी। दिन का चैन, रातों की नींद सब आनंद पर क़ुर्बान कर दी थी। एक दिन आनंद जब दिल्ली से कोर्स पूरा करके आया तो उसके साथ थी एक लड़की।

मीरा ने दरवाज़ा खोला 'ठगी सी रह गई।'

आनंद ने बताया 'माँ ये सरिता है, मेरी पत्नी'। अवाक् सी रह गई मीरा। क्या-क्या अरमान सँजो के रखे थे आनंद की शादी के, पर अरमान अरमान ही रह गए।

दौड़ती हुई मीरा खेतों में मेरे पास आई। मैं धान के खेतों में पानी लगा रहा था, आँखों के आँसू पल्लू से पोंछते हुए रुक-रुक कर बोली, आनंद आया है, श....शादी करके बहू ले कर। क्या ग़ुस्से से लाल हो गया मैं, सरपट दौड़ा घर, मीरा भी मेरे पीछे। घर पहुँचते ही सरिता ने मेरे पैर पकड़कर रोते हुए कहा- 'पिता जी मुझे इस घर में शरण दे दीजिए, मेरा आनंद और आप लोगों के सिवा कोई नहीं है। हमें माफ कर दीजिए' आनंद ने भी पैर पकड़ लिए, मीरा ने धीरे से मेरे कंधे पर हाथ रख कर हामी भरते हुए सिर हिलाया।

'उठो बेटा, बहू तुम भी उठो। शांत हो जाओ तुम दोनों। बेटा तुम खुश हो ना, तुम्हारी खुशी में ही हमारी खुशी है, मीरा अपनी बहू का स्वागत नहीं करोगी क्या?' मीरा ने बड़े प्यार से पूरे रस्मो-रिवाज के साथ दोनों का स्वागत किया, हम दोनों ने गाँव वालों और रिश्तेदारों की कड़वी बातें सुनकर भी आनंद और बहू का साथ दिया। बस एक ही मलाल था मन में, कि अगर आनंद पहले बता देता, तो हम क्या उसे मना कर देते।

दरवाज़ा खुलने की धीमे से आवाज़ आई, नर्स, आनंद और सरिता कमरे में आए। नर्स आनंद को बता रही थी कि ऐसे केस में मरीज़ सब सुन सकता है पर कुछ बोल नहीं पाता, आप चिंता मत कीजिए। ऐसे मरीज़ ठीक भी हो जाते हैं।

बहू सरिता धीमे से बोली 'खाक ठीक होंगें, मरनासन्न तो पड़े हैं, बेकार की मुसीबत गले पड़ी है'। बेकार की मुसीबत, कोमा में मैं कोई खुद आया हूँ, क्या मैं ठीक होना नहीं चाहता, क्या मुझे जीने की इच्छा नहीं है...क्यों.....अपने बेटे के साथ जीवन जीने की इच्छा नहीं....है मुझे...दिल कर रहा था कि चीख कर कहूँ.....। पर कैसे.....

एक धुँधली-सी आकृति मेरी आँखों के सामने आई...आकृति थी, मीरा की.....। कितना ख़याल रखती थी मेरा....जब मुझे पथरियाँ हो गईं थी तो कैसे उसने बिन बताए अपने शादी के गहने बेचकर मेरा इलाज करवा था...रात-रात भर जाग कर मेरी सेवा की.....। बेटे की हर ग़लती को कैसे माफ कर देती थी, उसकी बात मनवाने के लिए कैसे मेरे आगे-पीछे घूमती थी...सरिता का जब पैर भारी था, तो दिन-रात उसकी सेवा की....पर बेचारी पोते का मुँह तक न देख सकी..चल बसी पहले ही...मुझे अकेला छोड़कर......।

आनंद मुझे अपने साथ दिल्ली ले आया...। मुझे अच्छा लगा था, मैं अपनी यादों का घरोंदा, अपना पुश्तैनी मकान, अपने खेत बेच आया था आनंद के नए घर के लिए....। आनंद अपने ऑफ़िस जाता, बहू घर के कामों में व्यस्त हो जाती...बच्चे स्कूल चले जाते...और मैं रह जाता कमरे में अकेला, उस बिना खिड़की वाले कमरे में...। आनंद ऑफ़िस से आता खाना-वाना खा के टी.वी देखने लगता...बच्चे स्कूल का काम कर रहे होते..बहू आती.. ठंडा खाना पटक कर चली जाती...मेरी मीरा ने हमेशा मुझे तवे से उतरी रोटी ही खिलाई...।

जब भी मैं बच्चों के साथ बातें करने के लिए उनके कमरे में जाता...बच्चों को कंप्यूटर पर व्यस्त देखता...बहू कहती.... 'आप अपने कमरे में जाओ..पिता जी...बच्चों को पढ़ने दो। कल स्कूल में टैस्ट है बच्चों का....'। मन मार कर और निराश होकर लौट आता कमरे में...। रात को सब बातें करते टी.वी. देखते, हँसते और मैं कमरे में घुटता....सुनता रहता उनकी हँसी और बातें...।एक बार जब मैं भी उन सब के पास आकर बैठ गया, तो बहू ने टी.वी. बंद करते कहा- 'आनंद, कल तो तुम्हारी मींटिंग है ना...जल्दी उठना है...चलो सो जाओ...'। आनंद भी चुपचाप चला गया सोने..। कुछ कहा भी नहीं...न हाल-चाल पूछा...। अपने पिता से बात करने तक का समय नहीं है उसके पास....उस दिन के बाद मैं कभी टी.वी. वाले कमरे में नहीं गया....।

रात को बड़ी घुटन और उमस महसूस हुई मुझे। मैं बाहर खुली हवा में घूमना चाहता था, पर जैसे ही बिस्तर से उठा....सीने में बहुत ज़ोर का दर्द महसूस हुआ.. मैंने अपने सीने को ज़ोर से दबाया.... मैं खड़ा ही नहीं हो पा रहा था..... उसके बाद याद नहीं क्या हुआ......और आज मैं इस हालात में हूँ ....बेबस, लाचार..।बेटे के पास पिता के इलाज के लिए पैसे तो हैं पर वह सोच रहा है कि खर्च करूँ कि न करूँ, बहू की नज़र में फ़िज़ूलखर्ची..। क्या ये वही आनंद है जिसकी खुशी के लिए मैंने और मीरा ने अपना पूरा जीवन होम कर दिया...और क्या ये वही बहू है, जिसको हमने अपनी बेटी माना था.....।

तेज़ रोशनी में किसी की परछाईं नज़र आई.. कौन... मैं उस परछाईं के पास दौड़ा... मीरा.. तुम हो...। तुम आ गई.....। मीरा ने मेरा हाथ पकड़ा और मैं तेज़ रोशनी की तरफ बढ़ता चला गया .....।

***

कविताएँ

प्रतिभा चौहान की कविताएँ

उसी वक़्त

उसी वक़्त मुझे लिखना था
जब लिखने के वास्ते
कोई सज़ा थी मुक़र्रर
अत्याचारों के ख़िलाफ़
आवाज़ उठाते वक़्त काँपती आवाज़ों को
मुझे दे देना था सहारा
कुछ गिर चुके शब्दों को
फिर से बुलंद नारों में कर देना था तब्दील
पृष्ठों की शृंखला में उकेरनी थीं सिसकियाँ
बन जाना था अट्टाहस और दंभ के ताबूतों
की आख़िरी कील
परंतु,
एक महान् परंतु में
सर झुके रहने की आदत
दरअसल हमारे व्यक्तित्व का फोड़ा है
बार-बार उभर आता है
दुरूह असह्य रास्तों पर अक्सर
और बेज़ुबान हो जाती है ज़ुबान
कुछ न कह पाने की टीस
सालती है रह रह कर हमेशा
पर
लिख न पाने के दर्द को
वक़्त उकेरता है चट्टानों पर
पिघलते हिमखंडो पर
आकाशगंगाओं के झुंड में
माना लिखना सज़ा है
पर दवा भी है हज़ार ज़ख्मों की

इतिहास दरअसल चुनाव है
और चुनाव की पद्धति
तुम्हें पता होनी चाहिए...
***

एक बटा दो संसार के ख़्वाब

चाँद के चेहरे से
थोड़ी ताज़गी उधार ले लो
उजाला चुटकी में भरकर
बढ़ा दो रौनक़ें इस शहर की

उदास धूप कौन देखेगा अगले दिन
हमें इसी शाम की किरचों से सजाने हैं
अलबत्ता ये नाख़ुश चेहरे

कल्पना में गुम होकर याद करना
कि सिरहाने उग आई है नींद की बेल
हाथों में मल लो रात की गहराई
और एक बटा दो संसार के ख़्वाब

आओ चलो जीते हैं
दुनिया का बँटवारा करके

रात डाल दो मेरी झोली में
ख़्वाबों भरी डाली तुम ले लो
***

हज़ार चुप्पियों के कम्बल

असभ्यता के ख़िलाफ़ खड़े होने के वक़्त
ओढ़े गए
हज़ार-हज़ार चुप्पियों के कम्बल
उगी हुई घासों को दिया गया ज़हर
अमन की हवाओं पर चलाईं गईं गोलियाँ
मृत्यूदंड देने से पूर्व
नाटक का किया गया आकलन
मंचन से पूर्व ही
यह जो सूरज हैं
अत्याचारों के कम्बलों में डूबते हुए
दरअसल
फिर उग आते हैं
कुकर मुत्तों की तरह
उनके पैरों के बीच
कौन तोड़ेगा उन ज़ंजीरों को
जिनमें क़ैद की जानी है एक आदमी की
आज़ादी
बेदम हुए वक़्त की
शक्ल है कि हवा के रुख के साथ बदल रही
है।
***

देश का नक़्शा

मैं एक सादा पन्ना
तुमने लिखा मिटाया
फिर मर्ज़ी से उस पर बना दिया देश का
नक़्शा
जैसे उसके वजूद को सँजोना हो मेरी अदद
ज़रूरतों में शामिल

मैंने उसमें भरे उजाले के सभी रंग
जुगनुओं की तरह
शाम का सारथी बनाकर उछाल दिया हवा में

वो उड़ा
गुम हुआ ख़्वाहिशों की खचाखच भरी राह
में
दिखा फिर
मेहनतकश लिबासों की क़तार में
भाषाई, क्षेत्रीय, सांप्रदायिक सूरजों से
जलते दहकते सहस्र ब्रह्मण्डों की सतह पर
झुलसता हुआ
वो खोद-खोद कर फेंक रहा था पुरानी जड़
समस्याओं को

उसकी जेब में पड़े थे उस वक़्त
बड़े आकारों वाले सरोकार
उसके माथे पर सुबह का सलाम
शाम के लिए ख़र्च किए जाने वाली
मुस्कुराहट
आसमान में उम्मीद बनकर जलने वाली
आँधियों की मशालें थीं...
***

प्रतिभा चौहान, अपर ज़िला न्यायाधीश,
नालंदा, बिहार
मोबाइल- 9470415802
ईमेल- cjpratibha.singh@gmail.com

लेखकों से अनुरोध

लेखकों से अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे।

संपादक मंडल

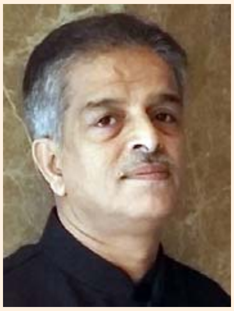

ज्योतिकृष्ण वर्मा की कविताएँ

तुम्हारा इंतज़ार

आसमान
चमकती बिजलियों से
लिखता है
बादलों पर
कविताएँ!

एक उदास प्रेमिका की
आँखों से बहते हैं
आँसू
बारिश की बूँदें
बनकर!!
***

सहेज कर

कुछ पन्नों पर
नज़र आईं तुम
मुस्कुराते हुए

कहीं दिखीं तुम उदास

कुछ बातें पढ़ी मैंने
जो लिखी हैं तुमने
आँसुओं में भिगोकर

अपने बिस्तर के
साथ रखी अलमारी में
डायरी नही
रोज रख देती हो तुम
अपना ही
प्रतिरूप!
***

(1)

बहुत ख़ूबसूरत हैं तुम्हारी आँखें
इसलिए ख़ूबसूरत है
पृथ्वी
आकाश
सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड!
***

(2)

वेंटीलेटर से
याद आ जाती है मुझे
किसी कवि के
मानस में
कोई अधूरी छूटी कविता!
***

(3)

मुखौटे पूछ रहे हैं
स्टोर रूम का पता
कहते हैं
रहेंगे अब वहीं!
***

(4)

मेरे शहर में
आ जाए
चहचहाती गौरैय्या
मैं हटा दूँगा
गेट पर टँगा बोर्ड
"किराये के लिए मकान खाली है"
***

(5)

मृत्यु
तुम जीवन के
पहले क्षण से
अंतिम साँस तक
कोई हस्तक्षेप
नहीं कर सकती!
***

फिर से

मैंने
कई बार
शब्दों को काटा है
कागज़ पर लिखने के बाद
मैंने लिखना चाहा
मंद-मंद बहती
पुरवाई पर
मुझे उलझा लिया
तितलियों ने
मैंने लिखना चाहा
सपनों के बारे में
मैं खो गया उनमें
खुद ही
मैंने लिखना चाहा
संगीत के सुरों पर
मुझे याद आ गई
बचपन में
माँ से सुनी लोरियाँ
मैंने लिखना चाहा
पृथ्वी पर
मैं
टकटकी लगाए
देखता रहा
समन्दर की लहरें
मैंने लिखना चाहा
आकाश के बारे में
मेरी आँखें
देखती रहीं
चाँद को
मैंने लिखना चाहा
स्त्री पर
मुझे याद आने लगी
फिर से
पुरवाई, तितलियाँ,
सपने, संगीत,
पृथ्वी, आकाश,
समन्दर ...
***

ज्योतिकृष्ण वर्मा
RZ-106-B, इंद्रा पार्क
उत्तम नगर
नई दिल्ली 110059
मोबाइल- 09811763579
ईमेल- jkverma333@gmail.com

शैलजा सक्सेना की कविताएँ

वह चुप रही

वह चुप रही!
छोटी थी जब वह
पतंग सी उड़ने की उमर में
किसी और के हाथ अपनी डोर दिए
वह बस उतना ही उड़ी
जितना उड़ाया उसके माता- पिता ने
...चिड़िया नहीं बन पाई!!

फिर थमा दी गई डोर
किसी और को
वह चुप रही
फिर उड़ने लगी
दूसरे के आँगन में,
उतना
जितना उड़ाया गया उसे!

सास जब बरसी तेज़ बारिश सी
वह धरती हो गई
और पी गई अपना
और उनका क्रोध चुपचाप,
पति बरसा जब ओलों सा
उसने घास सी नुकीली पलकें झुका लीं
और अपने सारे नुकीले कोने झाड़
गोल पत्थर सी हो गई
जिसे सुविधानुसार
लुढ़काया जा सकता था
बिस्तर से चूल्हे तक
आँगन से ठाकुर द्वारे तक,
जितना वह बनी लुढ़कने योग्य
उतनी ही बिछी प्रशंसाएँ!!

चुप ही रही वह
उम्र के तीन-चौथाई हिस्से में!

अब हैरान हैं बच्चे
कि वह नींद में बोलती है,
नींद में रोती है,
नींद में हँसती है,
नींद अब उसके भीतर दिन बनकर आती है
और वह उस दिन को अपनी मर्ज़ी से पूरा-पूरा जी पाती है।

***

मेरी भाषा

भाषा के आकाश में
अपने-अपने कोनों से उड़ाईं
सबने
अपनी-अपनी पसंद की पतंगें।
कोई चित्र लिपि में
कोई मंत्रों को लिए
कोई वाद्ययंत्रों सी ध्वनित होती हुई।
मेरी पतंग में कई रंग थे
कई उगते सूरजों की ऊष्मावान रश्मियाँ
कई डूबते सूरजों की लालिमा
कई घाटों के विविधरंगी नीर छलकते थे उससे
इतने रंग थे उसमें
कि वह पतंग नहीं रह गई
स्वयं आकाश हो गई
मेरे हिस्से का
और मेरे जैसे
एक अरब से भी ऊपर के लोगों का आकाश!

हम इस आकाश के तले,
गेहूँ की बालियों पर कविताएँ लिखते
और ज़मीन में अपनी कल्पनाओं के बीज बोते।
हवाओं के पंखों पर
तितलियों के परों जैसे चमकीले गीत लिखते
और जंगलों में ऋचाओं से गूँजने लगते।

इस आकाश तले
हमने शुरू की बनानी वो सड़क
जो साहित्य और जीवन तक जाती है,
हम कूटते हैं
अपने विचारों, तर्कों की ईंटें
और डालते हैं इस पर
अपनी मानवीय संवेदना का तारकोल
हम सदियों से बढ़ाते जा रहे हैं यह सड़क
और शामिल करते जा रहे हैं हर
पीछे छूट गए आदमी की पीड़ा को,
हम समेटते चले जाते हैं
हर दृश्य के सौंदर्य को
अपनी इस सड़क में।

आकाश के इस कोने के नीचे
संस्कृति के अविरल बहते सागर से
हमने जाने कितने ही
दर्शनों के मुक्ता माणिक निकाले
और पाया जीवन का,
जीवन को कहने का सौन्दर्य।
फिर हम गाने लगे इस सुंदरता को
अनुभव करने लगे शिवम को
सुनने लगे सत्य को।
हम इसी भाषा में प्यार करते हैं,
लड़ते हैं, बहसते हैं, गाते हैं,
लगातार हँसते चले जाते है

हम अपने को ढूँढ़ने
इसी भाषा में उतरते हैं गहरे
मैं देख रही हूँ
मेरी भाषा का आकाश फैल रहा है
कई सागरों, पर्वतों जंगलों को ढँके हुए
लगातार फैल रहा है
मैं खुश हूँ
कि मैं भी उसके हज़ारों रंगों में घुली
उसकी हवाओं की ख़ुश्बू सी
हो गई हूँ
जिसके इस छोर के पद्य से
उस छोर के गद्य तक फैल रही है
एक व्यापक मानवीय संवेदना!

मेरी भाषा
वसुधैव कुटुम्बकम सी,
बन गई है
जीवन की ऊष्मा की भाषा।

***

Shailja Saksena, 2288, Dale Ridge
Dr. Oakville,
Ontario-L6 M3 L5
मोबाइल- 905-580-7341
ईमेल- shailjasaksena@gmail.com

खेमकरण 'सोमन' की कविताएँ

दिन के उजाले की तरह

छत पर है
रंगीन चमकता चाँद
तारों की फौज / ठंडी हवा
और सकून की साँस
छत पर नहीं है
कोरोना वायरस का कोई भी निशान
लेकिन लॉक डाउन के ज़रूर हैं

आसपास हैं कई मकान
जगह-जगह जलते बल्ब और
दूर-दूर तक
रोशनी की लंबी बिछी हुई चादर

सोचता हूँ
दिन के उजाले की तरह
रात के उजाले में भी कहीं
तय तो नहीं है किसी के लिए अँधेरा ?

उठ पड़ती है स्वत: उँगली मेरी यहाँ
दो जगहों की रोशनी के बीच
इस अँधेरे में
यहीं-कहीं हैं मज़दूर/झोंपड़ी और बच्चे
तो ज़रूर यहीं-कहीं होगी
भूख/प्यास और ग़रीबी भी

मेरे कदम चल पड़ते हैं उनकी ओर
जैसे चल पड़ती थी कोई चिट्ठी
गाँव से शहर की ओर
मेरी सुधबुध लेने।
***

अभी न आना तुम

मृत्यु का नृत्य है जारी
अभी न आना तुम

जैसे चलती है हवा, चल रहा हूँ मैं
जलती है आग ,जल रहा हूँ मैं

जैसे बरसता है पानी, बरस रहा हूँ मैं
फिर भी अंदर से हँस रहा हूँ मैं
क्योंकि हँसना होगा मुझे तुम्हारे लिए
तुम्हारे भोर के लिए

जैसे महकता है गुलाब, महक रहा हूँ मैं
चहकती है चिड़िया, चहक रहा हूँ

जैसे बहती है नदी, बह रहा हूँ मैं
अभी वहीं रहो तुम, कह रहा हूँ मैं

अभी लॉक डाउन है पूरा शहर, पूरा देश, पूरी दुनिया
लोग हैं अपने घरों में क़ैद
नहीं है उनके पास खाद-पानी राशन
हिला हुआ है सम्पूर्ण विश्व-धरा आसन
पहुँचा रहा हूँ कहीं-कहीं रोटी
कहीं दवाई, कहीं मास्क
कहीं सही और ज़रूरी समाचार
कर रहा हूँ वही काम जो करता था इससे पहले भी

मृत्यु का नृत्य है जारी
लेकिन कोरोना वायरस से लड़ने के लिए
जारी है मनुष्यता का खेल भी!
प्रिय अभी न आना तुम।
***

उसने ये नहीं देखा

हर जगह घूमकर-घामकर उसने यह दुनिया देखी
पल-पल ख़ूबसूरत सदी देखी
पेड़-पौधे और नदी देखी
खेत देखे, रेत देखी, अपना हैट देखा
फिर देखा फूला हुआ
अपना भरा हुआ पेट देखा
उसने देखा कि
हर कोई है सुख की चाँदनी में निश्चिन्त
हर जगह है मनभावन मौसम, बसंत-बहार
हर जगह है दुख से परे मैदान और पहाड़
उसने देखा
अन्न का अकूत भंडार देखा
सबको खाना खाते हुए देखा
जी भर हँसते हुए, गाते हुए देखा
ग़रीब बच्चों को भी
पढ़ते-लिखते हुए देखा
उन्हें आगे बढ़ते हुए, सीखते हुए देखा।

उसने देखा
जन मानस के साथ स्वयं को सक्रिय
उनके साथ आगे-आगे चलते हुए देखा
देश को तेज़ी से बदलते हुए देखा
जबकि बेरोज़गार कर रहे हैं आत्महत्या
सूख रही है नदी और नहर
खेत हो रहे हैं दिनों दिन ग़ायब
बच्चे हैं अभी भी भूखे पेट
और स्कूल से वंचित
उसने ये नहीं देखा

सरहद पर ख़त्म हो रहे हैं जवान
उजड़ रहे हैं अन्नदाता किसान
किसी की आत्मा मर रही है
किसी की झोंपड़ी उजड़ रही है
एक लड़की के साथ गैंगरेप हुआ
जो उसी के शहर की थी
मी टू अभियान ने
पकड़ लिया था बहुत ज़ोर
कि खुद उसी के क्षेत्र में
खड़ी हैं कई विसंगतियाँ
अपनी दस-बीस टाँगों पर
उसने ऐसा कुछ भी नहीं देखा

इस तरह इस संसार में वह ऐसा आदमी था
जिससे अपना संसार भी ठीक से
देखा-पढ़ा और गढ़ा नहीं गया।
***

खेमकरण 'सोमन',
द्वारा श्री बुलकी साहनी, प्रथम कुंज,
अम्बिका विहार, ग्राम व पोस्ट- भूरारानी,
रुद्रपुर, जिला- उधम सिंह नगर,
उत्तराखंड-263153 (भारत)
मोबाइल- 090450 22156
ईमेल- khemkaransoman07@gmail.com

शोभना श्याम की कविताएँ

दर्द के जंगल

औरतें होती हैं गिलहरियाँ
छिपा कर भूल जाती हैं
कितनी हसरतें, कितनी उमंगें
कितने सपने, यहाँ-वहाँ
दराज़ में बिछे अख़बार के नीचे
अलमारी में रखे कपड़ों के पीछे
पोटली बना कर किसी कनस्तर में
कागज़ में लपेट किसी शाफ़्ट में
इन भूले हुए सपनों, भूली हुई हसरतों पर
जमती चली जाती है वक़्त की गर्द
और एक दिन
फूटने लगते हैं कल्ले उनसे
कल्ले दर्द के, पछतावे के
धीरे-धीरे बदल जाते हैं पीड़ा के जंगल में
उम्र के जोड़ों पर उतरने के साथ ही
उभरने लगते हैं ये दर्द के जंगल
पछतावे की नागफनियाँ
जिनमें भटकती लहूलुहान होती
फिरती है औरतें
औरतों ! अब बंद भी करो ये हसरतें छिपाना
रख दो कोई हसरत सैंटर टेबल पर
कोई सपना ड्राइंग रूम की दीवार पर सजा दो
गुनगुना लो कोई उमंग काम करते हुए
कभी आराम से बैठो पाँव फैला कर
कुतरती रहो कोई इच्छा शाम के ढलने तक
कुछ भी कर लो यार बस छिपाओ मत
छिपाकर भूल जाओगी
जानती हो
तुम्हारी इसी आदत के परिणाम हैं
दुनिया भर की कुंठाओं के जंगल
* * *

दु:ख - एक

दु:ख सार्वभौमिक है
सर्वकालिक है
व्याप्त है ब्रह्म की तरह
सृष्टि के कण-कण में
दु:ख ऊपर है नीचे है
दु:ख दाएँ है बाएँ है
कहीं विषाणु सा सूक्ष्म
कहीं पहाड़ सा विशाल

हवाओं में गंध सा घुला
जल में लहर सा मचलता
थल पर घास सा ऊगा
रेगिस्तान में कैक्टस सा

देह की फुलवारियों में
खर पतवार सा फैलता
मन की फुनगियाँ पर
टिड्डी दल सा हमला बोलता

दु:ख किसी को नहीं बख्शता
बच्चा बूढ़ा जवान
स्त्री या पुरुष
हर कंधे की सवारी करते
दु:ख से कहाँ तक बचोगे
बेहतर है इससे दोस्ती कर लो
* * *

दु:ख - दो

दु:ख से घबराकर कोई मर्द
किसी रात चुपके से
सोता छोड़ बीबी बच्चों को
तो कभी दिन दहाड़े
रोता छोड़ परिवार को
निकल जाता है घर से

पीछा करते दु:ख से बचते भागते
पहुँच जाता है किसी गहन वन में
किसी पहाड़ की कंदरा में
इंसान से दूर इंसानियत को समझते
कभी बनता है योगी, कभी बुद्ध
कभी फ़क़ीर और कभी कुछ भी नहीं

इधर औरत
ओढ़ती-बिछाती है दु:ख
सारे दिन को झाड़कर
रात को सकेरकर
बीनती है, फटकती है
यौवन की चक्की में पीसती है दु:ख

आँख के नमक से गूँध कर
हिम्मत की बेलनी से बेलकर
सुबकियों की आँच पर सेंकती है दु:ख
और परोस देती है
ममता की तश्तरी में
कुछ रूखे-सूखे सुख
उस 'मर्द' से मिले बच्चों के सामने

दुखों से घबरा कर वह क्यों नहीं भागती
किसी को सोता या किसी को रोता छोड़
क्या दु:ख से बार-बार संक्रमित होते
उसमें बन जाती है कोई वैक्सीन
जो भी हो
गज़ब की इम्युनिटी है
औरत में दु:ख की
* * *

सपनों की धार

सपनों का झरना
लगातार
गिरता और बिखरता रहता है
यथार्थ के पत्थरों पर

सपनों के गिरने और बिखरने के बीच
पत्थरों में भी पड़ती है दरारें
बेशक धीरे-धीरे पर टूटती तो है
ये हक़ीक़त की शिलाएँ
सपनों का पानी घुस जाता है इनके नाक और मुँह में
घुटता है इनका भी दम और मजबूर हो जाते है
ये पत्थर कदम दो कदम पानी के साथ चलने को
सपनों की धार तेज़ करो सपने देखने वालों
* * *

शोभना श्याम, एच-256,11 एवेन्यू, गौर सिटी 2, गौतम बुद्ध नगर, यूपी 201301
मोबाइल- 9953235840
ईमेल- shobhanashubhi@gmail.com

संजय छीपा की कविताएँ

मैं कविता नहीं जानता

अगर कविता शिल्प माँगती हैं
कथ्य और तथ्य से पहले
अगर सत्य बेढंगा हो

यदि बिम्बों से पहले
और उपमानों के सहारे
कोई झूठी रोशनी उभारे

अगर कविता लिखने के लिए
सहने से ज़्यादा कहना ज़रूरी हो
दिखने से ज़्यादा
ढँकना ज़रूरी हो

जहाँ शब्दों की बनावट ज़रूरी हो
सभ्यता की आदमी से बड़ी दूरी हो

तो मैं क्षमाप्रार्थी हूँ
मैं कविता नहीं जानता हूँ
मैं तो सिर्फ सच पहचानता हूँ।
***

चित्र और आदमी

एक दिन मैंने भी एक चित्र को देखकर
लिखी कविता

चित्र में कई मनमोहक रंग थे
मैंने भी कविता में भरे रंग

चित्र की सुंदरता को
कोशिश की मिलाने की कविता से
क्योंकि चित्र आदमी का था
मैंने चित्र में तलाशे आदर्श
सभ्यता को सभी कोनों से ढूँढ़ा
आदमी को सभी ओर से खँगाला

मैं धीरे-धीरे
दुविधा का होता रहा शिकार
कि चित्र की सुंदरता को बचाऊँ
या
चित्र में खोए आदमी के आदर्श सभ्यता को
बचाऊँ

मैंने अपना इरादा बदला
और चित्र से बाहर निकल कर
कविता को तलाशा
और आदमी के आदर्श, और सभ्यता को
कविता के भीतर तराशा।
***

इस समय

इस समय अभी इस क्षण
रुक जाओ तुम
गुज़रने दो इस समय को

एक फूल खिल रहा है
ओस झर रही है
पेड़ हँस रहा है
इसे पहुँचने दो अंत तक

इस समय
हम बचा सकते हैं
हमारे जीने को
पहाड़ होने से
और देख सकते हैं खुद को
ज़मीन की तरह समतल

इस समय
इससे ज़्यादा आसान कुछ नहीं है
इस क्षण को सौंप दे मौन को

ताकि हमारी निराशा को
एक हौसला मिले
और हमें ढूँढ़नी न पड़े
जीने की वजहें।
***

फूल और भ्रमर

फूल कभी ओछा नहीं होता
भ्रमर के स्पर्श से
वह ठगाता नहीं

वह भ्रमर का निश्छल प्रेम
कि फूल अनभिज्ञ अजान
कोई उसे छूकर भर जाता मधु

न जी भ्रमर का भरा
न कुछ फूल को पता
दोनों के मध्य है
एक मधुमयी पवित्रता।
***

चूँकि मेरे पास कविता है

चूँकि मेरे पास कविता है

इसलिए फूल का दुख है
पेड़ों की उदासी है
पत्तियों की जलन है

चूँकि मेरे पास कविता है
इसलिए
एक समूचा शाब्दिक विरोध है

धुआँ-धुआँ करती आग हैं
रात है, अँधेरा है और जाग है

चूँकि मेरे पास कविता है

इसलिए व्यथा झिल जाएगी
एक संवेदना
चेहरे में लिपटकर
कड़ी धूप में चल जाएगी

रास्ता यक़ीनन हैं
राह भी बल पाएगी।
***

संजय छीपा, गाँव मंगरोप, तहसील
हमीरगढ़, जिला भीलवाड़ा
राजस्थान
मोबाइल- 9929173184
ईमेल-sanjaychhipa550@gmail.com

ऋषिकेश मिश्र की कविताएँ

मूर्तियाँ

मैं अकेला बड़बड़ाता रहा
चौबीस मूर्तियों के सामने,
पर मैं उन्हें
टस से मस न कर सका
जो होकर भी नहीं होती थीं।

वे गुणग्राही मूर्तियाँ न थीं...!
संभवत: विभूतियाँ थीं,
जिनसे ली थी- दत्तात्रेय ने दीक्षा।

मूर्तियाँ!
न कुछ कहती थीं,
न सुनती थीं,
बस देखा करती थीं- निर्निमेष।
मानों सब कुछ
घोंटकर पी जाना चाहती हों
बनाना शेक की तरह।

लौट आता था सारा उपदेश
दीवार पर फेंकी गेंद की तरह,
अवरोध उत्पन्न करता था-
जैसे शरबत में बेल के बीज।

बड़ा मुश्किल होता है-
जगते को जगाना,
समझदार को समझाना,
दूर करना किसी का भ्रम,
और हठी में
कर देना बीजवपन-
अभिनव विचारों का।
कवि, स्वभाव भी तो कुछ होता है!
***

प्रेम

प्रेम- शताधिक समानार्थियों
के बावजूद अपने भीतर
समोए हुए है-
संवेदनाओं के अनगिन अंतरीप
कुल जमा
ढाई आखर होने के बाद भी।

प्रेम- आत्माओं का
अंतरंग संवाद है।
जिसकी व्याप्ति
जितनी गहरी है
उतनी ही विस्तृत भी।

प्रेम- एक-दूसरे में
लीन हो जाने की व्यग्रता है,
जहाँ शरीर-
आरंभिक आकर्षण से अधिक
कुछ नहीं,
वैसे ही जैसे-
किसी मंदिर का सभामंडप
या
कामाच्छादित चित्रावलियों से
सुसज्जित
ऊबड़-खाबड़ दीवारें।

प्रेम- नदियों की
आकुल लहरें है।
प्रेम है- चिड़ियों का कलरव
मोर, पपीहे और चातक का मधुर गान।

प्रेम- उस प्रेमी की विह्वलता है, जो
पी जाना चाहता है
अपनी प्रेमिका की रूपमाधुरी।
प्रेम है- कमनीया की उखड़ी साँसें
जो खोज रही है
ठहराव, अपने प्रियतम के भुज-युगलों में।

प्रेम है- माँ का दुलार
जिसके अभाव में
सूखा रह जाता है
मनुष्य का बचपन,
जिसकी पूर्ति नहीं हो पाती
तमाम उपलब्धियों के बाद भी।

प्रेम- मित्र के मन में
उठती कसक है।
प्रेम, बोध है-
मित्र के दुख को
दूर न कर पाने का।

प्रेम- पहले दौंगरे की
सोंधी ख़ुशबू और
वृद्धों का आशीष है।

प्रेम है- अमलतास के
झालर पर रीझना,
प्रेम आम्रमंजरी से नि:सृत
मादक गंध है।
प्रेम है
कड़ाहे से उठने वाली
गुड़ के पाग की मनमोहक सुगंध।

प्रेम है- ग्वालिन के मुँडेर से
उठने वाली घी की गंध,
प्रेम- प्रकृति की धानी चुनर
पारिजात का स्पर्श,
और
झुंड से उठाए
मेमने का दुलार है।

क्या हो सकता है-
विनिमय,
बुद्धिवाद
उत्तर आधुनिकता
या
भूमंडलीकरण से उपजे दंशों का
इन प्रेमानुभूतियों से,
जहाँ इश्क 'कमीना'
और संबंध-विच्छेद भी
उत्सव का विषय है।

प्रेम- मानवता का
अंतिम पड़ाव, और
मनुष्य होने की
प्रतीति है।
***

डॉ. ऋषिकेश मिश्र, हिन्दी विभाग, पार्वती
बाई चौगुले कला एवं विज्ञान महाविद्यालय
गोगोल, मड़गाँव, गोवा-403602
मोबाइल- 9323282667
ईमेल- dr.rishikeshmishrav@gmail.com

रोहित प्रसाद पथिक की कविताएँ

जली हुई रोटी

माँ के हाथों से उछली रोटी
तपती भट्टी के अर्द्ध भाग पर एकटक
आँखों से विलाप कर रही है
क्योंकि माँ ने उसे ज्वलंत लपटों में
धीरे-धीरे फुला कर जला दी है
छोटे भाई ने उसे हॉटपॉट से निकालकर
काली नाली में फेंक दिया
सड़े अंडे और कटी सब्ज़ियों की तरह

छोटा भाई नासमझ
उसे पता नहीं
जली रोटी का महत्त्व
दरअसल हर रोज़
माँ के हाथों दो-चार रोटियाँ
जल जाया करती और मेरी माँ
बड़ी प्यार से सँभाल कर हॉटपॉट के
निचले भाग में रख देती
बिना बाबू जी से कुछ कहे
पन्द्रह साल तक तो मैं
इस रहस्य को समझ ही नहीं सका
ठीक वैसे ही
चार बरस के बाद लीप ईयर की तरह
रात्रि में माँ हमें थाली में
सफेद चंद्रमा जैसी रोटी परोस दिया करती
जिसके बीच-बीच में
काले-काले धब्बे हमें मुस्कुराते हुए प्रतीत
हुए हमेशा ही...

माँ के चेहरे को देख कल-कारखानों के धुएँ
या यूँ कहें चूल्हे के धधकते अंगारे भी
फीके पड़ चुके हैं
हमेशा अच्छी रोटी मेरे लिए और
अंतिम रोटी माँ अपने आँचल में छुपा लेती
अपने लिए
एक संपूर्ण देश की तरह
ऐसा लगता जैसे आइज़ैक न्यूटन और
रदरफोर्ड ने भी
यही रोटी खाई होगी तभी तो
वह गगन और पृथ्वी को हमेशा
समझकर आविष्कार किए
एक सफेद चादर की तरह
माँ ने ही प्रतिनिधित्व किया है
जली हुई रोटी का
उसमें चिन्हित काली परतों का और
अंत में अपने जले हुए हाथों का
आख़िरकार...
ये सत्य मेरा छोटा भाई जानकर
सारी जली रोटियाँ फेंक आया
मन के मूल्यवान् नाले में।
***

छवि

आज देखा ही नहीं
महसूस व अनुभव भी किया मैंने
तुम्हारे न होते हुए भी होने का।

निरंतर एक झलक नहीं
अगर-मगर होते दर्पण का
उम्र ढल चुकी है बस अब नहीं
देखते-देखते मोतियाबिंद होने लगा है
कहीं यह तुम्हारे छवि का तो प्रभाव नहीं है।
फिर भी न जाने क्यों
अनायास मन घूम जाता हैं
जा पहुँचता हूँ छवि के पास
और धड़ल्ले से चूम लिया
बिछुड़ने का दर्द अब आँसू की तरह
सदैव बहता जा रहा है।
दृष्टिगोचर होती अब हर तस्वीर
निम्नवर्ग सा अपने को समझ रहा हूँ
क्या करे ?

इसी में सिरफुटौवल होता है
बाकि सब वाई-फाई से
आटोमेटिक जुड़ जाएँगे
क्योंकि हम सब छवि का
हार्दिक अभिनंदन नहीं कर पाते शायद !

मुझे वॉल फ़ोटो समझ धिक्कारते हैं।
चतुर्भुज सा बस कही टँगा पड़ा रहता हूँ
बस हम आते-जाते
धूमिल कर देते हैं अपने नयनों से
या फिर किसी दीमक लगी पुस्तक के मध्य
में
यादों को दफ़न कर देते हैं।
और एक ठन सी आवाज़ गूँजती है
मैं वही छवि हूँ...
जिसे कभी तुम प्रेम करते थे
आज वह बंदगी व गंदगी की रानी बनी बैठी
है
हँसो ! मैं ही हूँ अभागिन छवि।
***

मौत के हवाले कविता

लिखते-लिखते
मौत के हवाले
चढ़ गई एक कविता।

मैं अदम्य साहस करता रहा
कि कम से कम
इस अधमरी कविता की
मौत कैसे होगी... ?
जो खुद मौत से लड़ती है
वह भी मौत से संवाद करेगी।

और रात के अँधेरे में
अचानक मौन होगा अँधेरा
और सत्य शांत होगा।

तब मेरे द्वारा रचित
एक अधमरी कविता को
मैं स्वयं श्रद्धांजलि दूँगा,
और मेरे आँखों में
आँसू सूखे होंगे।
***

रोहित प्रसाद पथिक, केस रोड़ रेल पार,
डीपू पाडा, क्वार्टर नम्बर - 741/सी,
आसनसोल-713302 (पश्चिम बंगाल)
मोबाइल- 8101303434
8167879455
ईमेल- poetrohit2001@gmail.com

कल आप हमारे लाइव पर नहीं आए?

कोरोना वायरस ने भी यह नहीं सोचा होगा कि उसके आने के ऐसे-ऐसे परिणाम भी निकल सकते हैं। अगर उसे पता होता तो वो आने के पहले दस बार सोचता। इन दिनों जब भी आप फ़ेसबुक खोलते हैं तो आपको एक संदेश प्राप्त होता है -'फलाना सिंह वाज़ लाइव'। इस संदेश से एक भ्रम पैदा होता है। मगर क्या किया जाए यह फ़ेसबुक तो अंग्रेज़ी भाषा वाले देश में ही पैदा हुआ है और अगर ये कह रहा है कि फलाना सिंह वाज़ लाइव, तो आप इस 'वाज़' से ये मान के चलिए कि अब वो लाइव नहीं है। ख़ैर बात चल रही थी फ़ेसबुक के कोरोना दौर की। यह दौर अभी ख़त्म नहीं हुआ है, चल ही रहा है। इस दौर में हमें यह पता चला कि देश में इतने साहित्यकार हैं कि यदि आप एक भीड़ पर पत्थर उछालेंगे, तो एक ही पत्थर कम से दो साहित्यकारों के हिस्से आएगा। ये साहित्यकार बाक़ायदा बोलने वाले साहित्यकार हैं। नामवर सिंह जी ने भी अपने जीवन का उत्तरार्द्ध वाचिक आलोचना ही करते हुए गुज़ारा। इसी प्रकार ये साहित्यकार भी हैं। अंतर बस इतना है कि नामवर जी ने अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में इतना कुछ लिख दिया था कि बाद में उनके वाचिक परंपरा पर आने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। किन्तु, लाइव के इस दौर में ऐसे-ऐसे चेहरे साहित्यकार के रूप में सामने आ रहे हैं, जिनकी एक भी रचना अभी तक सामने नहीं आ पाई है। असल में फ़ेसबुक पर कोई आपसे पूछने वाला नहीं है कि आपने अब तक लिखा क्या है। आपका प्रोफ़ाइल है, उस पर शान से लिखिए फलाने सिंह 'साहित्यकार' और बस हो गया काम। बिलकुल उस विज्ञापन की तरह जिसमें कहा जाता है 'भिगोया, धोया और हो गया'। असल में अब तो ऐसा लगने लगा है कि फ़ेसबुक असल में फ़ेसबुक नहीं रहा है, बल्कि यूट्यूब हो गया है। जिसमें केवल साहित्यकारों के लाइव भरे पड़े हैं। अच्छा, मज़े की बात ये है कि साहित्यकार केवल साहित्य की ही दुर्गति नहीं कर रहे हैं, वे गाना भी गा रहे हैं। मतलब यह कि जब हम साहित्य का कबाड़ा कर चुके हैं, तो संगीत हमारे लिए क्या चीज़ है। और सबसे बड़ी बात ये है कि इनको आप बेसुरा भी नहीं कह सकते, क्योंकि बेसुरा भी कभी-कभी तो सुर लगा ही देता है। उस पर इतने वीभत्स माहौल में ये लाइव शो चल रहे हैं कि आत्मा के पूरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कोई साहब केवल बनियान पर ही बैठ कर लाइव कर रहे हैं, तो कोई खाने की थाली को भी साथ लिए लाइव कर रहे हैं। कहानी पाठ सुनिए तो ऐसा लगता है जैसे किसी बच्चे को स्कूल के माट्साब ने बैंच पर खड़ा कर दिया है और कहा है कि मुंशी प्रेमचंद की 'पंच परमेश्वर' पूरी क्लास को पढ़कर सुनाओ। बेचारा छात्र अटकते हुए, भटकते हुए कहानी पाठ कर रहा है। लाइव में भी दो प्रकार के साहित्यकार हैं, एक तो हैं 'लाइव सैनिक' और दूसरे हैं 'लाइव वीर'। लाइव वीर वो हैं जो दिन भर में क़रीब तीन से चार बार अलग-अलग सोशल मीडिया प्लैटफ़ार्म पर, अलग-अलग संस्थाओं के मंच पर उपस्थित होते हैं। बारह बजे 'किसका साहित्य' के मंच पर ज़ूम द्वारा, दो बजे 'गैंग साहित्य' के मंच पर गूगल मीट द्वारा, चार बजे 'मरता साहित्य' के मंच पर फ़ेसबुक लाइव द्वारा उपस्थित होते हैं। अपने मोबाइल के कॉन्टेक्ट में शामिल हर व्यक्ति को व्हाट्सएप द्वारा सूचित भी करते हैं कि आज मैं यहाँ-यहाँ दिखाई दूँगा। जिस प्रकार सूर्य ग्रहण तथा चंद्र ग्रहण की सूचना दी जाती है, उसी प्रकार साहित्य को लगने वाले इस ग्रहण की सूचना ये स्वयं ही सबको देते हैं। हर मंच पर ये ग़ुस्से में नज़र आते हैं। साहित्य को हो रहे नुकसान को लेकर ग़ुस्से में। शायद इनको आज तक किसी ने बताया नहीं है कि साहित्य को सबसे ज़्यादा नुकसान इनके ही द्वारा हो रहा है। अच्छा चलता हूँ, मेरे एक मित्र लाइव आने वाले हैं और मुझे एक बार जाकर दो या तीन प्रशंसा के कमेंट कर अपनी उपस्थिति प्रदान करनी है। नहीं तो वो मेरे लाइव में भी नहीं आएँगे। पहले लोग अपने यहाँ शादी में नहीं आने पर नाराज़ होते थे, आजकल नया चलन आ गया है नाराज़गी का। अब लोग मैसेज करके पूछते हैं 'कल आप हमारे लाइव पर नहीं आए?'

सादर आपका ही,

पंकज सुबीर

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल : 9977855399
ईमेल : subeerin@gmail.com

शिवना प्रकाशन की नई पुस्तकें

विचार और समय
सुधा ओम ढींगरा
निबंध

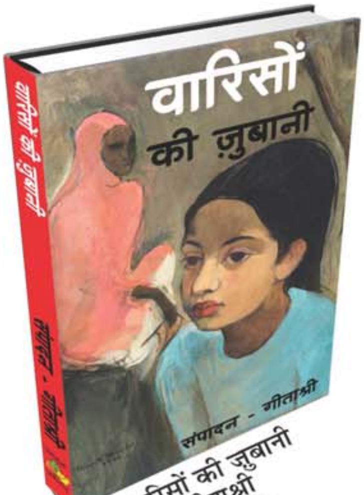

वारिसों की ज़ुबानी
गीताश्री
रेखाचित्र

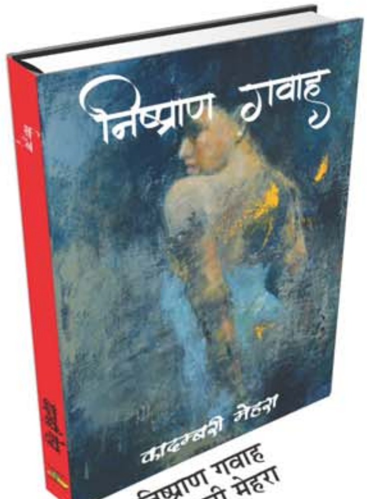

निष्प्राण गवाह
कादम्बरी मेहरा
उपन्यास

निन्यानवे का फेर
ज्योति जैन
लघुकथा

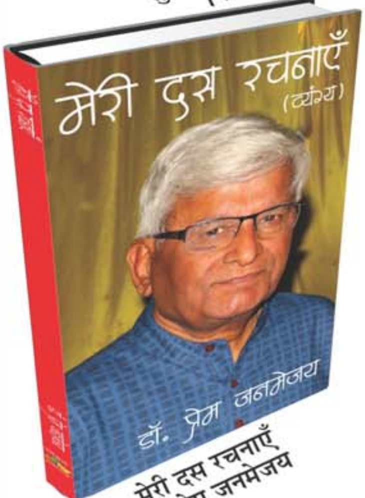

मेरी दस रचनाएँ
डॉ. प्रेम जनमेजय
व्यंग्य

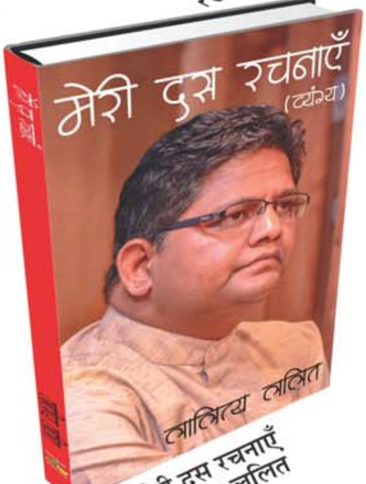

मेरी दस रचनाएँ
लालित्य ललित
व्यंग्य

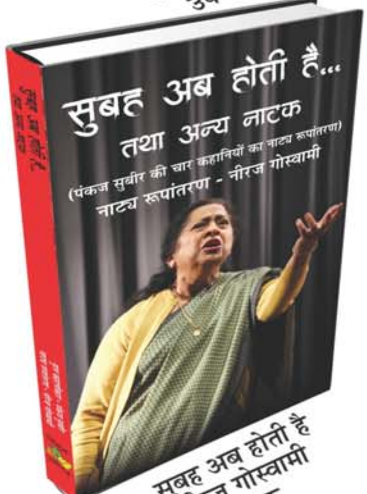

सुबह अब होती है
नीरज गोस्वामी
नाटक

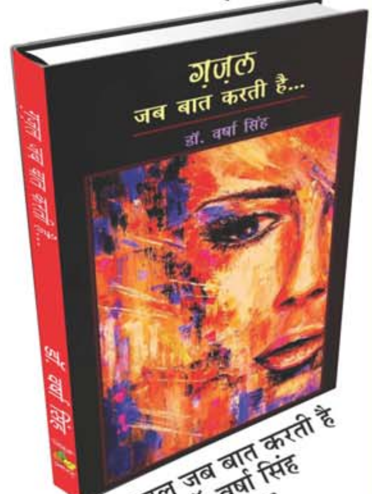

ग़ज़ल जब बात करती है
डॉ. वर्षा सिंह
ग़ज़ल

ख़ुद से गुजरते हुए
संगीता कुजरा टाक
कविता

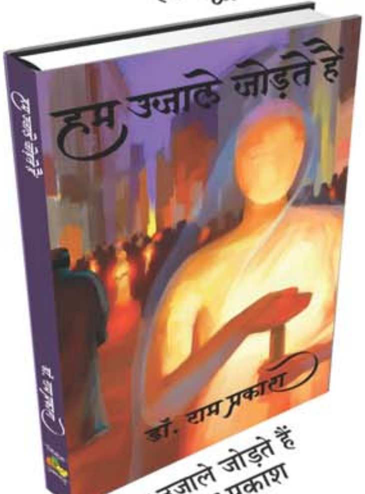

हम उजाले जोड़ते हैं
डॉ. राम प्रकाश
नवगीत

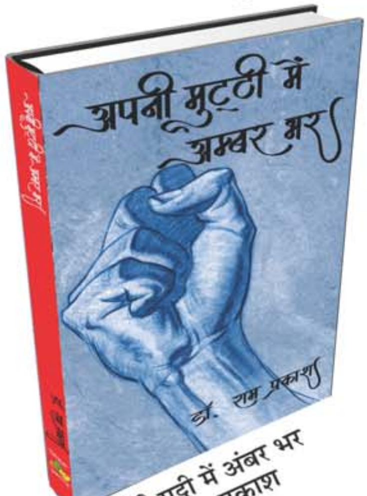

अपनी मुट्ठी में अंबर भर
डॉ. राम प्रकाश
नवगीत

उन्हें गीत दो
डॉ. राम प्रकाश
नवगीत

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

http://www.amazon.in http://www.flipkart.com
https://www.paytm.com http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Vibhom Swar ● Quarterly ● July-September 2020 ● RNI No. MPHIN/2016/70609 ● ISSN2455-9814

शिवना प्रकाशन की नई पुस्तकें

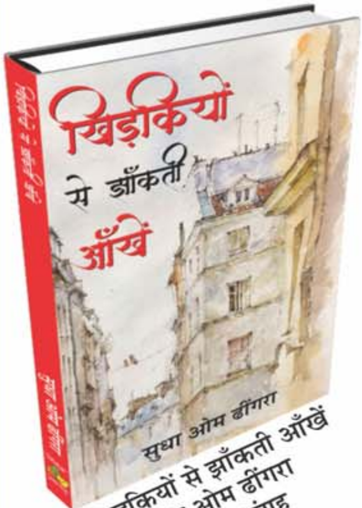

खिड़कियों से झाँकती आँखें
सुधा ओम ढींगरा
कहानी संग्रह

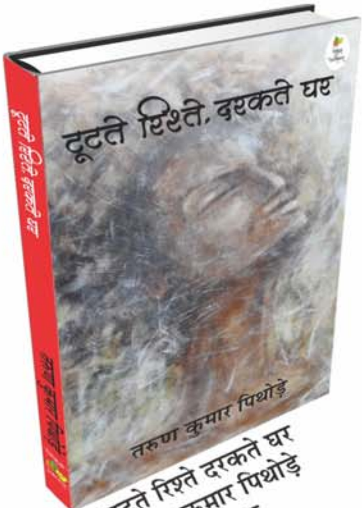

टूटते रिश्ते दरकते घर
तरुण कुमार पिथोड़े
उपन्यास

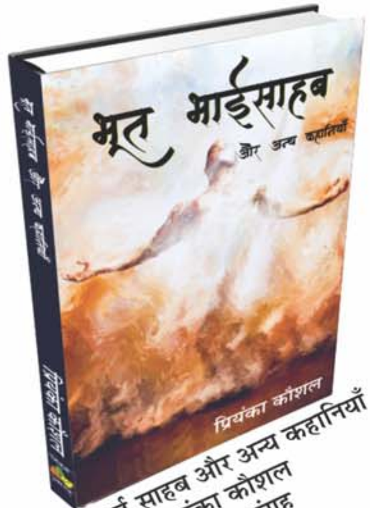

भूत भाई साहब और अन्य कहानियाँ
प्रियंका कौशल
कहानी संग्रह

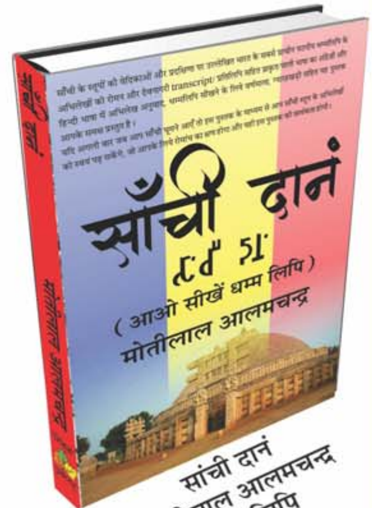

सांची दानं
मोतीलाल आलमचन्द्र
धम्म लिपि

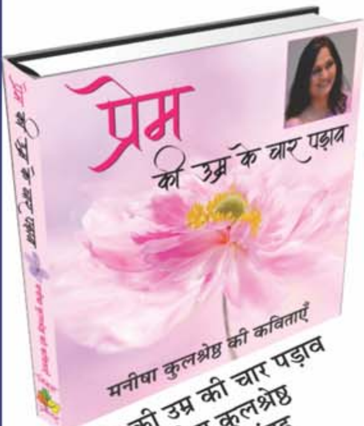

प्रेम की उम्र की चार पड़ाव
मनीषा कुलश्रेष्ठ
कविता संग्रह

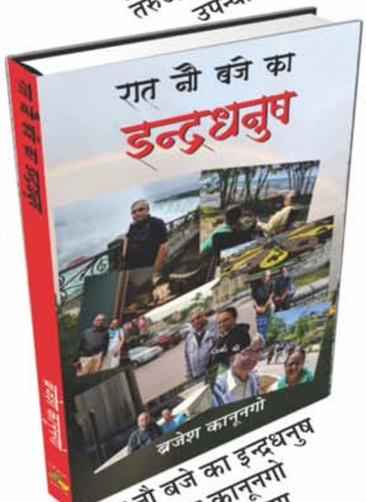

रात नौ बजे का इन्द्रधनुष
ब्रजेश कानूनगो
यात्रा संस्मरण

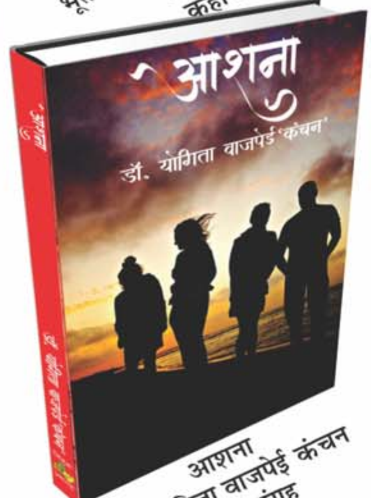

आशना
डॉ. योगिता वाजपेई कंचन
ग़ज़ल संग्रह

प्रवास में आसपास
डॉ. हंसा दीप
कहानी संग्रह

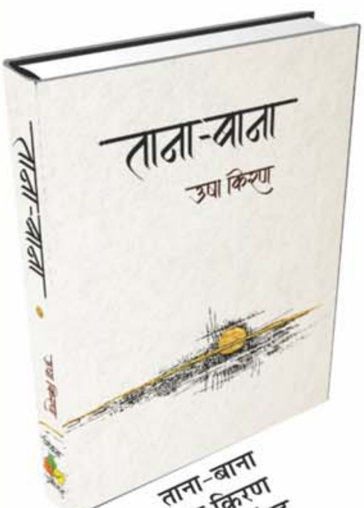

ताना-बाना
उषा किरण
कविता संग्रह

दिलफ़रेब
राजकुमार कोरी राज
ग़ज़ल संग्रह

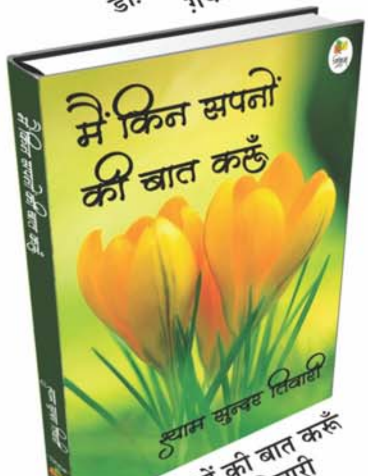

मैं किन सपनों की बात करूँ
श्याम सुन्दर तिवारी
नवगीत संग्रह

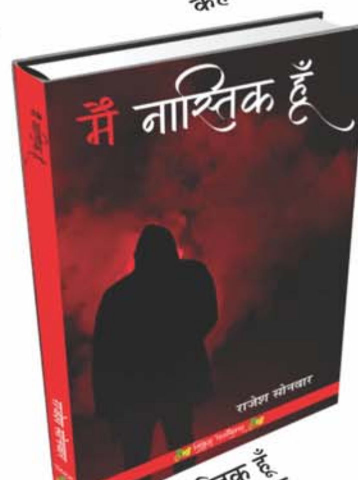

मैं नास्तिक हूँ
राजेश सोनवार
उपन्यास

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।